ISSN 2250 – 0391

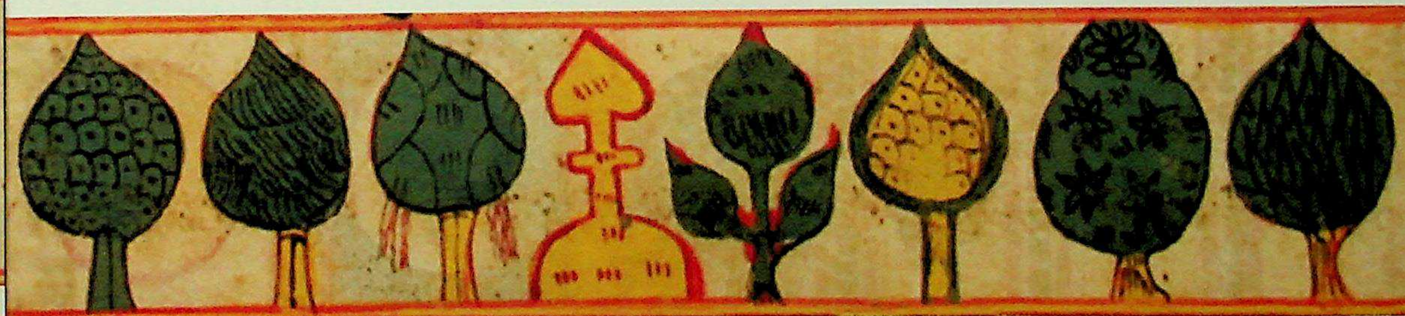
स्वाध्याय

पुस्तक ६०, वर्ष २०२३

सम्पादक
श्वेता प्रजापति



प्राच्यविद्यामन्दिर
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा



ISSN 2250 - 0391

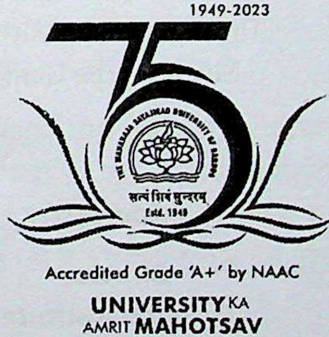
स्वाध्याय

SVĀDHYĀYA

Issue No. 60, Year 2023

Editor

Dr. Sweta Prajapati



प्राच्यविद्यामन्दिर

Oriental Institute

The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Vadodara - 390 001

ISSN 2250 - 0391

Svadhyaya

Referred and Blind 'Peer-reviewed' Annual Multilingual Research Journal

Issue No. 60, Year 2023

Address

Director
Oriental Institute
Opp. Palace Gate, Palace Road
The Maharaja Sayajirao University of Baroda, Vadodara - 390 001
Phone: (+91-265) 2425121, **(M)**: 9898472669
E-mail : director-oriental@msubaroda.ac.in
Website : www.msubaroda.ac.in

Subscription : ₹ 300/- Annual (For India) / $ 50 Annual (For Foreign Countries)

Note: The statements and views expressed by the authors of articles in this journal are their own and not necessarily of the Editorial Board.



The Maharaja Sayajirao University of Baroda
Accredited A+ Grade by NAAC

Maharaja Fatehsinghrao Gaekwad Road, Fatehgunj
Vadodara-390 002, Gujarat, India



Message from the Desk of Hon'ble Vice Chancellor...

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के ७५ वर्ष पूर्ण होने (**हीरक जयन्ती**) के समुपलक्ष्य में प्राच्यविद्यामन्दिर द्वारा संशोधन पत्रिका ''स्वाध्याय'' का यह ६०वाँ अंक प्रकाशित किया जा रहा है । प्राच्यविद्यामन्दिर द्वारा ई.स. १९६१ से प्रारम्भ हुआ ''स्वाध्याय'' भारत के अध्येताओं एवं विद्वानों के समक्ष एक गुणवत्तायुक्त संशोधन पत्रिका के रूप में स्वीकृत हुआ है ।

इस सामयिक ''स्वाध्याय'' के पूर्वांकों के शोधालेखों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इनमें विषय वैविध्य प्रचुरमात्रा में विद्यमान है । संस्कृत-साहित्य, संस्कृत-व्याकरण, वैदिक-साहित्य, षड्दर्शन, पाण्डुलिपि-विषयक अनुसंधान, पुरातत्त्वशास्त्र, इतिहास, शिल्पशास्त्र, गुजराती भाषा और साहित्य सम्बन्धी विषयों पर शोधपत्रों का प्रकाशन ''स्वाध्याय'' में होता आ रहा है ।

प्रस्तुत अंक में भारत के विशिष्ट विद्वानों द्वारा लिखे हुए १४ शोधालेखों का समावेश हुआ है । इस अंक में प्रो. सत्यव्रत वर्मा, प्रो. राजेश पण्ड्या, डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी, प्रो. मनसुख मोलिया, डॉ. प्रियव्रत मिश्र, रसीला कडीआ आदि प्रतिष्ठित विद्वानों के उत्कृष्ट शोधालेख समाविष्ट हैं । तदुपरान्त कुछ शोधार्थियों के आलेख भी समाहित किये गये हैं । ग्रन्थावलोकन एवं प्राच्यविद्यामन्दिर की गतिविधियों का भी समावेश किया गया है ।

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के **हीरक जयन्ती** के शुभ अवसर पर इस विशेष प्रकाशन के लिये मैं प्राच्यविद्यामन्दिर को हार्दिक अभिनन्दन और विशेष शुभेच्छाएँ प्रेषिक करता हूँ ।

ता: जुलाई १९, २०२३

प्रो. (डॉ.) वी. के. श्रीवास्तव
कुलपति

स्वाध्याय

पुस्तक ६०, वर्ष २०२३

अनुक्रमणिका

हिन्दी

ગુજરાતી

संस्कृत

भागवतपुराण की रामकथा

सत्यव्रत वर्मा *
चारुलता वर्मा *

हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता । हरि की महिमा के समान हरिकथा-रामायण - की महिमा का भी ओर छोर नहीं है । रामायण हिन्दुजाति के तो रोम-रोम में समायी है, किन्तु उसमें प्रतिपादित उदात्त आदर्शों, मर्यादाओं और जीवन-मूल्यों ने भूमण्डल के विशाल भाग को भी गहराई तक प्रभावित एवं अनुप्राणित किया है । बौद्ध धर्म के अनुयायी होते हुए भी दक्षिण--पूर्व एशिया के देशों की चेतना और सामाजिक ताने-बाने में रामायण इस प्रकार अनुस्यूत है कि वह उनके जीवन और व्यवहार का अभिन्न अंग बन गयी है । उनमें से लाओस आदि कुछ देशों में रामायण के एकाधिक स्वरूप प्रचलित हैं । जो उनकी रामकथा में अन्तर्निहित मानव-गरिमा के प्रति अटूट आस्था के परिचायक है । रामकथा थाईदेश के चिन्तन और विश्वास में कुछ ऐसी रच-पच गयी है कि 'रामकियेन' (रामकीर्ति) उसका राष्ट्रीय काव्य बन गया है । सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि मलेशिया और इन्डोनेशिया जैसे मुस्लिम देश भी रामायण के आदर्शमय चिन्तन से अभिभूत हैं । अंकोर के विशाल वैष्णव मन्दिर में उत्कीर्ण रामायण की दृश्यावली जावा की 'रामायण काकविन्' के अधिक समीप प्रतीत होती है । योरोप आदि अन्य उपमहाद्वीप भी रामायण की सर्वव्यापी महानता से अछूते नहीं हैं । रामायण के प्रथम पद्यबद्ध अंग्रेजी-अनुवाद का श्रेय ग्रिफिश को है । काङ्सङ्हवीने द्वारा रामायण का चीनी भाषामें अनुवाद (२५१ई.) किसी कीर्तिमान से कम नहीं है । संसार की शायद ही कोई प्रमुख भाषा हो, जिसमें रामायण का अनुवाद न हुआ हो । यह अनुवाद-राशि रामायण की महानता की सार्वभौम स्वीकृति है ।

रामायण मात्र काव्य या कथा नहीं है । यह चारित्रिक गरिमा, उदात्तता, त्याग-बलिदान, धैर्य और सहिष्णुता के प्रति मानव की प्रतिबद्धता का भव्य गान है । रामायण भारत की अन्तश्चेतना का पर्याय है । इसकी महानता का पाथेय लेकर भारत की विविध भाषाओं में विराट् साहित्य का निर्माण हुआ है । रामायणेतर ग्रन्थ भी अपने कलेवर में रामकथा का यथाशक्य समावेश कर आत्मगौरव की अनुभूति करते हैं । कतिपय पुराणों में रामकथा के प्रसंगानुकूल कमबेश निरूपण का कदाचित् यही रहस्य है ।

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. १-८. ISSN 2250-0391

* ७/३४ पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर-६६०५५१- M: 08778798755, Email: srinarasimhan05@gmail.com

भागवतपुराण[1] में रामचरित का जिस खण्डित विधि से निरूपण हुआ है, उससे वह कुछ धुंधली-उजली रेखाओं में सिमट गया है । पुराणकार ने उसे परुषता से कांट-तांछ कर कंकाल बना दिया है । भागवतपुराण में निरूपित रामकथा न केवल अलंकरण से शून्य है, वह उन विवरणों और भंगिमाओं से भी वंचित है जो रामकथा को विशिष्टि व्यक्तित्व प्रदान कर उसमें काव्य-सौन्दर्य और नैतिक आदर्शों का आधान करते हैं । उसके विच्छिन्न स्वरूप के दृष्टिगत उसके स्रोतों को खोजना अर्थहीन होगा । रामकथा के विभिन्न आख्यानों अथवा घटनाओं के क्रमिक प्रतिपादन में भागवतपुराण सामान्यतः वाल्मीकि - रामायण का अनुगामी प्रतीत होता है, यद्यपि विवरण के आरम्भ में कुछ गड्ड-मड्ड अवश्य हुआ है । भागवतपुराण में रामकथा के कुछ आख्यानों का ही पल्लवन हुआ है, किन्तु, सीमित तथा शिथिल होते हुए भी उनके ज्ञात स्वरूप में भी पुराणकार ने कुछ नवीन उद्भावनाएँ करने का साहस किया है । ये उद्भावनाएँ अथवा भिन्नताएँ भले ही संख्या में अधिक न हों परन्तु उनकी प्रकृति तथा भंगिमा विभिन्न आख्यानों को नयी आभा प्रदान करती है । उनका विमर्शपूर्ण मूल्यांकन अवश्य ही उपयोगी होगा ।

भागवतपुराण में स्वयंवर तथा धनुर्भंग के दो भिन्न प्रसंगों को एक समन्वित आख्यान के रूप में अंकित किया गया है । उसका निर्भ्रान्त कथन है कि राम स्वयंवर में भाग्य आजमाने के लिये आए, मण्डप में उपस्थित, अनेक शक्तिशाली राजाओं के समक्ष शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढाकर उसे खींचकर इस सहजता से भंग कर दिया जैसे हाथी का शावक इक्षुदण्ड के अनायास टुकडे-टुकडे कर देता है[2]। यह विवरण वाल्मीकि-रामायण के अनुरूप नहीं है । आदिकाव्य में सीता स्वयंवर का आयोजन अवश्य किया गया है परन्तु धनुर्भंग उसका अंग नहीं है । वाल्मीकि ने दोनों को पृथक् प्रसंग मानकर ही उनका अलग अलग वर्णन किया है, यद्यपि अन्य कतिपय ग्रन्थों में स्वयंवर के ठाटदार आयोजन का असली उत्कर्ष धनुर्भंग के विस्मयजनक कृत्य से ही प्राप्त होता हैं[3] । रामायण के विवरण के अनुसार समस्त प्रत्याशी राजाओं के पर्वताकार धनुष पर प्रत्यंचा चढाने में विफल होकर चले जाने के 'बहुत समय बाद' राम विश्वामित्र के साथ मिथिला आते हैं । विश्वामित्र के अनुरोध से धनुष को पुनःमण्डप में लाने पर, राम ने विशाल जनसमूह की उपस्थिति में (पश्यतां नृसहस्राणाम्), उसे इस प्रचण्डता से खीचां कि क्षणभर में

---

१ गीता प्रेस, गोरखपुर, विक्रम संवत् २०५९

२ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ।। भागवतपुराण, ९. १०.६

३ प्रसन्नराघव, सम्पादक आर.एस.त्रिपाठी, दिल्ली, १९७०, ३.४०-४९

उसके दो टुकडे हो गये[४] । भागवतकार की दृष्टि में धनुर्भंग स्वयंवर का अविच्छेद्य अंग है, और दोनों मिलकर रामकथा के एक महत्त्वपूर्ण समन्वित प्रकरण का निर्माण करते हैं । यह निस्सन्देह कतिपय परवर्ती / भाषायी रामायणों तथा अन्य ग्रन्थों में वर्णित राजसी स्वयंवर के अनुकूल है[५]। भागवतकार ने सम्भवतः उनके अनुकरण पर ही दोनों प्रसंगो का संयुक्त वर्णन किया है । यदि भागवतपुराण की मानें, 'गिरिसन्निभ' धनुष को स्वयंवर मण्डप में पहुँचाने के लिये तीन सौ कार्मिकों की पूरी फौज नियुक्त की गयी थी[६] । सम्भवतः धनुष के भारी भरकम आकार को उजागर करने के लिये इस विशाल संख्या की कल्पना की गयी है । भागवतपुराण इसके लिये जनश्रुति का ऋणी प्रतीत होता है । यद्यपि परवर्ती कुछ रचनाओं में सीता-विवाह के लिये धनुर्भंग की कठोर शर्त निर्धारित करने के औचित्य की व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है[७], किन्तु धनुष को मण्डप में लाने वाले उद्यमी पुरुषों की संख्या का अन्यत्र उल्लेख नहीं है ।

मारीचवध अथवा कनकमृग रामायण का ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रसंग है जिसके फलस्वरूप रामकथा भयावह मोड लेती है । भागवतकार ने उसमें भी परिवर्तन करने की चेष्टा की है । रामायण और भागवतपुराण में इस बात पर तो पूर्ण मतैक्य है कि राम की 'कुटिया' के निकट कौतुकपूर्ण क्रीडाएँ करने वाला 'प्राणी' वस्तुतः मारीच था, जिसने कामान्ध रावण से भीत होकर मृग का रूप धारण किया था । किन्तु वह मृग स्वर्णमृग था या सामान्य हिरण, इस विषय में भागवतपुराण मौन है । सीता उस मृग के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे पाने को लालायित थी, इसका भी पुराण में कोई संकेत नहीं है । भागवतपुराण में इस प्रकरण को जिस प्रकार पल्लवित किया गया है, उससे ध्वनित होता है कि राम ने स्वेच्छा से, समुचित कारण के बिना ही, मृग का पीछा और वध करने का निर्णय किया था[८] और इसमें सीता की कोई प्रेरणा अथवा भूमिका

---

४ तच्च दृष्ट्वा धनुःश्रेष्ठं गौरवाद् गिरिसन्निभम् ।
अभिवाद्य नृपा जग्मुरशक्तास्तस्य तोलने ।। रामायण (गीता प्रेस) २.११८.४३
सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः ।
विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः ।। वही, २.११८.४४
तेनापूरयता वेगान्मध्ये भग्नं द्विधा धनुः ।। वही, २.११८.४९

५ देखिये हमारा ग्रन्थ 'पैनोरमा ऑफ संस्कृत लिट्रेचर', जयपुर, १९९८, पृ. ९-१०

६ सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् । भागवत पुराण, ९.१०.६

७ आनन्दरामायण, १.३.६०

८ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ।। भागवतपुराण, ९.१०.१०

नहीं थी । समूचे प्रकरण में लक्ष्मण का उल्लेख न होने से भी उक्त धारणा को बल मिलता है । यह आग्रहपूर्ण कथन भी उतना ही विचित्र है कि राम ने बहुत आसानी से मृग का प्राणान्त कर दिया । मृग का मारीच नाम से उल्लेख करने से स्पष्ट है कि राम उसकी वास्तविकता अथवा पूर्वचरित से परिचित थे और वे पत्नी की अनर्गल इच्छा की पूर्ति करने वाले स्नेही पति के रूप में नहीं बल्कि एक मृगया-विहारी के रूप में मृग पर निशाना साध रहे थे । सीता के आग्रह अथवा अनुरोध के बिना राम द्वारा स्वतः ही मृग का गहन वन में पीछा करना युक्तिहीन तथा निरर्थक है । भागवतकार ने विशेष प्रयत्न के बिना मृग का वध दिखलाकर इस गम्भीर प्रकरण को अन्तर्निहित नाटकीयता तथा संघर्ष से वंचित कर दिया है । और लक्ष्मण जैसे धनुर्धारी के विद्यमान होने से सीता के पूर्णतया सुरक्षित होते हुए भी उसके अपहरण का उल्लेख सर्वथा तर्कहीन और अविश्वसनीय है । स्पष्टतः भागवतपुराण में इस महत्त्वपूर्ण प्रकरण का पल्लवन असावधानी से किया गया है ।

रावणवध तथा उसकी पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती घटनाओं के निरूपण में भी, भागवत के विवरण में मूल की अपेक्षा कई भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं । वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम सैन्य सहित समुद्र को लांघ कर लंका की बहिर्भूमि में शिबिर स्थापित करते हैं जिससे शत्रु की यथा समय टोह लेना तथा आवश्यकतानुसार उस पर धावा बोलना सुवधिाजनक हो[९] । पुराणकार ने लाघव की व्यग्रता में इन महत्त्वपूर्ण घटनाओं के अधिकतर भाग को विवरण से बहिष्कृत कर दिया है । उसके अनुसार राम समुद्र के दूसरे तट पर पहुँचकर, अपने मित्र विभीषण के परामर्श के अनुरूप, सेना सहित सीधे लंका में प्रवेश करते हैं जहाँ सुग्रीव, नील तथा हनुमान के नेतृत्व में वानर सेना ध्वंस मचा देती है ।[१०]

भागवतपुराण में युद्धपूर्व की घटनाओं की कोई उपयोगिता नहीं है । इन्द्रजित और कुम्भकर्ण सहित रावण के विश्वस्त योद्धाओं के सपाट उल्लेख से स्पष्ट है कि भागवत का रचयिता लम्बे युद्ध से परिचित था किन्तु संक्षेपवृत्ति के कारण उसने विस्तृत विवरण को प्रसंग में अनावश्यक मानकर स्वीकार नहीं किया है । कहने की आवश्यकता नहीं, इन्द्रजित की मुठभेड़ों, विशेषतः लक्ष्मण के साथ उसकी भिड़न्त को स्थान न देने से यह ऊर्जस्वी प्रकरण सपाट तथा आभाहीन बन गया है ।

---

९ रामायण, ६.२२ तथा आगे

१० सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-
लङ्कां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ।। भागवतपुराण, ९.१०.१६
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-
शृङ्गटकाः गजकुलैर्ह्रदिनी घूर्णा ।। वही, ९.१०.१७

रावण के पराक्रमी योद्धाओं की क्रमिक पराजय तथा वध से 'अन्तिम युद्ध' का मंच तैयार हो जाता है[११] । भागवतपुराण में राम-रावण के युद्ध का वर्णन ओजोहीन तथा नीरस है । वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम के बाणों के सतत प्रहारों से रावण के दस शीश क्रमशः कट-कट कर धरती पर गिरते जाते है, किन्तु आश्चर्य, वे तुरन्त पुनः उसके शरीर से जुड़ जाते है । राम के सौ प्रयास करने पर भी यह विस्मयकारी परिदृश्य अनवरत चलता रहा । इस उद्वेग-कारी स्थिति के निवारण के लिये देवसारथि मातलि राम को ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने को प्रेरित करता है । राम ने ज्यों ही रावण पर ब्रह्मास्त्र से प्रहार किया, राक्षसराज त्यों ही लड़खड़ा कर धराशायी हो गया[१२] । यह विस्मयजनक विवरण भागवतपुराण में उपलब्ध नहीं है । पौराणिक विवरण में मातलि युद्धभूमि में राम को दिव्यरथ अवश्य प्रदान करता है किन्तु राम द्वारा ब्रह्मास्त्र के प्रयोग और तदनन्तर युद्ध की शीघ्र समाप्ति में उसका कोई योगदान नहीं है । इसका कारण यह है कि पौराणिक रूपान्तर में रावण युद्ध की किसी भी स्थिति में राम की शरवर्षा की घातकता का प्रतिरोध करने में समर्थ नहीं था । वह वस्तुतः पराक्रमी प्रतिद्वन्द्वी के लिये निस्तेज-सा लक्ष्य प्रतीत होता है । भागवत की शब्दावली में राम ने रावण को अपने दुष्कर्मों का दण्ड भोगने के लिये तैयार रहने की चेतावनी देते हुए जैसे ही उस पर वज्रसदृश प्राणान्तक बाण छोडा, वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा जैसे पुण्यों के क्षीण होनें पर स्वर्गवासी प्राणी धरा पर लौट आता है[१३] । यह लंका-युद्ध के प्रचण्ड प्रकरण का सपाट रूपान्तरण है ।

युद्धोत्तर घटनाओं के निरूपण में भागवतकार ने महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है, जिसकी ध्वनि को यथामति ग्रहण किया जा सकता है । वाल्मीकि के अनुसार राम, युद्ध समाप्त होने पर सीता को अग्नि परीक्षा के द्वारा अपनी शुद्धता प्रमाणित करने का आदेश देते है । इस भीषण आदेश से सब हतप्रभ हैं, किन्तु अपनी पवित्रता से पूर्णतया आश्वस्त सीता अग्निज्वाला में निशंक प्रवेश करती है । अग्नि तथा अन्य देवता साक्षात् प्रकट होकर उसकी शुद्धता की घोषणा करते हैं[१४] । भागवतपुराण में युद्ध समाप्ति के पश्चात् राम स्वयं सीता को मिलने के लिये अशोकवाटिका में जाते हैं । वहाँ विरहव्यथा से सन्तप्त, कारुण्य-मूर्ति एवं कृशकाय सीता को देखकर वे व्याकुल हो उठते हैं[१५] । वे उसके पातिव्रत्य से पूर्णतया आश्वत थे, अतः उसकी सच्चरित्रता पर सन्देह

---

११ रक्षः पतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससारं रामम् ।। वही, ९.१०.२१

१२ रामायण, ६.१०७. ५७-५८, ६.१०८.२, ६.१०८.२२

१३ भागवतपुराण ९.१०.२२-२३

१४ रामायण, ६.११६.२६-२७; ६.११८. १-२२

१५ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ।। भागवतपुराण, ९.१०.३०

करने का कोई औचित्य ही नहीं था[१६] । वे लंका-समर के अपने मित्रों के साथ विमान में बैठ कर वहीं से सीता सहित अयोध्या के लिये प्रस्थान करते है[१७] । युद्ध की उत्तरवर्ती घटनाओं का यह वर्णन एकदम अनूठा है । क्या यह कवि की कल्पना से प्रसूत है अथवा वह इसके लिये किसी अज्ञात स्रोत का ऋणी है ?

जहाँ भक्तकवि की अचल निष्ठा के अनुरूप भागवतकार ने सीता की अग्निपरीक्षा के दारुण प्रसंग को विवरण से बहिष्कृत कर दिया है, वहाँ उसे उसके निर्वासन का सविस्तार वर्णन करने में तनिक भी संकोच नहीं है । और यह लगभग ग्राम्य विधि से किया गया है । रामायण के अनुसार राम ने सीता को उसकी सच्चरित्रता पर सन्देह होने के कारण निर्वासित नहीं किया था, बल्कि वे उसके विषय में लोक में प्रचलित निन्दा से इतने आहत थे कि देववृन्द द्वारा प्रमाणित उसकी निर्दोषता को भूलकर[१७a], उन्होंने उसका तत्काल त्याग करने का भीषण निर्णय कर लिया[१८] । भागवतपुराण के रचयिताने राम को मध्यकालीन सामन्त के रूप में परिवर्तित कर दिया है, जो प्रजा की भावना से अवगत होने के लिये चित्र-विचित्र विधियों का आश्रय लेता है । पुराण का आग्रह है कि अपने रात्रिकालीन प्रच्छन्न विहारों के अन्तर्गत राम ने एक व्यक्ति को अपनी पत्नी को इसलिये फटकारते सुना कि उसने किसी दूसरे के घर में रहने का अक्षम्य अपराध किया था । उसने यह कहते हुए पत्नी को घरसे निकाल दिया कि मैं राम नहीं हूँ जिसने दूरवर्ती लंका में राक्षस के घर में रहनेवाली सीता को बिना ननुनच स्वीकार कर लिया है । राम पर यह आरोप लगानेवाला वह अकेला व्यक्ति नहीं था । यह भावना ध्वंसकारी लोकापवाद का रूप धारण कर चुकी थी । इस मर्मान्तक लोकनिन्दा से व्यथित होकर रामने पत्नी सीता को तत्काल निर्वासित कर दिया । उसने वन में वाल्मीकि के आश्रम में शरण ली[१९] । भागवतपुराण का सीता-निर्वासन का प्रसंग लोककथा - सा प्रतीत होता है, किन्तु यह शिष्ट साहित्य में भी अज्ञात नहीं है । सीता के चारित्र्य-विषयक लोकापवाद के इस पक्ष का प्रथम उल्लेख कथा-सरित्सागर में हुआ है । उसमें एक व्यक्ति को पत्नी की चारित्रिक शिथिलता के कारण उसके साथ कलहरत दिखाया गया है[२०] । कालान्तर में उस अनाम व्यक्ति का स्थान धोबी ने ले

---

१६ वही, ९.१०.३१

१७ वही, ९.१०.३२

१७a रामायण, ६.४५.६-९

१८ अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान्वा पुरुषर्षभाः ।। रामायण, ७.४५.१४
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ।। वही, ७.४५.१५

१९ भागवतपुराण, ९.११. ८-१०

२० कथासरित्सागर, ९.१.६६

लिया[२१] । यह धोबी का मोटिफ क्रमशः लोकमानस में बद्धमूल हो गया और लोकसाहित्य में इसका व्यापक प्रयोग किया गया है ।

भागवतपुराण और वाल्मीकि-रामायण इस बात पर एकमत हैं कि राम को लोकापवाद की दारुणता से विचलित तथा विवश होकर सीता का गर्भावस्था में ही निर्वासन करना पड़ा था, यद्यपि वे स्वयं उसकी पतिभक्ति से पूर्णतया विश्वस्त थे । भागवतपुराण के इस प्रकरण में लक्ष्मण का कहीं उल्लेख नहीं है, यह आश्चर्य की बात है; यद्यपि देशी-विदेशी रामायणों के इस हृदयविदारक काण्ड में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । आदिकाव्य में लक्ष्मण ही निर्वासन को क्रियान्वित करने का माध्यम बनता है और वही सीता को वाल्मीकि के आश्रम में शरण लेने को निर्देशित करता है[२२] । भागवतपुराण में सीता, किसी अन्य की सहायता अथवा मार्गदर्शन के बिना, स्वयं ही वाल्मीकि की शरण ग्रहण करती है । सीता-निर्वासन के कुछ विदेशी रूपान्तरों में लक्ष्मण को नाना प्रकार के विचित्र कार्य/दायित्व सौंपे जाते हैं और वह उन्हें पूर्ण चातुर्य से सम्पन्न करता है[२३] ।

रामकथा की परिणति के निरूपण में भागवतकार ने प्रायः रामायण का अनुसरण किया है, यद्यपि कुछ भिन्नताएँ इतनी प्रबल हैं कि उनकी उपेक्षा करना सम्भव नहीं है । अयोध्यावासियों की अपेक्षा के अनुरूप राजसभा में अपने पातिव्रत्य धर्म और शुद्धता को प्रमाणित करने के लिये सीता धरतीमाता से उसे आत्मसात् करने -अपने में समाने - की प्रार्थना करती है । पृथ्वी माता अपूर्व तत्परता से उसका अनुरोध स्वीकार करती है और सीता, देखते-देखते, उसकी गोद में बैठ कर सदा-सर्वदा के लिये पाताललोक में समा जाती है[२४] । वाल्मीकि के इस विवरण के विपरीत भागवतपुराण से ध्वनित होता है कि यह चत्मकारी एवं हृदयवेधक घटना वाल्मीकि के आश्रम में ही घटित हुई थी, अयोध्या में नहीं । पुराण की सहज शब्दावली में सीता ने आश्रम में जन्मे दोनों बालक वाल्मीकि को सौंप दिये और स्वयं राम के चरणों का ध्यान करती हुई पाताललोक में विलीन हो गयी[२५] । रामायण में राम को क्रमशः विश्वास हो जाता है कि आदिकाव्य के गायक अद्‌भुत बालक उनके ही वीर पुत्र हैं[२६], और यदि सीता पाताललोक में विलीन न होती,

२१ आनन्दरामायण, ५.३. २८-३०

२२ रामायण, ६.४५. १७-१८

२३ पैनोरमा ऑफ संस्कृत लिट्रेचर, जयपुर, १९९८, पृ. २८

२४ रामायण, ७-९७. १४,२०

२५ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ।। भागवतपुराण, ९.११.१५

२६ रामायण, ७. ९५.२

वे उसे तत्परता से स्वीकार करते । भागवतपुराण का सीता-विलय का विवरण उसी तक सीमित प्रतीत होता है । भागवतकार को यह सम्भवतः मौखिक परम्परा से प्राप्त हुआ था । तथापि उससे प्रस्तुत प्रसंग को नयी भंगिमा मिली है, इसमें सन्देह नहीं है ।

सीता के विलीन होने की दारुण घटना को सुनकर राम शोकाकुल हो जाते हैं । सीता के प्रति उनका अनुराग इतना गहरा था कि लाख जतन करने पर भी वे शोक से मुक्त नहीं हो सके । तत्पश्चात् उन्होंने, जीवन के समस्त सुख-भोगों से विमुख होकर, दीर्घकालीन अग्निहोत्र का अनुष्ठान किया और अपने भ्राजिष्णुलोक में चले गये[२७] ।

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के अतिरिक्त भागवतपुराण में राम के निर्वासन, परशुराम के दर्पदलन, जटायुवध तथा सेतुबन्ध आदि का चलता-सा उल्लेख भी हुआ है[२८] ।

भागवतपुराण में निरूपित रामकथा संक्षिप्त तथा खण्डित होती हुई भी उपेक्षणीय नहीं है । उसमें वर्णित आख्यानों में कुछ महत्त्वपूर्ण उद्भावनाएँ की गयी हैं, जो उन्हें नयी आभा प्रदान करती है ।

----

२७ भागवतपुराण, ९.११. १६-१९

२८ वही, ९.१०.७,८,१२,१५

दूर्वा का सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक अनुशीलन

धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी *

सारांश :

भारतीय परम्परा वनस्पतियों के महत्त्व को स्वीकार करती है । संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वनस्पतियों और मानवों के मध्य घनिष्ठ समबन्ध है । वनस्पतियों में दूर्वा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । तृणजातीय यह वनस्पति भारतीय सनातन परम्परा का अभिन्न अंग है । यज्ञ हो या कर्मकाण्ड, इसका प्रयोग व्यापक स्तर पर होता है । देवाराधन में भी इसका प्रयोग होता है । यह दूर्वा का अपना विशिष्ट महत्त्व ही है कि दूर्वा के नाम से अनेक पर्व-त्यौहार मनाए जाते है । ज्योतिषीय दृष्टि से भी दूर्वा का अपना विशिष्ट महत्त्व है । दूर्वा का उल्लेख काव्यों में भी प्राप्त होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि कवियों ने दूर्वा का आश्रय लेकर अपनी कविता को समृद्ध किया है । वैदिककाल से लेकर अद्यावधि इस वनस्पति का सांस्कृतिक महत्त्व तो है ही, इसका औषधीय गुण भी विविध ग्रन्थों में प्राप्त होता है । निघण्टुग्रन्थों में दूर्वा की विभिन्न जातियों का उल्लेख प्राप्त होता है । इसके अनेक पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख भी प्राप्त होता है, जिससे इसके गुणधर्म, व्युत्पत्ति तथा सांस्कृतिक महत्त्व का ज्ञान होता है । औषधीय दृष्टि से भी दूर्वा अत्यन्त उपयोगी है ।

मुख्यशब्द – दूर्वा, देवाराधन, कर्मकाण्ड, दूर्वाष्टमी, यज्ञ, औषधि

भूमिका :

वनस्पतियों एवं मनुष्यों में अविनाभाव सम्बन्ध है । मानवमात्र वनस्पतियों से सदैव उपकृत रहा है । मनुष्य अपनी नानाविध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनस्पतियों पर ही आश्रित है । इन वनस्पतियों में दूर्वा का स्थान भी उल्लेखनीय है । यह सुप्रसिद्ध तृणजातीय वनस्पति है ।

शोधप्रविधि :

इस शोधालेख को तैयार करने में शोध की पुस्तकावलोकन विधि का अनुसरण किया गया है । इसके अतिरिक्त साक्षात्कार विधि का भी आश्रय लिया गया है । जिसके अन्तर्गत विषय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त किया गया है ।

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. ९-२९. ISSN 2250-0391

* संस्कृत विभाग, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड - 834002 M: 7992362827, 9431590113, Email: dvd1309@gmail.com

तथ्य विश्लेषण :

भारतीय परम्परा में वैदिक काल से लेकर अद्यावधि दूर्वा की मान्यता का अनुबन्ध चला आ रहा है, यहाँ तक कि धार्मिक संस्कारों एवं मंगलावसरों पर पूजन आदि के द्रव्यों में इसका समावेश किया जाता है । ऋग्वेद[१], यजुर्वेद[२], और अथर्ववेद[३], शतपथ ब्राह्मण[४], ऐतरेय ब्राह्मण[५], महाभारत[६] में दूर्वा का उल्लेख प्राप्त होता है । व्यवहारोपयोग की दृष्टि से यह पशुओं के लिए उत्कृष्ट चारा है । जिस प्रकार क्षत्रिय राष्ट्र में प्रतिष्ठित होता है, उसी प्रकार दूर्वा के प्रत्येक काण्ड, प्रत्येक पर्व से प्ररोह निकलकर पृथिवी में प्रतिष्ठित होता है । इसीलिए इसे औषधियों में क्षत्रिय कहा जाता है । अन्य औषधियाँ लोम सदृश कही गयी हैं जबकि दूर्वा को प्राण रस कहा गया है । इसीलिए यह उनमें प्रधान औषधि कही गई है ।[७]

दूर्वा का स्वरूप–

दूर्वा सब प्रान्तों के वन, उपवन, खेत सब जगह उत्पन्न होती है । गर्मी के दिनों में प्रायः सुख जाती है, परन्तु बरसात का पानी पड़ने से खिर-भरी हो जाती है । जलशय और कुएं के पास बारहों मास हरी-भरी देखने में आती है । यह समस्त भारत में होती है । इसका बहुवर्षायु क्षुप प्रायः जमीन पर फैला रहता है । काण्ड में अनेक पर्व होते हैं और प्रत्येक पर्व से मूल निकलकर जमीन से लगे रहते हैं जिसके कारण भूमि पर चटाई सी बिछ जाती है । शाखाएँ छोटी जमीन से उठी रहती है । पत्र ०.५-४ इञ्च लम्बे, पतले एवं रेखाकार होते हैं । पुष्पमञ्जरी हरित या बैंगनी रंग की होती है । बीज सूक्ष्म आयताकार या आयताकार मूलकाकार, भूरे रंग के तथा बहुत छोटे होते हैं । यह गर्मी और सुखा प्रतिरोधी है और लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में उगती है । यह बहुत तेजी से फैलती है ।

दूर्वा के प्रकार–

दूर्वा के कई प्रकारों का उल्लेख निघण्टु ग्रन्थों में प्राप्त होता है । ये हैं- नीलदूर्वा, श्वेतदूर्वा, मालादूर्वा तथा गण्डदूर्वा । इसके गुणधर्म का यथास्थान उल्लेख किया जायेगा ।

---

१ ऋग्वेद-10/16/13, 10/134/5, 10/142/8

२ तैत्तिरीयसंहिता-4/2/9/2

३ अथर्ववेद-6/106/1

४ शतपथब्राह्मण-4/5/10/5, 7/4/2/10

५ ऐतरेय ब्राह्मण-8/5/8

६ महाभारत-वनपर्व/110/17

७ अथर्वचिकित्साविज्ञान, पृ.262

दूर्वा तथा उसके पर्यायवाची शब्द–

निघण्टुग्रन्थों में दूर्वा के अनेक पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है । ये सभी पर्यायवाची शब्द सोद्देश्य हैं । ये सभी कुश के गुणधर्म, वैशिष्ट्य आदि की ओर संकेत करते हैं । विभिन्न निघण्टु ग्रन्थों में परिगणित दूर्वा के पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख आगे किया जा रहा है–

भावप्रकाश निघण्टु–

नीलदूर्वा, रुहा, अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्या और शतवल्ली ये सब नाम हरी दूर्वा के हैं ।[८] शुक्लदूर्वा, गोलोमी और शीतवीर्या ये नाम सफेद दूर्वा के हैं ।[९] गण्डदूर्वा, गण्डाली, मत्स्याक्षी और शकुलादनी ये सब नाम गण्डदूर्वा के हैं ।[१०]

कैयदेव निघण्टु–

हरिता, शाद्वल, सहा, अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शस्या, सहस्रवीर्या, शीतवल्ली ये नीलदूर्वा के पर्याय हैं ।[११] श्वेतदण्डी, श्वेतकाण्डा, सिता, लता, सहस्रवीर्या, अनन्ता, दुष्करा, भार्गवी, रुहा, गोलोमी और शतवीर्या ये पर्याय श्वेतदूर्वा के हैं ।[१२]

मदनपाल निघण्टु–

शस्या, शीतकरी, गोलोमी और शतपर्विका आदि शब्द हरी दूर्वा के पर्यायवाची कहे गए हैं । श्वेता, श्वेतदण्डा, भार्गवी, दुर्मता और रुहा आदि शब्द दूर्वा के पर्यायवाची नाम होते हैं ।[१३]

राजनिघण्टु–

नील दूर्वा, हरिता, शाम्भवी, श्यामा, शतपर्विका, अमृता, पूता, शतग्रन्थि, अनुष्णवल्लिका, शिवा, शिवेष्टा, मङ्गला, जया, सुभगा, भूतहन्ती, शतमूला, महौषधी, विजया, गौरी, शान्ता– ये सब एक्कीस नाम नीलदूर्वा के हैं ।[१४] गोलोमी, श्वेत दूर्वा, सिताख्या, चण्डा, भद्रा, भार्गवी, दुर्मरा,

---

८ भावप्रकाशनिघण्टु–गुडूच्यादिवर्ग/172

९ वही, 174

१० वही, 175

११ कैयदेवनिघण्टुः–ओषधिवर्ग/1229-1230

१२ वही, 1232-33

१३ मदनपालनिघण्टु–अभयादिवर्ग/335

१४ राजनिघण्टु–शाल्मल्यादिवर्ग/106-107

गौरी, विघ्नेशान, कान्ता, अनन्ता, श्वेता, दिव्या, श्वेत काण्डा, प्रचण्डा सहस्रवीर्या, सहस्रकाण्डा, सहस्रपत्री, सहस्रपर्वा, सुरवल्लभा, शुभा, सुपर्वा, सितच्छदा, स्वच्छा तथा कछान्तरुहा, अब्धिहस्ता ये सब नाम श्वेत दूर्वा के हैं ।[१५] माला दूर्वा, वल्लि दूर्वा, अलि दूर्वा, माला ग्रन्थि, ग्रन्थिला, ग्रन्थि दूर्वा, मूलग्रन्थि, वल्लरी, ग्रन्थिमूला, रोहत्पर्वा, पर्ववल्ली तथा सिताख्य ये सब माला दूर्वा के नाम हैं।[१६] गण्डाली, गण्डदूर्वा, अतितीव्रा, मत्स्याक्षी, वारुणी मीननेत्रा, श्याम ग्रन्थि, ग्रन्थिला, ग्रन्थिपर्णी, सूचिपत्रा, श्यामकाण्डा, जलस्या, शकुलाक्षी, कलया तथा चित्रा ये सब गण्डदूर्वा के नाम हैं ।[१७]

धन्वन्तरिनिघण्टु-

शष्प, शाद्वल, हरित, शतपर्वा, शतवीर्या, शतवल्ली और शीतला आदि शब्द नीलदूर्वा के पर्यायवाची कहे जाते हैं ।[१८] गोलोमी, श्वेतदण्डा, सिता, लता, सहस्रवीर्या, अनन्ता, दुर्मरा, भार्गवी और रुहा आदि श्वेत दूर्वा के पर्यायवाची हैं ।[१९]

अब कतिपय महत्त्वपूर्ण पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख करते हुए उसके उस नामकरण के कारण को रेखाङ्कित किया जा रहा है-

अनन्ता, प्रतानिका- यह बड़े पैमाने पर जमीन पर फैलता है ।
अमरी-पौधा कभी नहीं मरता ।
गोलोमी- इसमें रैखिक पत्तियाँ होती हैं जो गाय के बालों के समान होती हैं ।
दूर्वा- यह बहुत ही उपयोगी औषधि है जो कई रोगों को दूर करती है ।
भार्गवी- भृगु को यह पोधा प्रिय है ।
रुहा- काटने के बाद पुनः उत्पन्न होता है ।
शतपर्विका- इसके सैकड़ों पर्व होते हैं ।
शतवीर्या, सहस्रवीर्या-यह बहुत ही प्रभावशाली औषधि है और इसके कई कार्य हैं ।

---

१५ राजनिघण्टु-शाल्मल्यादिवर्ग/108-110

१६ वही, 112

१७ वही, 114-115

१८ धन्वन्तरिनिघण्टु-करवीरादिवर्ग/127

१९ वही, 128

भारतीय संस्कृति में दूर्वा–

सांस्कृतिक रूप से दूर्वा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । विभिन्न धार्मिक संस्कारों तथा पर्व–उत्सवों में दूर्वा का प्रयोग सर्वविदित है । देवाराधन में भी दूर्वा का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता है । यह कर्मकाण्ड में भी प्रयुक्त होने वाले द्रव्यो में से एक है । जहाँ पर दूर्वास्थान हो वहाँ मल–मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ।[२०]

दूर्वा की उत्पत्ति–

वासुकिनाग की पुच्छ और पीठ पर श्वेत एवं कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई– ''वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिता'' ।[२१]

अग्निपुराण में कहा गया है कि कमल, श्यामाक, दूर्वादल और विष्णुक्रान्ता औषधि–इन चार वस्तुओं से युक्त जल को पाद्य कहते हैं–'पद्मश्यामाकदूर्वाश्च विष्णुपत्नी च पाद्यकम्' ।[२२] पूजाकाल में पाद्य का प्रयोग होता है । अग्निपुराण में कथित है कि पवित्राधिवासन के क्रम में वायव्यकोण में कवचमन्त्र द्वारा चन्दन, जल, अक्षत, दही और दूर्वा को छीटना चाहिए– 'चन्दनाम्ब्वक्षतदधिदूर्वाश्च पुटिकास्थिताः' ।[२३] कलशाधिवास की विधि का वर्णन करते हुए अग्निपुराण में कहा गया है कि दक्षिण के कलश में कमल, रोचना, दूर्वा, कुश की मुठ्ठी, जातीपुष्प, कुन्द, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, सरसों, तगर और अक्षत डालना चाहिए ।[२४] इसी क्रम में अग्निकोण में दूर्वा और अक्षत से युक्त एक पात्र नीराजना के लिए रखना चाहिए– अग्नौ दूर्वाक्षतान्वितम् ।।[२५]

समयाचार दीक्षा के क्रम में तिल, चावल, सरसों, कुश, दूर्वाङ्कुर, जौ, दूध और जल–इन सबको एकत्र करके विशेषार्घ्य बनाना चाहिए तथा इस जल से समस्त द्रव्यों (पूजन सामग्रियों) की शुद्धि करनी चाहिए ।[२६] दीक्षा की विधि में अभिषेक का अत्यधिक महत्त्व है ।

---

२० ब्रह्मवैवर्तपुराण-1/26/23

२१ वामनपुराण-17/9

२२ अग्निपुराण-34/20

२३ वही, 35/6

२४ वही, 57/11

२५ वही, 57/23

२६ वही, 81/15-16

इसके लिए बताया गया है कि काञ्जी, भात, मिट्टी, भस्म, दूर्वा, गोबर के गोले, सरसों, दही और जल- इन सबके द्वारा शिष्य के शरीर को मलकर क्षारोदक आदि के क्रम से नमस्कार विद्येश्वरों के नाम-मन्त्रों द्वारा कलशों के जल सहित शिष्य को स्नान कराना चाहिए ।[२७]

लावा, चन्दन, सरसों भस्म, दूर्वा, अक्षत, कुश और अन्त में पुनः शुद्ध लावा- ये सब 'विकिर' (बिखरने योग्य द्रव्य) कहे गए हैं ।[२८]

देवाराधन और दूर्वा-

शिवपूजा के क्रम में देवाधिदेव के मस्तक पर दूर्वा, अक्षत और पवित्रक चढ़ाकर हृदय (नमः) से अभिमन्त्रित मूलमन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए ।[२९] शिवपूजन के क्रम में ब्रह्मा, शंकर, विष्णु और अनन्त का दूर्वा और अक्षत आदि से पूजन करना चाहिए ।[३०] शिवपूजन के अनन्तर सवौषधि से लिप्त, धूप से धुपित तथा पुष्प-दूर्वा आदि से पूजित पवित्रक को दोनों अञ्जलियों को बीच में रखकर भगवान् शिव को सम्बोधित करते हुए कहना चाहिए- 'सबके' कारण तथा जड़ और चेतन के स्वामी परमेश्वर! पूजन की समस्त विधियों में होने वाली त्रुटि की पूर्ति के लिए मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ । आपसे अभीष्ट मनोरथ की प्राप्ति कराने वाली सिद्धि चाहता हूँ । आप आपनी आराधना वाले इस उपासक के लिए सिद्धि का अनुमोदन कीजिए ।[३१]

भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा में दूर्वांकुरों का प्रयोग किया जाता है ।[३२] श्रीकृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर भगवान् को दूर्वा, अक्षत, श्वेतपुष्प, चन्दन, अगुरु, कस्तूरीमिश्रित स्वच्छ जल रूप अर्घ्य अर्पित किया जाता है ।[३३]

श्रीगणेशजी के पार्थिवपूजन के क्रम में दूर्वा अर्पित करते हुए कहना चाहिए- हे प्रभो ! हरित या श्वेत वर्णवाले, तीन अथवा पाँच पत्तियों से युक्त इक्कीस दूर्वांकुर मेरे द्वारा प्रदान किए गए ।

---

२७ अग्निपुराण-90/7-9

२८ वही, 81/17

२९ वही, 74/76-77

३० वही, 75/23-24

३१ वही, 78/51-54

३२ ब्रह्मवैवर्तपुराण-2/54/170

३३ वही, 4/8/27

इन्हें आप स्वीकार करें ।[३४] दूर्वा के अंकुर गणेशजी के सूँड़ या उनके पैर पर गिरने से गणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।[३५] भाद्रमास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को जो भगवान् गणेश को एक भी दूर्वा समर्पित करता है और प्रदक्षिणा करता है वह उनके लिए मान्य हो जाता है ।[३६] दूर्वांकुरों की महिमा मुनियों और देवताओं को भी ज्ञात नहीं है । देवाधिदेव गणेशजी को दूर्वादि से अर्चन का जो पुण्य प्राप्त होता है वह यज्ञ, दान, तप, व्रत और हवन से भी प्राप्त नहीं होता ।[३७] भक्तिपूर्वक दिया हुआ एक दूर्वांकुर भी भगवान् के लिए तृप्तिकारक होता है ।[३८] दूर्वांकुरसमर्पण सम्बन्धी मंगलमयी महिमा का श्रवण सम्पूर्ण मनोभिलषितों को प्रदान करने वाला है ।[३९]

विनायक जननी भगवती अम्बिका को दूर्वादल, सर्षप एवं पुष्पों से भरी हुई अर्घ्यरूप अञ्जलि देकर निम्नांकित मन्त्र से उनका उपस्थापन करना चाहिए ।[४०]

'ॐ ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा' यह दुर्गा का मन्त्र है । दुर्गा की उपासना पूर्ण आयु, लक्ष्मी एवं युद्ध में विजय प्रदान करने वाली है । शान्ति की कामना करने वाले को दूर्वा से हवन करना चाहिए ।[४१]

यज्ञ में दूर्वा का प्रयोग–

दूर्वा का हवन किया जाए तो उससे व्याधियों का नाश होता है–'दूर्वा व्याधिविनाशाय' ।[४२]

सूर्य आदि ग्रहों की शान्ति के लिए समिधाएँ– आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गुलर, शमी, दूर्वा और कुश संग्रहणीय है ।[४३] एक–एक ग्रह के लिए आठ–आठ सौ या

---

३४ श्रीगणेशपुराण–उ.ख./49/63-64

३५ वही, 62/32

३६ वही, 62/41

३७ वही, 63/4-5

३८ वही, 66/11

३९ वही, 66/25

४० अग्निपुराण-266/19

४१ वही, 308/20

४२ वही, 81/51

४३ वही, 95/51-52

अट्ठाइस-अट्ठाइस समिधाएं मधु और घी या दहीं या दूध से युक्त कर हवन करनी चाहिए ।[४४] सूर्यादि ग्रहों का क्रम है- सूर्य, चन्द्रमा, मंगल (पृथिवीपुत्र), बुध (सोमपुत्र), बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु ।[४५] इस प्रकार दूर्वा राहु ग्रह की शान्ति के लिए दूर्वा का ग्रहण किया जाता है ।

लिंगपुराण में बताया गया है कि ब्रह्मा को होम 'ब्रह्म यज्ञ इति' मन्त्र से प्रारम्भ करते हुए ब्रह्मा और विष्णु के लिए 'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' इस मन्त्र से होम करना चाहिए । दूर्वा और दूध मिलाकर पच्चीस आहुतियाँ अलग-अलग दी जानी चाहिए ।[४६]

अग्निपुराण में कहा गया है कि आरोग्य का इच्छुक और महान् उत्पात से आतङ्कित मनुष्य को दूर्वा का हवन करना चाहिए-'आरोग्यकामो दूर्वाभिर्गुरूत्पाते स एव हि' ।[४७] काण्डात् काण्डात्.....[४८] इत्यादि मन्त्र से दूर्वाकाण्ड की दश हजार आहुतियाँ देकर होता को ग्राम या जनपद में फैली हुई महामारी को शान्त करना चाहिए । इससे रोगपीड़ित मनुष्य रोग से और दुःखग्रस्त मानव दुःख से छुटकारा पाता है ।[४९] इमा रुद्राय..[५०] मन्त्र से घृतसिक्त दूर्वा का हवन करने पर मनुष्य समस्त व्याधियों से मुक्त हो जाता है- दूर्वाहोमेन चान्येन सर्वव्याधिविवर्जितः ।[५१] घृत, धान्य, श्वेत सर्षप, अक्षत, तिल, दधि, दुग्ध, कुश, दूर्वा, बिल्व और कमल- ये सभी द्रव्य शान्तिकारक एवं पुष्टिकारक बताए गए हैं ।[५२] त्रिमधुर (शर्करा, गुड़, मधु) में डुबायी हुई दूर्वा का गायत्री मन्त्र से हवन करने पर मनुष्य सब रोगों से छुट जाता है ।[५३] 'ॐ हू हं सः' - इस मन्त्र

---

४४ याज्ञवल्क्यस्मृति-आचाराध्याय/303

४५ वही, 296

४६ लिंगपुराण-2/28/60-61

४७ अग्निपुराण-215/28

४८ यजुर्वेद-13/20

४९ अग्निपुराण-260/47-48

५० यजुर्वेद-16/48

५१ अग्निपुराण-260/59

५२ वही, 262/23

५३ वही, 280/5

से मृत्युरोग आदि शान्त हो जाते हैं । इस मन्त्र द्वारा दूर्वा की एक लाख आहुतियाँ दी जाएँ तो उससे साधक शान्ति और पुष्टि का भी साधन कर सकता है ।[५४]

यदि कोई बड़ा भारी वृक्ष आँधी आदि से स्वतः उखड़कर गिर जाए, घर में सर्प का कंकाल हो तथा वन में प्रवेश करना पड़े तो दूर्वा, घी और अक्षत के होम से विघ्न की शान्ति होती है ।[५५]

दूर्वा से सम्बन्धि व्रत :

(क) दूर्वाष्टमीव्रत :

भविष्यपुराण में दूर्वाष्टमी व्रत का वर्णन प्राप्त होता है । भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है कि भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन श्रद्धालु होकर दूर्वाष्टमी व्रत के विधान, जो अत्यन्त पुण्यरूप है, सविधि सुसम्पन्न करने वाले पुरुष की सात पीढ़ियों में सन्तान एवं पौरुष का विच्छेद नहीं होता है, प्रसन्नतापूर्ण उनके कुल की वृद्धि होती है ।[५६]

इसका विधान बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-प्राचीन काल में क्षीर सागर के मथन करने के लिए भगवान् विष्णु ने मंदराचल को अपनी जंघाओं पर धारण किया था । वेग से उसके भ्रमण करने पर घर्षित होने (घिसने) पर उनके लोम समुद्र की तरंगों द्वारा ऊपर आकर हरी हरी एवं शुभ दूर्वा का रूप धारण किया । इसी प्रकार इस चन्द्रवदना दूर्वा के जन्म ग्रहण करने पर उसी के ऊपर रखकर उसे भक्षने से अमृत का प्रादुर्भाव हुआ । देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष तथा विद्याधरों द्वारा ले जाते समय उस कलश से अमृत के बिन्दु गिर पड़े थे, उसके स्पर्श होने के नाते यह दूर्वा अजर अमर एवं देवों द्वारा वन्दित हुई है । इसलिए उस अष्टमी के दिन फल, पुष्प, खजुर, नारियल, द्राक्षा, अखरोट, कैथ, बर्बर, बड़हर, नारंगी, जामुन, आम, बिजौरा अनार, दही, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा उसकी अर्चना करते हुए कहना चाहिए- दूर्वे! तुम्हारा जन्म अमृत द्वारा हुआ है, सुर एवं असुरों ने तुम्हारी अर्चना की है, अतः सौभाग्य तथा संतान के प्रदान पूर्वक मेरे समस्त कार्यों को सफल करो। हे अजर अमर रहने वाली! इस पृथ्वी तल पर जिस प्रकार शाखाओं एवं शाखोओं द्वारा अविच्छिन्न विस्तृत हुई हो, उसी भाँति एवं उनकी पत्नी, पुत्रवधू, भगितो, तथा सरस्वती, गौरी, लक्ष्मी और मर्त्यलोक में वेदवती, दमयन्ती, सीता, सुकेशी, घृताची, रम्भा

---

५४ अग्निपुराण-323/1

५५ वही, 321/9-10

५६ भविष्यपुराण-उत्तरपर्व/56/1-2

और मुकेश, सहन्या, कामकन्दनी, मेनका तथा उर्वशी आदि स्त्रियों ने इस सौभाग्य एवं सुखदायिनी दूर्वा की अर्चना की है । स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण पूर्वक सखियों एवं सहृदय जनों समेत ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त भगवान् की अर्चना करनी चाहिए । अनन्तर तिल चूर्ण, गेहूँ, और सप्त धान्य के भक्षण सुहृद्, सम्बन्धी, एवं स्वजन के साथ करना चाहिए । इस प्रकार पुण्य तथा सन्तानकारक इस दूर्वाष्टमी व्रत को सुसम्पन्न करने वाली स्त्रियाँ सुख, सौभाग्य, पुत्र, पौत्र आदि समेत इस भूमण्डल में चिरकाल तक समस्त भोगों के उपभोग करने के अनन्तर अन्त में स्वर्ग लोक प्राप्त करती हैं । वहाँ पर्हुंच कर अपने पतियों आदि के साथ देवों से सुसेवित रहकर महाप्रलय के समय तक रमण करती हैं । इस प्रकार भाद्र शुक्लाष्टमी के दिन मेघाच्छन्न आकाश के समय हरे भरे उपवनों में दूर्वा, अक्षत तथा तिल द्वारा इस दूर्वाष्टमी के व्रत को सुसम्पन्न करने पर वह स्त्री सुहृत् बन्धुओं समेत दूर्वा के समान ही वृद्धि प्राप्त करती है ।[५७]

(ख) दूर्वागणपतिव्रत :

श्रावण अथवा कार्तिक मास की चतुर्थी तिथि को प्रारम्भ कर दो या तीन वर्ष तक इस व्रत का अनुष्ठान होता है । गणेशजी की मूर्ति का लाल फूलों, बिल्वपत्रों, अपामार्ग, शमी के पल्लव, दूर्वा तथा अन्यान्य उपचारों से पूजन होता है । ऐसे नामों का उच्चारण होता है जिनमें गणेशजी के दश नाम का उल्लेख हो । सौरपुराण में शिवजी स्कन्द से कहते हैं कि इस व्रत का आचरण पार्वती ने किया था ।[५८] व्रतपरिचय के अनुसार यह व्रत श्रावण शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को किया जाता है । इसमें मध्याह्नव्यापिनी चतुर्थी ली जाती है । यदि वह दो दिन हो या दोनों दिन न हो तो 'मातृविद्धा प्रशस्यते' के अनुसार पूर्वविद्धा व्रत करना चाहिए । उस दिन प्रातः स्नानादि करके सुवर्ण की गणेशमूर्ति बनानी चाहिए जो एकदन्त, चतुर्भुज, गजानन और स्वर्णसिंहासनास्थ हों । इसके अतिरिक्त सोने की दूर्वा बनवानी चाहिए । फिर सर्वतोभद्र मण्डल पर कलशस्थापन करके उसमें स्वर्णमय दूर्वा लगाकर उसपर गणेशजी का स्थापन करना चाहिए । उनको रक्तवस्त्रादि से विभूषित करके और अनेक प्रकार के सुगन्धित पत्र, दूर्वा, पुष्पादि से पूजन करना चाहिए ।

(ग) दूर्वात्रिरात्रिव्रत :

यह व्रत विशेष रूप से महिलाओं के लिए है । भाद्र शुक्ल त्रयोदशी को इसका आरम्भ होता है । इसमें पूर्णिमा तक तीनों दिन उपवास करना चाहिए । उमा तथा महेश्वर की प्रतिमाओं का पूजन होता है । धर्म तथा सावित्री को दूर्वा के मध्य में विराजमान करके उसका पूजन करना चाहिए । नृत्य गानादि मांगलिक कार्य करते हुए रात्रि में जागरण और सावित्री के आख्यान का

---

५७ भविष्यपुराण–उत्तरपर्व/56/4-23

५८ हिन्दूधर्मकोश–पृ.324

पाठ करना चाहिए । प्रतिपदा को तिल, घी तथा समिधाओं से होम करने का विधान है । इससे सौख्य, समृद्धि तथा सन्तान की प्राप्ति होती है । कहा जाता है कि दूर्वा का आविर्भाव भगवान् विष्णु के केशों से हुआ है तथा कुछ अमृतबिन्दु इस पर गिर गए थे । दूर्वा अमरत्व का प्रतीक है ।

इसके अन्य प्रकारों में देवी के रूप में दूर्वा का ही पूजन बताया गया है । दूर्वा के पूजन में फूल, फल आदि का प्रयोग किया जाता है । दो मन्त्र बोले जाते हैं, जिनमें एक यह है- हे दूर्वे!, तू अमर है, तेरी देव और असुर प्रतिष्ठा करते हैं, मुझे सौभाग्य, सन्तान तथा सुख प्रदान कर ।[५९]

दूर्वा से सम्बन्धित कथा :

श्रीगणेशपुराण में कथा आती है कि लोगों को सन्त्रास देने वाले प्रचण्ड अनलासुर को बालकरूपधारी भगवान् गजानन ने मायाबल से पकड़ लिया और सबके देखते-देखते उसे वैसे ही निगल गए जैसे जैसे अगस्त्यजी ने समुद्र को पी लिया था । पुनः उसे अपने कण्ठ में रख लिया । इससे उनके कण्ठ में दाह उत्पन्न हुआ जो नानाविध उपायों से भी शान्त नहीं हो रहा था । तब अट्ठासी सहस्र मुनिजन उनके समीप आये और उनमें से प्रत्येक ने इक्कीस-इक्कीस दूर्वाएं उनके मस्तक पर रखीं, जो अमृत के तुल्य गुणकारी थीं । इससे उनके कण्ठ में स्थित अग्नि शान्त हो गयी । तब दूर्वांकुरों के भार से अर्चित वे परमात्मा गणेश भी प्रसन्न हो गए । गणेशजी दूर्वांकुरों से प्रसन्न होते हैं-ऐसा जानकर उन सभी देवताओं और मुनियों ने अनेक दूर्वांकुरों से उन गजानन गणेशजी का पूजन किया, जिससे गजानन हर्षित हुए । उन्होंने देवताओं और मुनियों से कहा कि भक्तिपूर्वक की गयी मेरी पूजा चाहे अल्प हो या महान् किन्तु वह दूर्वांकुरों के बिना व्यर्थ है । बिना दूर्वांकुरों के की गयी पूजा का फल किसी को भी प्राप्त नहीं हो सकता । इसलिए मेरे भक्त उषाकाल में की गई पूजा में एक या इक्कीस दूर्वा चढ़ानी चाहिए । भक्तिपूर्वक समर्पित की गई दूर्वा जो महान् फल देती है वह फल सैकड़ों यज्ञों, दानों, व्रतों और अनुष्ठान समूहों से नहीं प्राप्त हो सकता । करोड़ों जन्मों तक की गयी उग्र तपस्या और नियम-पालन से भी उतना पुण्य फल उपार्जित होता, जितना कि दूर्वा समर्पित करने से प्राप्त होता है ।[६०]

ज्योतिषशास्त्र में दूर्वा :

बृहत्संहिता में बताया गया है कि दूर्वा की वृद्धि से इक्षु की अच्छी खेती का संकेत प्राप्त होता है ।[६१] बृहत्संहिता में शुभाशुभ फल जानने के लिए द्रव्यों के अधिप राशि बताएं है । यहीं बताया गया है कि दूर्वा का स्वामी कर्क है ।[६२]

---

५९ हिन्दू धर्मकोश-पृ.३२५

६० श्रीगणेशपुराण-उ.ख./64/7-24

६१ बृहत्संहिता-29/13

६२ बृहत्संहिता-41/4

ब्राह्मण आदि वर्णों के लिए क्रम से कुशों से युत, मुञ्जों से युत, दूर्वों से युत, कासों से युत भूमि शुभ होती है ।[६३] चारों वर्णों को क्रमशः कुश, सरपत, कास और दूर्वा से संयुक्त भूमि में घर बनाना चाहिए-'कुशैः शरैस्तथाकाशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता' ।[६४] दूर्वा का होम और वास्तु होम सब प्रकार से प्रशस्त है ।[६५]

द्वारप्रतिष्ठा के लिए बताया गया है कि जौ, सरसों बरहंटा, ऋद्धि (औषधिविशेष), वृद्धि (औषधिविशेष), पीली सरसों, महातिल, गोमृत् (गोपीचन्दन), दरद (हिङ्गुल), नागेन्द्र (नागकेसर), मोहिनी (त्रिपुरमाली), लक्ष्मणा (सफेद कटेहरी), अमृता, गोरोचन या लाल कमल, आरग्वध तथा दूर्वा-इन औषधियों को मन्दिर के नीचे नींव में डालना चाहिए ।[६६]

(क) प्रतिज्ञायौगन्धरायण :

काव्यग्रन्थों में दूर्वा-

राजा महासेन दूर्वा के अंकुर के समान सर्वथा चिकने नीलमणियों से जड़े हुए सुवर्णनिर्मित कंकणों के धारण करने से विशाल कन्धे से युक्त है । जिस प्रकार कार्तिकेय घने सरपत के वनों से निकलकर दौड़ रहे थे, उसी प्रकार यह भी चम्पक और ताड़ वृक्ष से संयुक्त घने वन के एक भाग से निकलकर इधर-उधर दौड़ रहे हैं ।[६७]

(ख) अभिज्ञानशाकुन्तलम् :

जब यह आकाशवाणी होती है कि जिस प्रकार शमी के भीतर अग्नि का वास होता है, उसी प्रकार इस शकुन्तला में जगहित के लिए पौरव तेज निवास कर रहा है, तब महर्षि कण्व ने शकुन्तला को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुझे योग्य पति के हाथ में देते हुए मुझे भी दुःख नहीं है । मैं आज ही तुझे ऋषियों के साथ तेरे पति के पास भेज दे रहा हूँ । ऐसी स्थिति में शकुन्तला की सखी अनसूया प्रियंवदा को कहती है- वह जो आम की डाली पर नारियल लटक रहा है न, उसमें मैंने बहुत दिनों तक सुगन्धित रह सकने वाली बकुल की माला आज के लिए रख छोड़ी है । जा, उसे उतार तो ले आ तब तक मैं गोरोचन, तीर्थ की मिट्टी और

---

६३ बृहत्संहिता-53/97

६४ अग्निपुराण-247/3

६५ लिङ्गपुराण-2/28/63

६६ अग्निपुराण-100/3-5

६७ प्रतिज्ञायौगन्धरायण (भासनाटकचक्र)-2/2

कोमल दूर्वा के किसलय आदि मंगल सामग्रियाँ जुटाए लाती हूँ–''तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका । तदिमां हस्तसन्निहितां कुरु यावदहमपि तस्यै मृगरोचनां तीर्थमृतिकां दूर्वाकिसलयानीव मंगलसमालम्भनानि विरचयामि''[६८]

(ग) विक्रमोर्वशीयम् :

उर्वशी को देखकर विदूषक राजा को कहता है कि हे वयस्य, यह समझ में नहीं आ रहा है कि ये मुझे पूजा का बायना देने आ रही है या व्रत के बहाने ये अपना मान छोड़कर उस दिन का दोष धोने चली आ रही है जब आपके मनाने पर भी रूठ चल दी थीं । कुछ भी हो आज तो देवी मेरी आँखों को बड़ी सुन्दर जँच रही हैं । इस पर राजा पुरुरवा हँसकर कहता है–दोनों ही बातें हो सकती हैं, पर तुमने अन्त में जो बात कही, वही अधिक ठीक जान पड़ती है, क्योंकि उजला रेशमी वस्त्र पहने शरीर पर केवल सुहाग के गहने डाले और पवित्र दूर्वा के अङ्कुरो से अपनी बाँहें सजाए आती हुई देवी के रंग-ढंग से यही जँचता है कि ये व्रत के बहाने मान छोड़कर मुझ पर प्रसन्न हो गई है ।[६९]

कुमारसम्भवम् :

पार्वती के विवाह के पश्चात् सूर्य निकलने के तीन मुहूर्त्त पीछे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कुटुम्ब की सुहागिन और पुत्रवती स्त्रियाँ पार्वती का शृंगार करने लगीं । पहले दूर्वांकुरों और सरसों के दानों से उनका शृंगार किया गया । फिर उन्हें नाभि तक ऊँची रेशमी साड़ी पहनाकर उसमें एक बाण खोंस दिया गया । इस प्रकार तेल चढ़ाकर शृंगार करने की सारी सजावट पूरी कर दी गयी ।[७०]

पुनः किसी ने अगर चन्दन के धुएँ से उनके बाल सुखाकर बालों में फूल गूँथे और फिर दूर्वा में पिरोई हुई पीले महुए के फूलों की माला उनके जूड़े में उठा लपेटी ।[७१]

रघुवंशम् :

इन्दुमती ने स्वयंवर के लिए जिस माला को हाथ में धारण कर रखा था वह दूर्वा में गुँथी हुई महुए की माला थी ।[७२]

---

६८ अभिज्ञानशाकुन्तल (कालिदासग्रन्थावली), पृ. 58-59

६९ विक्रमोर्वशीय (कालिदासग्रन्थावली), 3/12

७० कुमारसम्भव (कालिदासग्रन्थावली), 7/7

७१ वही, 7/14

७२ रघुवंश (कालिदासग्रन्थावली), 6/25

कुश का पुत्र अतिथि जब राजा बना तो दूर्वा, जौ के अंकुर, पाकड़ की छाल और महुए के फूल दोनों में रखकर कुल के वृद्धजनों ने जो आरती की, उसे राजा अतिथि ने बड़े आदर के साथ स्वीकार किया ।[७३]

कादम्बरी :

पुत्रजन्म का समाचार सुनकर राजा तारापीड पहले से ही पुत्र के मुखदर्शनरूप महोत्सव से आकृष्टचित्त होने पर भी शुभसमय के अनुरोध से ज्योतिषियों के उपदेश के अनुसार प्रशस्त मुहूर्त्त में अन्यान्य परिजनों को साथ आने से रोककर केवल शुकनास के साथ सूतिकागृह को देखा । दूर्वा की कोपल के साथ दूर-दूर गुँथे हुए सफेद फूलों की मालाएं उसेक द्वार को शोभायमान कर रही थीं ।[७४] राज्याभिषेक के समय अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों से परिवेष्टित होकर स्नेहपूर्णहृदया महारानी विलासवती ने अपने से ही, चन्द्ररश्मि के समान शुभ्रवर्ण एवं सुगन्धमय चन्दन द्वारा चन्द्रापीड के शरीर पर पैरों तक लेप कर दिया, अभिनव खिले हुए शुभ्रवर्ण पुष्प-माला द्वारा मस्तक परिवेष्टित कर दिया, शरीर पर कहीं गोरोचन लगा दिया एवं दूर्वा पल्लव का कर्णभूषण पहना दिया ।[७५] आखेट हेतु गया हुआ चन्द्रापीड किन्नरमिथुन का अनुसरण करता हुआ बहुत दूर निकल गया तब उसने 'अपने किए हुए दोषों का फल निश्चय अपने आप ही भोगना पड़ता है' इस प्रकार मन ही मन स्थिर करके बायें हाथ से लगाम खींचकर घोड़े को वापस लौटाया । घोड़े को मोड़कर वह सोचने लगा-यह इन्द्रायुध नाम अश्व अधिक परिश्रान्त हो गया है, अतः उसे दूर्वापल्लव की घास खिलाकर, किसी सरोवर में किंवा पत्थर के झरने में, अथवा नदी के जल में स्नान करा, पानी पिला, इसकी थकावट दूर कर और स्वयं भी जलपान कर किसी वृक्ष के नीचे छाया में कुछ देर विश्राम कर उसके बाद जाऊँगा ।[७६]

चिकित्सकीय गुण :

दूर्वा कफपैत्तिक रोगों में प्रयुक्त होता है । क्षत, व्रण, अर्श में इसका लेप करते हैं । नेत्राभिष्यन्द में इसका स्वरस डाला जाता है तथा पलकों पर इसका लेप किया जाता है । दाह को शान्त करने के लिए पैत्तिक शिरोरोग, विसर्प, शीतपित्त आदि में लेप किया जाता है । वर्णविकारों तथा चर्मरोगों में इसका लेप किया जाता है । मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद, अपस्मार

---

७३ रघुवंश (कालिदासग्रन्थावली), 17/12

७४ कादम्बरी, पृ. 218

७५ वही, पृ. 339

७६ वही, पृ. 367

आदि मानस रोगों में इसका स्वरस पिलाया जाता है । छर्दि, तृष्णा, अतिसार, प्रवाहिका, अर्श में यह उपयोगी है । रक्तपित्त और उपदंश आदि रक्तविकारों में भी यह दिया जाता है । कहीं से रक्तस्राव होता हो, तब दूर्वा का रस लगाने और पिलाने से रक्त रुक जाता है । प्रदररोग में तथा गर्भस्राव, गर्भपात आदि योनिव्यापदों में इसका प्रयोग करते हैं । इससे रक्त रुकता है, गर्भाशय को शक्ति प्राप्त होती है तथा गर्भ को पोषण मिलता है ।[७७]

निघण्टु ग्रन्थों, पुराणों तथा आयुर्वेदिक ग्रन्थों में दूर्वा के औषधीय गुणों का विवेचन प्राप्त होता है जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है-

राजनिघण्टु :

सभी प्रकार की दूर्वा कषाय तथा मधुर रसवाली शीतल, पित्तजन्य प्यास, अरोचक तथा वमन को नाश करने वाली है और दाह, मूर्च्छा, ग्रहबाधा तथा भूतबाधा को शान्त करने वाली, कफ, श्रम को ध्वंस करने वाली एवं तृप्ति देने वाली है ।[७८] नीलदूर्वा मधुर तथा तिक्तरसयुक्त, शीतवीर्य तथा रोचक है । यह रक्तपित्त तथा अतिसार को नाश करने वाली और कफजन्य एवं वातजन्य ज्वर को दूर करने वाली है ।[७९] श्वेत दूर्वा मधुर रस वाली, शीतवीर्य, दमन तथा पित्त को जीतने वाली है और आमातिसार एवं कास को नाश करने वाली, रुचिकारक, दाह तथा प्यास को दूर करने वाली है ।[८०] मालादूर्वा मधुर तथा तिक्तरस युक्त एवं शीतवीर्य है । यह पित्तविकार को शान्त करने वाली तथा कफजन्य विकार, वमन एवं प्यास को दूर करने वाली है ।[८१] गण्डदूर्वा मधुररसवाली, वात्त-पित्त ज्वर को दूर करने वाली तथा शीतल है और द्वन्द्वज दोषजन्य विकारों को नाश करने वाली, भ्रम, प्यास तथा श्रम को दूर करने वाली है ।[८२]

भावप्रकाशनिघण्टु :

हरि दूर्वा शीतवीर्य, तिक्त तथा कषायरसयुक्त एवं कफ, पित्तरक्त, विसर्प, तृषा, दाह और चर्मरोग को दूर करने वाली है ।[८३] सफेद दूर्वा कषाय, तिक्त एवं स्वादु रसयुक्त, व्रण के लिए

---

७७ द्रव्यगुणविज्ञान, पृ. 581

७८ राजनिघण्टु-शाल्मल्यादिवर्ग/117

७९ वही, 108

८० वही, 111

८१ वही, 113

८२ वही, 116

८३ भावप्रकाशनिघण्टु-गुडूच्यादिवर्ग/173

हितकर, जीवनशक्ति को बढ़ाने वाली, शीतवीर्य एवं विसर्प, रक्तविकार, तृषा, पित्त, कफ तथा दाह को दूर करने वाली होती है ।[८४] गांडर दूर्वा शीतवीर्य, लोहे को पिघलाने वाली, मलसंग्राहक (मल) को रोकने वाली, लघु, तिक्त, कषाय एवं मधुर रसयुक्त, विपाक में कटुरसयुक्त, वातकारक एवं दाह, तृषा, कफ, रक्तविकार, कृष्ठ तथा पित्तज्वर को दूर करने वाली होती है ।[८५]

कैयदेवनिघण्टु :

हरि दूर्वा शीतवीर्य, तिक्त, मधुर एवं कषाय, कफ, रक्त-पित्त, विसर्प, तृषा, दाह एवं चर्म रोग को दूर करने वाली होती है ।[८६] सफेद दूर्वा तिक्त, कषाय एवं मधुर, शीतवीर्य, वर्ण को उत्तम करने वाली, जीवन प्रदान करने वाली तथा विसर्प, रक्तविकार, तृषा, पित्त, कफ, दाह को नष्ट करने वाली होती है ।[८७]

मदनपाल निघण्टु :

दूर्वा शीतल विसर्प, रक्त, पिपासा, पित्त, कफ और दाहशामक होता है ।[८८]

अग्निपुराण :

दूर्वारस का नस्य नाक से बहने वाले रक्तरोग को शान्त करने में उत्तम है- नासारक्तहरो नस्याद्दूर्वारस इहोत्तमः ।।[८९]

गरुडपुराण :

दूर्वारस या कम्पिलक अथवा दारुहल्दी के कल्क से सिद्ध तेल व्रण में लगाने की श्रेष्ठ औषधि है ।[९०] दूर्वा के रस में उससे चौगुना तेल पकाकर औषधिरूप में उसको शरीर में लगाना चाहिए । इसके मालिश से कच्छ्र, विचर्चिका और पामा नामक कुष्ठरोग विनष्ट हो जाते हैं ।[९१]

---

८४ भावप्रकाशनिघण्टु-गुडूच्यादिवर्ग/174

८५ वही, 175-176

८६ कैयदेवनिघण्टु-ओषधिवर्ग/1231

८७ वही, 1233-34

८८ मदनपालनिघण्टु-अभयादिवर्ग/335

८९ अग्निपुराण-283/7

९० गरुडपुराण-170/78

९१ वही, 171/29

कांजी में जपापुष्प, ज्योतिषमती-दल, दूर्वा और चित्रक को पीसकर शर्करा के साथ पान करने से योनि रोग दूर हो जाता है ।[९२] कुष्ठ (कूट), इन्द्रयव, सरसों, हल्दी तथा दूर्वारस से कुष्ठरोग पर सफलता प्राप्त की जा सकती है-'कुष्ठेन्द्रयवसिद्धार्थो निशा दूर्वा च कुष्ठजित्' ।।[९३] शतावरी, विदारी, बालक(मोथा), उशीर, चन्दन, दूर्वा, वट, पिप्पली, बेर, सल्लकी, केला, नीलकमल, लालकमल, गूलर, पटोल, हल्दी, गुड़ तथा कुष्ठ-इन औषधियों का वर्ग कफविनाशक है ।[९४] दूर्वा, अनारपुष्प, लोध्र और हरीतकी का रस नासार्श तथा वातरक्त के दोष को दूर करता है ।[९५] हल्दी, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया गया लेप दद्रु, पामा और नामक रोग को दूर करता है ।[९६] दूर्वा, काकजंघा, अर्जुन के पुष्प, जामुन की पत्तियाँ तथा लोध्र-पुष्प-इन सभी को एक में मिलाकर पीस लेना चाहिए । इसका प्रतिदिन प्रयोग करने से शरीर की दुर्गन्ध दूर हो जाती है और वह मनोहर हो जाता है ।[९७]

चरकसंहिता :

सिता, लता, वेतस, पद्मक, यष्टि, इन्द्रायण, नलिन, दूर्वा, यवासमूल, कुशमूल, काशमूल, सुगन्धित जल और एरका, इन सबको बारीक पीसकर घी अथवा जल के साथ लेप करने से दाह की शान्ति होती है ।[९८] दूर्वा चन्दनादि तैल का प्रमुख अवयव है । यह चन्दनादि तैल मालिश करने से दाह और ज्वर का नाश करता है ।[९९] दूर्वा पद्मकादि क्वाथ का प्रमुख अवयव है । मधु और चीनी मिलाकर साथ पीने से श्वास, कास तथा रक्तपित्त रोग शान्त होता है ।[१००] दूर्वा के स्वरस की अवपीड नस्य देने से नासिका से निकलने वाला रक्तपित्त का रक्त शीघ्र शान्त हो जाता है ।[१०१] यक्ष्माजनित शिरःशूल आदि में दूर्वा, मधुक, मञ्जिष्ठा तथा नागकेसर इन्हें पीसकर

---

९२ गरुडपुराण-172/6

९३ वही, 172/17

९४ वही, 173/23

९५ वही, 177/17

९६ वही, 190/13

९७ वही, 190/23

९८ चरकसंहिता-सूत्रस्थान/2/27

९९ वही, 3/258

१०० वही, 4/67

१०१ वही, 4/100

घी में मिलाकर लेप कर देना चाहिए । यह मिश्रण दाहशामक है ।[१०२] विसर्पव्रण की चिकित्सा के लिए दूर्वा, मृणाल, शंख भस्म, चन्दन, नीलकमल, वेतसमूल, तण्डुल सबको समान भाग लेकर पानी डालकर बारीक पीस लेना चाहिए । इसके मोटे लेप को विसर्प व्रण में आक्रान्त स्थान पर लगाना चाहिए ।[१०३] दूर्वा के स्वरस से सिद्ध किया गया व्रणरोपण (घावों को भरने के लिए) उत्तम होता है ।[१०४] तिलतैल से चौगुना दूर्वा का रस लेकर पाक करना चाहिए । इसको दूर्वातैल कहते हैं । यह व्रणरोपण में सहायक है ।[१०५]

सुश्रुतसंहिता :

सुश्रुतसंहिता के अनुसार दूर्वा पित्तसंशमन द्रव्यों के अन्तर्गत रखा जाता है ।[१०६] कपिला लूता के दंश में दंशस्थान पर ताम्रवर्ण की पिछड़ा जो स्थिर होती है, निकल आती है । इसमें शिर का भारीपन, दंशस्थल पर दाह, तिमिर तथा भ्रम होते हैं । इसके उपचार में पद्माख, कूठ, एला, करञ्ज, अर्जुन की छाल, स्थिरा, अर्कपर्णी, अपामार्ग, दूर्वा और ब्राह्मी-इनका उपयोग विषहर है ।[१०७] अर्मच्छेदन की पीड़ा की शान्ति के लिए मुलेठी, कमल, नीलोत्पल, पद्मकेसर और दूर्वा- इनके कल्क में घृत मिलाकर और दूध में पीसकर शीतल ही माथे पर लेप करना प्रशस्त है ।[१०८] नेत्र रोगों में वेदना और लालिमा को दूर करने के उपायों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गेरू, सारिवा, दूर्वा जौ की पीठी, घृत और दुग्ध- इनसे तैयार किया गया लेप कोष्ण कर नेत्र पर लगाना चाहिए ।[१०९] शङ्खक की चिकित्सा में शतावर, काले तिल, मुलेठी, नीलकमल, दूर्वा, पुनर्नवा-इनको बारीक पीसकर लेप करना हितकर है ।[११०] रक्तपित्त में हरी दूर्वा और बड़ के कोमल पत्रों को पीसकर और मधु मिलाकर प्रयोग में लाना चाहिए ।[१११]

---

१०२ चरकसंहिता-चिकित्सास्थान/8/83

१०३ वही, 21/75

१०४ वही, 21/96

१०५ वही, 25/93

१०६ सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान/39/8

१०७ वही, 8/105-106

१०८ वही, 15/15

१०९ वही, 17/87

११० वही, 26/40

१११ वही, 45/20

अष्टाङ्गहृदय :

दूर्वा को पित्तनाशक द्रव्य के रूप में परिगणित किया गया है ।[११२] मुखालेप के योगों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ग्रीष्म ऋतु में कुमुद, उत्पल, लालकमल, दूर्वा, मुलेठी तथा चन्दन का लेप लगाना चाहिए । जो व्यक्ति प्रतिदिन मुखमण्डल पर उक्त लेप का प्रयोग करता है, उसकी दृष्टि मजबूत बनी रहती है, मुखमण्डल कभी मुरझाता नहीं, चिकना तथा कमल के सदृश सदा खिला रहता है ।[११३] व्रणचिकित्सा में दूर्वा अत्यन्त उपयोगी है ।[११४] यदि वैद्य को रोगी के घर की ओर जाते समय मार्ग में या रोगी के घर में प्रवेश करते समय दूर्वा का दर्शन होता है तो यह आरोग्यसूचक लक्षण होता है ।[११५] कफज तथा पित्तज व्रणों में उनके रोपण के लिए दूर्वा के स्वरस से पकाया गया घी लाभप्रद होता है ।[११६] आँख में होने वाली पीड़ा तथा लालिमा की शान्ति के लिए हरी दूर्वा, जौ, गेरू और सारिवा-इनको पीसकर मुख पर आलेप करना चाहिए ।[११७]

वृन्दमाधव :

दूर्वा-स्वरस से सिद्ध तैल प्रधान व्रणरोपण है ।[११८] दूर्वा-सवरस के साथ पक्व चतुर्गुण तैल अभ्यंग करने से कच्छू, विचर्चिका तथा पामा का नाश कर देता है ।[११९] दूर्वा और निशा का लेप कच्छू, पामा, कृमि, दद्रु तथा शीतपित्त का नाश करता है ।[१२०]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दूर्वा का महत्त्व सर्वातिशायि है । यह देवयजन, यज्ञकार्यों, कर्मकाण्डों प्रभृति में प्रयुक्त होता है । यह भारतीय सनातन परम्परा का अभिन्न अंग है । दूर्वा

---

११२ अष्टाङ्गहृदय-सूत्रस्थान/15/6

११३ वही, 22/20, 22-23

११४ वही, 29/31

११५ वही, शारीरस्थान/6/31, 39

११६ वही, चिकित्सास्थान/18/36

११७ वही, उत्तरस्थान/14/24

११८ वृन्दमाधव-45/30

११९ वही, 51/192

१२० वही, 52/7

की दैवीय उत्पत्ति तथा देवताओं की पूजा में प्रयुक्त होने के कारण यह वनस्पति पूज्य और आदरणीय है । यज्ञादि आदि में इसका प्रयोग प्रशस्य माना गया है । ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टि से भी दूर्वा उपयोगी है । विभिन्न पर्वों एवं उत्सवों में भी दूर्वा का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है । काव्यों को समृद्ध करने के लिए भी कवियों ने दूर्वा का प्रयोग किया हुआ है । औषधीय दृष्टि से भी दूर्वा अत्यन्त उपयोगी है । इसका प्रयोग विविध रोगों की चिकित्सा में होता है ।

सन्दर्भग्रन्थ

अग्निपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०५९

अभिमन्यु श्रीमन्नालाल (व्याख्याकार), अमरकोषः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००८

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा एवं शर्मा भगवती देवी (सम्पादक), अथर्ववेद, ब्रह्मवर्चस्, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, २००२

उपाध्याय आचार्य श्री बलदेव, अग्निपुराणम्, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९६६

उपाध्याय पं. बाबूराम (अनुवादक), भविष्यपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, २००३

चतुर्वेदी आचार्य पं. सीताराम, कालिदास-ग्रन्थावली, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, वि.सं. २०६३

झा तारिणीश एवं उपाध्याय बाबूराम (अनुवाद), ब्रह्मवैवर्तपुराणम्, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, २००१

झा पण्डित श्री अच्युतानन्द (व्याख्याकार), बृहत्संहिता, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००९

तिवारी प्रेमवती (सम्पादक), वृन्दमाधव, चौखम्बा विद्याभारती, वाराणसी, २००७

त्रिपाठी इन्द्रदेव (व्याख्याकार), राजनिघण्टुः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २००६

त्रिपाठी ब्रह्मानन्द (व्याख्याकार), अष्टाङ्गहृदयम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २००९

त्रिपाठी ब्रह्मानन्द (व्याख्याकार), चरकसंहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१०

त्रिपाठी माया, कादम्बरी का वानस्पतिक वैभव, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, वि.सं. २०४५

त्रिपाठी पं. हरिहरप्रसाद (व्याख्याकार), धन्वन्तरिनिघण्टुः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २००८

त्रिपाठी पं. हरिहरप्रसाद (व्याख्याकार), मदनपालनिघण्टुः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २००९

द्विवेदी कपिलदेव, वेदों में आयुर्वेद, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, २००१

पाण्डेय गंगासहाय (सम्पादक), भावप्रकाशनिघण्टुः, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, १९९९

पाण्डेय राजबली, हिन्दू धर्मकोश, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, २००३

पाण्डेय पं. रामनारायणदत्त शास्त्री (अनुवादक), महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०६५

पाण्डेय पण्डित रामतेज (सम्पादक), गरुडपुराण, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००५

राय गङ्गासागर (सम्पादक), भासनाटकचक्रम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९९८

विश्वकर्मा हीरालाल, अथर्वचिकित्साविज्ञान, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी १९८४

शर्मा आचार्य प्रियव्रत, द्रव्यगुणविज्ञान (द्वितीय भाग), चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, १९९१

शर्मा आचार्य प्रियव्रत एवं शर्मा गुरुप्रसाद (व्याख्याकार), कैयदेव निघण्टुः, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, २००६

शर्मा अनन्तराम (व्याख्याकार), सुश्रुतसंहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००६

शर्मा प्रियव्रत, नामरूपज्ञानम्, सत्यप्रिय प्रकाशन, वाराणसी, २०००

शास्त्री पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र शास्त्री (अनुवादक एवं सम्पादक), लिङ्गमहापुराणम्, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, २००८

शास्त्री श्रीकृष्णमोहन (सम्पादक), कादाम्बरी (पूर्वार्ध), चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, १९६१

मत्स्यमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०६१

शतपथ-ब्राह्मणम्, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, २००२

श्रीवामनपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०५९

संक्षिप्त गरुडपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.सं. २०६७

Subscription Rates for Journal

India: ₹ 300/-
Foreign Countries: $ 50

Subscription is always payable in advance. No subscription will be accepted for less than a year. Subscription fee is to be transferred in the account of the **Oriental Institute**, the details are:

Bank : **Bank of Baroda** (Current Account at Dandia Bazar Branch, Vadodara)
Account No. : 05780200000213
Branch Code : BARB0DANDIA (Fifth Character is Zero)
Swift Code : BARBINBBRM

भारतीय साहित्य को संस्कृत जैन पुराणों का योगदान

अरिहन्त कुमार जैन *

सारांश–

विविध भाषाओं और विधाओं में निबद्ध जैन साहित्य बहुत समृद्ध और बृहद् होने से विषय विभाजन की दृष्टि से इसे चार अनुयोगों में विभाजित किया गया है – १) प्रथमानुयोग, २) करणानुयोग, ३) चरणानुयोग और ४) द्रव्यानुयोग । इन चारों अनुयोगों में क्रमशः १–कथाएँ व पुराण, २–कर्म सिद्धान्त व लोक विभाग, ३–मुनियों एवं श्रावकों अर्थात् सद् गृहस्थों के आचार–विचार और ४–चेतन–अचेतन द्रव्यों का स्वरूप एवं तत्त्वों का निर्देश है ।

भारतीय पुराण साहित्य में संस्कृत भाषा में निबद्ध वैदिक परंपरा का पुराण साहित्य भी काफी प्राचीन और विशाल है । जैन पुराण साहित्य भी बहुत विशाल है, किन्तु यह मात्र संस्कृत भाषा में ही नहीं, अपितु प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड एवं हिंदी आदि अनेक प्राचीन भारतीय भाषाओं में भी यह पुराण साहित्य उपलब्ध है । जैन पुराण साहित्य की यह विशेषता है कि इतिवृत्तों और वृत्तान्तों में यथार्थता अधिक विद्यमान है ।

'पुराण' शब्द का प्रयोग भारतीय धर्मग्रन्थों में इतिहास के अर्थ में आता है । इन्हें मनुष्य के भूत, भविष्य, वर्तमान का दर्पण भी कहा जा सकता है, जिसमें मनुष्य अपने प्रत्येक युग का चेहरा देख सकता है । इस दर्पण में अपने अतीत को देखकर वह अपना वर्तमान संवार सकता है और भविष्य को उज्ज्वल बना सकता है । यद्यपि आधुनिक युग में इतिहास और पुराण को एक नहीं माना जाता है । क्योंकि इतिहास मात्र भूतकालीन विशेष घटनाओं, तिथियों आदि का कालक्रम से विवेचन करता है और यह जहाँ घटनाओं का वर्णन कर निर्वृत हो जाता है, जबकि पुराण प्राचीनकाल में घटित यथार्थ घटनाओं, उनसे सम्बद्ध महापुरुषों एवं चरित–नायकों आदि के वृत्तान्त के साथ–साथ हमें अपने वर्तमान जीवन को उत्कृष्ट बनाने हेतु मार्ग प्रशस्त करता है और उनके परिणाम की ओर पाठक का चित्त आकृष्ट करता है । इसके साथ ही इनमें उत्कृष्ट आचार–विचार, पुण्य–पाप, सफलता–असफलता, संस्कार एवं आत्मोन्नति का वर्णन होता है ।

मुख्य शब्द – पुराण, अनुयोग, प्रथमानुयोग, तिरेसठ शलाका पुरुष, महाकाव्य, चरितकाव्य

'स्वाध्याय' – पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. ३१–४०. ISSN 2250-0391

* जैनोलोजी एण्ड प्राकृत विभाग, सेन्टर फोर स्टडीज इन जैनिष्म, के. जे. सोमैया, धर्म अध्ययन संस्थान, सोमैया विद्याविहार विश्वविद्यालय, मुंबई, M: 9967954146 Email: drarihantpj@gmail.com

सामान्यतः कथाएँ दो प्रकार की होती हैं– साधारण कथा एवं पौराणिक कथा । इन दोनों में अन्तर यही होता है कि जहाँ साधारण कथाएँ प्रायः कल्पना पर आधारित होती हैं वहीं पौराणिक कथाएँ प्रायः पुरातन पुरुषों के मूल चरित पर आधारित होने से वे सत्य मानी जाती हैं । इसीलिए आचार्य जिनसेन ने अपने महापुराण ''पुरातनं पुराणं स्यात्''[१] कहकर प्राचीन आख्यानों को पुराण कहा है । इन्हीं ने पुराण को इतिहास शब्द से अभिहित करते हुए कहा है – ''इति इह आसीत्'' यहाँ ऐसा हुआ अर्थात् पुराण में ऐसी कथाओं का निरूपण होने से उसे 'इतिहास', 'इतिवृत्त' और 'ऐतिह्य' भी कहा है ।[२] इसीलिए जिनसेनाचार्य ने पुराण की विस्तृत परिभाषा करते हुए कहा है –

स च धर्मः पुराणर्थः पुराणं पञ्चधा विदुः ।
क्षेत्रं कालश्च तीर्थञ्च सत्पुंसस्तद्विचेष्टितम् ।।

क्षेत्रं त्रैलोक्यविन्यासः कालस्त्रैकाल्यविस्तरः ।
मुक्त्युपायो भवेत्तीर्थं पुरुषास्तन्निषेविणः ।।

न्याप्यमाचरितं तेषां चरितं दुरितच्छिदम् ।
इति कृत्स्नः पुराणार्थः प्रश्ने संभावितस्त्वया ।।[३]

अर्थात् क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टाएँ ऐसे पञ्चलक्षण-युक्त साहित्य को 'पुराण' बताया गया है। इस परिभाषा में ऊर्ध्व, मध्य और पाताल-रूप – तीन लोकों को क्षत्र; भूत, भविष्यत् और वर्तमान – तीनों समयों को काल; मोक्ष प्राप्ति के उपायभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को तीर्थ तथा तीर्थसेवियों को सत्पुरुष और उनका न्यायोपेत् आचरण उनकी चेष्टाएँ मानी गयी हैं ।

वस्तुतः पुराण का प्रमुख तत्त्व पौराणिक विश्वास है, जो प्राचीन परम्परा से प्राप्त कथाओं पर आधारित है । आदिपुराण में आगे कहा है –

स च धर्मः पुराणार्थः पुराणं पञ्चधा विदुः ।
क्षेत्रं कालश्च तीर्थं च सत्पुंसस्तदिचेष्टितम् ।।[४]

अर्थात् जिसमें क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष एवं सत्पुरुषों की चेष्टाएँ – पुराण के ये पांच वर्ण्य विषय हैं । आगे आपने पुराण के वर्ण्य विषयों का विकास करते हुए आठ वर्ण्य विषयों की घोषणा करते हुए कहा है –

---

१ महापुराण-प्रथम भाग, पर्व १, श्लोक २१

२ वही, श्लोक २४

३ वही, पर्व २, श्लोक ३८-४०

४ आदिपुराण १/३८

लोको देशः पुरं राज्यं तीर्थं दानतपोन्वयम् ।
पुराणेष्वष्टधाख्येयं गतयः फलमित्यपि ।।[५]

अर्थात् लोक, देश, नगर, राज्य, तीर्थ, गति, दान-तप, तथा फल-इन अष्टांग से युक्त पुराण होता है यानि पुराण के ये आठ मुख्य विषय माने गए हैं -

१) **लोक** - त्रिलोक का वर्णन, २) **देश** - जनपदों का वर्णन, ३) **नगर** - अयोध्या, वाराणसी आदि नगरों का वर्णन, ४) **राज्य** - राज्यों की समृद्धि का वर्णन, ५) **तीर्थ** - धर्म प्रवृत्ति तथा धर्मभूमियों का वर्णन, ६) **गति** - चतुर्गति के सुख- दुःखों का वर्णन, ७) **दान** - तप - की फलोत्पादक कथाओं का वर्णन, ८) फल - पुण्य- पाप के फल के साथ मोक्ष प्राप्ति का निरूपण ।

वस्तुतः जैन परम्परा में तिरेसठ अतिशय पुण्यवान् पुरुषों को शलाका पुरुष माना जाता है । ये संसार का कल्याण करते हुए अपनी कठोर साधना से उसी भव में अथवा आगामी भवों में मुक्ति रमा का वरण करते हैं । इन तिरेसठ शलाका पुरुषों में नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र, द्वादश चक्रवर्ती एवम् चतुर्विंशति तीर्थंकर सम्मिलित हैं । इन तिरेसठ शलाका पुरुषों के चरित का वर्णन करने वाले संस्कृत जैन काव्य, महाकाव्य, पुराण, कथा वृत्तान्त, प्रेरक आदर्श चरित विषयक साहित्य भी प्रथमानुयोग के अंतर्गत आता है । रत्नकरण्डश्रावकाचार में प्रथमानुयोग की विवेचना करते हुए आचार्य समंतभद्र कहते हैं -

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधि-निधानं, बोधित बोधः समीचीनम् ।।[६]

अर्थात् जो सम्यग्ज्ञान परमार्थ का व्याख्यान करने वाले पुण्यवर्धक चरित्र को तथा त्रेसठ शलाका सम्बन्धी पुरुषों की कला को जनता है और जो रत्नत्रय एवं समाधि का खजाना है-

वह प्रथमानुयोग है । तात्पर्य यह है कि महापुरुषों के जीवन चरित्र के साथ पुण्य-पाप, रत्नत्रय तथा समाधि-सल्लेखना के फल की जिसमें विवेचना की जाती है, उसे प्रथमानुयोग कहते हैं । प्रथमानुयोग का प्रयोजन बताते हुए गोम्मटसार जीवकांड की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका में कहा है--प्रथमानुयोगः प्रथमं मिथ्यादृष्टिमविरतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः ।[७] अर्थात् प्रथम कहिये मिथ्यादृष्टि अव्रती, विशेष ज्ञानरहित; ताको उपदेश देने निमित्त जो प्रवृत्त भया अधिकार अनुयोग कहिए सो प्रथमानुयोग कहिए ।

---

५ आदिपुराण ४/३

६ रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक ४६

७ गोम्मट्टसार जीवकांड जीव तत्त्व प्रदीपिका टीका गाथा ३६१-३६२/७७३/३

जैन पुराणों का महत्त्वः

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में समृद्ध रूप में विद्यमान जैन पुराण साहित्य का अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण स्थान है । जैन धर्म में पुराण साहित्य को प्राचीन संस्कृति का दर्पण कहा गया है । जैन आचार्यों ने 'जैनधर्म' को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए तथा उसे सर्वसाधारण तक सुप्रचारित करने के लिए पुराणों का सृजन किया । युग की मांग के अनुरूप जैन विद्वानों ने न केवल संस्कृत में अपितु प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, तेलगु, कन्नड़ आदि भाषाओं में प्रचुर मात्रा में ग्रन्थों का प्रणयन किया । तत्कालीन समाज में लोकप्रिय रामायण, महाभारत की कथाओं एवं पात्रों को जैन पुराणों में भी महाकाव्य के रूप में निबद्ध किया गया, साथ ही पारम्परिक पुराणों एवं महाकाव्यों के कतिपय नामों के अनुरूप जैन पुराणों का नामकरण किया गया-- जैसे - पद्मपुराण, आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, शांतिनाथपुराण आदि - इन पुराणों में अलौकिक तथा अविश्वसनीय घटनाओं के स्थान पर सरल, तर्कसंगत तथा बोधगम्य घटनाओं और कथाओं को स्थान दिया गया ।

यद्यपि जैन पुराणों में तिरेसठ शलाका पुरुषों के साथ ही अन्यान्य उच्च महापुरुषों पर भी पुराण शास्त्र लिखे गए हैं, किन्तु भारत की सभी प्राचीन परम्पराओं में सर्वमान्य महापुरुष राम और कृष्ण के चरित पर उच्चकोटि के अनेक पुराण ग्रंथो की रचना जैनाचार्यों द्वारा की गई है । यद्यपि ये दोनों महानायक तिरेसठ शलाका पुरुषों में सम्मिलित हैं । फिर भी भारतीय संस्कृति एवं समाज में इन दो महापुरुषों की काफी लोकप्रियता है । इसीलिए वैदिक और श्रमण परंपराओं में इन दोनों महापुरुषों के आधार पर काफी पुराण ग्रंथों का सृजन किया गया मिलता है । यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण पुराणों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है । इनमें भी सर्वप्रथम पद्म अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित संबंधी पुराण का परिचय प्रस्तुत है -

पद्म पुराण (६७७-६७८ ई.) :

आचार्य रविषेण द्वारा विरचित पद्म पुराण, जिसकी भाषा संस्कृत है, ६७७-६७८ ई. में लिखा गया था । यह पद्म अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम एवं शलाका पुरुषों में एक विशिष्ट पुरुष राम कथानक पर आधारित है । इस पुराण में १२३ पर्व तथा १८०२३ श्लोक है । बलभद्र राम बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ भगवान् के तीर्थकाल में हुए हैं, अतः यह पुराण भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के चरित का वर्णन करता हुआ तत्कालीन नारायण लक्ष्मण, प्रतिनारायण, रावण, वानरवंशी हनुमान् तथा इनके परिवारों और इन सबके वंशों का सजीव चित्रण भी करता है । संस्कृति और सभ्यता का कोई ऐसा अंग नहीं जो इस पुराण में वर्णित न हो पाया हो । इस पुराण की यह विशेषता है कि चरित्र वर्णन के क्रम में प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, कला

एवं इतिहास का इतना उत्कृष्ट रीति से वर्णन किया गया है कि हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति में चार-चाँद लगते हुए दिखते हैं ।

हरिवंश पुराण (७८३ ई.) :

शक संवत् ७०५ अर्थात् ई. सन् ७८३ में रचित इस ग्रन्थ के कर्ता पुन्नाट संघीय आचार्य जिनसेन प्रथम हैं । यह पुराण महाभारत की कथा पर आधारित है । इस पुराण की विषयवस्तु ६८ सर्गों में विभक्त है । इसमें सर्व प्रथम लोक आकार का वर्णन है, फिर राजवंशों की उत्पत्ति, तदन्तर हरिवंश का अवतार, फिर वासुदेव की चेष्टाओं का कथन, तदन्तर नेमिनाथ का चरित, द्वारका-निर्माण, युद्ध वर्णन और निर्वाण : ये आठ शुभ अधिकार कहे गये हैं । इसमें प्रधानतया २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित लिखा गया है परन्तु प्रसंगानुसार अन्य कथानक भी लिखे गये हैं । पाण्डव और कौरवों का लोकप्रिय चरित्र इसमें बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित किया गया है । श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र भी इसमें अपना पृथक स्थान रखता है ।

भारतीय इतिहास की दृष्टि से इस पुराण में ईसा पूर्व छठी शती के तीर्थंकर महावीर से लेकर गुप्त वंश के समय तक मध्यदेश पर शासन करने वाले प्रमुख राजवंशों की परम्परा का उल्लेख तथा अवन्ति के राजवंशों का क्रम दिया गया है । इसी क्रम में पुष्यमित्र भांग, वसु, अग्निमित्र, नरवाहन आदि राजाओं का उल्लेख है । हरिवंश पुराण की रचना के समय वत्सराज अवन्ति का शासक था क्योंकि ७७८ ई. में विरचित उद्योतनसूरि की कुवलयमाला में भी वत्सराज का उल्लेख है । इसके साथ ही इस पुराण में तत्कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था इतिहास, भूगोल, राजनीति, धर्म, नीति आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों तथा अनेक आख्यानों व उपाख्यानों का वर्णन हुआ है ।

आदिपुराण (९ वीं शताब्दी):

महाकवि आचार्यप्रवर जिनसेन द्वारा विरचित आदिपुराण जिसकी भाषा संस्कृत है ९वीं शताब्दी की सर्वोत्तम पौराणिक कृति है । इस आदिपुराण में ४७ पर्व है जिनमें से ४२ पर्व और ४३ वे पर्व के ३ श्लोक तक जिनसेनाचार्य द्वारा रचित है । शेष पर्वों के १६२० श्लोक उनके शिष्य भदन्त गुणभद्राचार्य द्वारा विरचित हैं । यह इतिहास, अर्थशास्त्र, अध्यात्म, समाज-शास्त्र, कोशग्रन्थ एवं एक उत्कृष्ट महाकाव्य के धरातल पर पूर्णतया खरी उतरने वाली दिक्कालजयी कृति है । आदिपुराण संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है । ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसका इसमें प्रतिपादन न हो । यह पुराण महाकाव्य है, धर्मकथा है, धर्मशास्त्र है, राजनीतिशास्त्र है, आचार शास्त्र है और युग की आद्यव्यवस्था को बताने वाला महान् इतिहास है । इसलिए विद्वज्जनों ने इसे पुराण-साहित्य-तिलक एवं पुराण सरताज आदि नामों से सम्मानित किया है ।

इसमें आदितीर्थंकर ऋषभदेव के पूर्वभव, कुलकर परम्परा, देश-समाज व्यवस्था, आदिनाथ का सम्पूर्ण जीवन एवं उनके विशिष्ट पुत्र भरत और बाहुबली का सम्पूर्ण आभामय जीवन अन्य प्रसंगों के साथ अत्यन्त तथ्यात्मक एवं प्रभावक ढंग से चित्रित है । सभी नायकों के चरित्रों द्वारा इसमें पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि की गयी है । भगवान् ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरों में आद्य तीर्थंकर हैं । तृतीय काल के अन्त में जब भोगभूमि की व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी तब उन्होंने असि (सैनिक कार्य), मसि (लेखन कार्य), कृषि (खेती), विद्या (संगीत-नृत्यगान आदि), शिल्प (विविध वस्तुओं का निर्माण) और वाणिज्य (व्यापार) - इन छह कार्यों का उपदेश दिया तथा इन्द्र के सहयोग से देश, नगर, ग्राम आदि की रचना करवायी । भगवान् द्वारा प्रदर्शित छह कार्यों से लोगों की आजीविका चलने लगी । कर्मभूमि प्रारम्भ हो गयी । आदिपुराण में भारतीय समाज एवं संस्कृति की प्रमुख विशेषता वर्णव्यवस्था का निरूपण करने के साथ जाति व्यवस्था के बारे में भी विस्तार से बताया गया है ।

उत्तर पुराण (१० वीं शताब्दी) :

उत्तर पुराण १० वीं शताब्दी में जिनसेन के शिष्य गुणभद्राचार्य द्वारा लिखा गया । इसमें अजितनाथ आदि को लेकर २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र, ९ प्रतिनारायण तथा जीवन्धर स्वामी आदि कुछ विशिष्ट पुरुषों के कथानक दिये हुए हैं । आठवें, सोलहवें, बाइसवें, तेईसवें और चौबीसवें तीर्थंकर को छोड़कर अन्य तीर्थंकरों के चरित्र बहुत ही संक्षेप में लिखे गये हैं । विविध कथानकों एवं उपकथानकों में तत्कालीन संस्कृति, सामाजिक स्थिति, धार्मिक स्थिति, राजनैतिक पक्ष एवं आर्थिक पक्ष का परिचय प्राप्त होता है ।

इन सब के अतिरिक्त अनेक महापुरुषों के चरित से सम्बंधित अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो कि पुराण संज्ञक ग्रंथों से भी अधिक है । इनमें वरांगचरित, जिनदत्त चरित, जम्बूस्वामी चरित एवं अपभ्रंश के जसहर चरिउ, नागकुमार चरिउ जैन अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इनके अतिरिक्त और भी महत्त्वपूर्ण बृहद् चरित काव्य उपलब्ध हैं; इनमें आचार्य हेमचन्द्र कृत 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' नामक पुराण काव्य एक बेजोड़ ग्रन्थ है, जिसमें चौबीस तीर्थंकरों सहित त्रेसठ शलाका पुरुषों का चरित वर्णित है । इसी तरह आचार्य जिनदत्तसूरि के शिष्य अमरचंद्र कृत 'चतुर्विंशति- जिनचरित' (१३वीं शती) में भी चौबीस तीर्थंकरों का चरित वर्णित है । इन्हीं कवि का बालभारत नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है ।

आचार्य मेरुतुंग कृत महापुराण चरित के पांच सर्गों में तीर्थंकर ऋषभनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा वर्द्धमान - इन पांच तीर्थंकरों का चरित वर्णित है । इन्हीं आचार्य मेरुतुंग की एक अन्य प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट रचना 'प्रबंध चिंतामणि' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । पं. आशाधर (१३ वीं शती) कृत 'त्रिषष्ठिपूर्ति स्मृति शास्त्र' भी एक महत्त्वपूर्ण चरित काव्य

है जिसमें त्रेसठशलाका पुरुषों का चरित वर्णित है । इसी तरह आचार्य दामनंदी कृत 'पुराणसार संग्रह' में भी शलाका पुरुषों के चरित का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।

उपर्युक्त कुछ पुराणों के अतिसंक्षिप्त परिचय एवं प्रत्येक पुराण का अलग से स्वतंत्र अध्ययन करने के आधार पर हम कह सकते हैं कि यहाँ प्रत्येक पुराण शास्त्र में 'पुराण' शब्द का प्रयोग मात्र आकर्षण के लिए किया गया था । वस्तुतः इसके वर्णनों में जैन धर्म-दर्शन के जटिल सिद्धांत सरल रूप में पिरोये गए हैं, लेकिन इसमें ऐसे अन्य तत्त्वों का वर्णन भी है, जिसके आधार पर तत्कालीन भारतीय जीवन, आर्थिक विचारों की रूपरेखा तैयार की जा सकती है ।

इस प्रकार जैन पुराणों में भारतीय राजनैतिक, आर्थिक, शासकीय संस्थाएं, धर्म, दर्शन, विधि और वैधानिक प्रथाएँ, धर्मदर्शन तथा आध्यात्म आदि सभी विषयों का उत्कृष्टता के साथ विवेचन किया गया है । जैन पुराणों में कथा रस गौण और धर्म भाव प्रधान है । वहीं दूसरी ओर भारत के सांस्कृतिक इतिहास की बहुमूल्य सामग्री निबद्ध है । इस दृष्टि से जैन पुराण भारतीय संस्कृति के अक्षय भंडार है । इसीलिए स्वाध्याय के इच्छुक जनों को सर्वप्रथम पुराण जैसे प्रथमानुयोग के शास्त्रों के स्वाध्याय का उपदेश दिया जाता है ताकि महापुरुषों के जीवन पर आधारित कथाओं के द्वारा सरल-सुबोध भाषा, भाव और श्रद्धा के माध्यम से रुचि पूर्वक उनके उदात्त चरित को आदर्श बनाकर हम अपना मानव जीवन सार्थक कर सकें ।

सम्पूर्ण विशाल जैन पुराण साहित्य में कुछ प्रमुख पुराण ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है :

१.	पद्मपुराण-आचार्य रविषेण (वि.सं. ७०५)
२.	महापुराण- क) आदिपुराण-आ. जिनसेन (८वीं शती) ख) उत्तरपुराण-आ. गुणभद्र (१०वीं शती)
३.	हरिवंशपुराण-आ. जिनसेन द्वितीय (वि.सं. ८४०)
४.	आदिपुराण (कन्नड़)-कविपंप
५.	आदिपुराण-भट्टारक चन्द्रकीर्ति (१७वीं शती)

६.	आदिपुराण-भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं शती)
७.	उत्तरपुराण-भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं शती)
८.	कर्णामृत पुराण-केशवसेन (सं. १६०८)
९.	जयकुमार पुराण-ब्र. कामराज (सं. १५५५)
१०.	चन्द्रप्रभ पुराण-अगासदेव कवि
११.	चामुण्डपुराण-चामुण्डराय (श.सं. ८८०)

१२.	धर्मनाथ पुराण–कवि बाहुवली
१३.	नेमिनाथ पुराण–ब्र. नेमिदत्त (सं. १५७५)
१४.	पद्मनाथ पुराण–भट्टारक शुभचंद्र (१७वीं शती)
१५.	पउमचरिउ (अपभ्रंश)–चतुर्मुखदेव
१६.	पउमचरिउ–स्वयंभूदेव
१७.	पद्मपुराण–भ. सोमसेन, भ. धर्मकीर्ति (सं. १६५६), भ. चन्द्रकीर्ति (१७वीं शती)
१८.	पद्मपुराण (अपभ्रंश)–कवि रइधू (१५-१६ शती)
१९.	पद्मपुराण–ब्रम्ह जिनदास (१६वीं शती)
२०.	पाण्डवपुराण–भ. शुभचंद्र (सं. १६०८)
२१.	पाण्डवपुराण (अपभ्रंश)–भ. यशकीर्ति (सं. १४९७)
२२.	पाण्डवपुराण–भ. श्रीभूषण (सं. १६५८)
२३.	पाण्डवपुराण–वादिचन्द्र (सं. १६५८)
२४.	पार्श्वपुराण (अपभ्रंश)–पद्मकीर्ति (सं.९८९)
२५.	पार्श्वपुराण–कवि रइधू
२६.	पार्श्वपुराण–भ. चन्द्रकीर्ति

२७.	पार्श्वपुराण–वादिचन्द्र
२८.	महापुराण–आ. मल्लिषेण (सं. ११०४)
२९.	महापुराण (अपभ्रंश)– महाकवि पुष्पदन्त
३०.	मल्लिनाथ पुराण–कवि नागचन्द्र
३१.	पुराणसार–श्रीचन्द्र
३२.	महावीरपुराण (वर्द्धमान चरित)– असग कवि (सं.९१०)
३३.	महावीरपुराण, मल्लिनाथ पुराण–भ. सकलकीर्ति (१५वीं शती)
३४.	मुनिसुव्रतनाथ पुराण–ब्र. कृष्णदास
३५.	मुनिसुव्रतनाथ पुराण–भ. सुरेन्द्रकीर्ति
३६.	वागर्थसंग्रह पुराण–कवि परमेष्ठी (आ. जिनसेन के महापुराण से प्राक्)
३७.	शान्तिनाथ पुराण–असग कवि
३८.	शान्तिनाथ पुराण–भ. श्रीभूषण
३९.	श्रीपुराण–भ. गुणभद्र
४०.	हरिवंशपुराण (अपभ्रंश)–स्वयंभूदेव, चतुर्मुखदेव, कवि रइधू
४१.	हरिवंशपुराण–ब्रह्मजिनदास, भ. यशःकीर्ति (सं. १५०७) भ. श्रुतकीर्ति (सं. १५५२) भ. धर्मकीर्ति (सं. १६७१) कवि रामचंद्र (सं. १५६० के पूर्व)

इनमें से कुछ पुराण तो इतने उत्कृष्ट हैं कि उन्हें संस्कृत महाकाव्य की श्रेणी में रखा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । इस शोध लेख की अपनी सीमाएं होने के कारण सभी पुराणों के प्रतिपाद्य विषय का परिचय देना संभव नहीं है, क्योंकि वह तो एक बृहद् शोधप्रबंध का विषय है ।

जैन परम्परा के महान आचार्यों ने अनेक उत्कृष्ट पुराणशास्त्रों की रचना तो की ही, साथ ही प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तमिल एवं कन्नड़ आदि प्राचीन भाषाओं में अनेक उत्कृष्ट चरित महाकाव्यों की रचना करके भारतीय वाङ्मय के विकास में महनीय योगदान प्रस्तुत किया है । निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जैन 'पुराण' साहित्य भारतीय वाङ्मय की एक ऐसी स्वतंत्र विधा है, जिन्हें समग्र रूप में 'भारतीय संस्कृति का विश्वकोश' कहा जा सकता है ।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय वाङ्मय में समृद्ध रूप में विद्यमान जैन पुराण साहित्य का अनेक दृष्टियों से काफी महत्त्व है । क्योंकि इन पुराणों में चरित, आख्यान, घटनाओं और उक्त वर्ण्य अंगो के साथ ही आचार, धर्म-दर्शन, ज्योतिष निमित्त, गीत-संगीत, वंशों की उत्पत्ति, धर्माचार्यों के आख्यान, तीर्थों का महत्त्व, प्राकृतिक इतिवृत्त एवं भौगोलिक स्थलों के उल्लेख, परम्परागत विश्वास आदि विविध विषयों का समावेश रहने से ये विपुल ज्ञान-विज्ञान के अक्षय कोष और महाकाव्य स्वरूप हैं । इस तरह प्राचीन भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा विविध वैभव के ज्ञान हेतु सम्पूर्ण जैन पुराण साहित्य का अध्ययन-अनुसंधान बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है ।

ग्रंथ सूची :

१. आचार्य जिनसेन, महापुराण, सम्पा. एवं अनुवादक-पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, संस्करण-६, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९९८

२. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, सम्पा. एवं अनुवादक-पं. पन्नालाल जी साहित्यार्चा, संस्करण-६, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९९८

३. जिनसेनाचार्य (उन्नट संघीय), हरिवंशपुराण, सम्पा. एवं अनुवादक-पं. पन्नालाल जी साहित्यचार्य, संस्करण-६, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २०००

४. आचार्य गुणभद्र, उत्तरपुराण, संपा. एवं अनु पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, संस्करण-६, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, १९९८

५. आचार्य रविषेण, पद्मपुराण, संपा. एवं अनु. पे. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, संस्करण-६, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २०००

६. रत्नकरण्डश्रावकाचार, आचार्य समंतभद्र

७. आदिपुराण परिशीलन, संपा. डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, भगवान ऋषभदेव ग्रंथमाला, सांगानेर, जयपुर, २००१

८. ब्र. हरिलाल जैन, चौबीस तीर्थंकर महापुराण, अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन, खैरागढ़ (म.प्र.), २०१०

९. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, संपा. प्रो. फूलचन्द जैन प्रेमी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, २००७

सतसई परम्परा एवं बाल सतसई

राम दयाल बैरवा *

सारांश

हिंदी में साहित्य सृजन से पूर्व संस्कृत, प्राकृत, पाली तथा अपभ्रंश में साहित्य लेखन किया जाता रहा है । बाद में यही भाषाएं परिमार्जित होकर मानक हिंदी के रूप में हमारे बीच में विद्यमान हुई है । साहित्य सृजन में कवियों का उद्देश्य लोकहित तो रहता ही था, साथ ही वे अपने कार्य में विशिष्टता लाने के लिए कुछ न कुछ नवीनता लाने का प्रयास करते थे । इसी विशिष्टता का एक स्वरूप है सतसई परंपरा । सतसई शब्द 'सत' और 'सई' दो शब्दों से मिलकर बना है । 'सत' का अर्थ है- सात और सई का अर्थ है- सौ । अर्थात् ऐसा काव्य संग्रह जिसमें सात सौ छंद हो, सतसई कहलाता है । संस्कृत भाषा का शब्द पद ''सप्तशती'' हिंदी में 'सतसई' के रूप में व्यवहृत हुआ है । सतसई में अधिकतर छंद के दोहे होते हैं । परंतु कुछ रचनाकारों ने अन्य छंदो में भी सतसई की रचना की है । सतसई में विभिन्न विषयों पर सात सौ या इससे अधिक छंद होते हैं । इस परंपरा का प्रथम ग्रंथ हाल कवि कृत 'गाथा सप्तशती' को माना जाता है, जो कि प्राकृत भाषा का ग्रंथ है, जिसमें लोक जीवन को प्रस्तुत करने वाली गाथाएं संग्रहित है । इसके बाद गोवर्धनाचार्य कृत 'आर्या सप्तशती' की रचना की गई । 'आर्या सप्तशती' संस्कृत का ग्रंथ है । इसमें आर्या छंद का प्रयोग है, हिंदी साहित्य में सतसई परम्परा पर इन ग्रंथों का प्रभाव पड़ा है ।

प्राकृत भाषा के ग्रंथ 'गाथा सप्तशती' से साहित्य जगत में सतसई लिखने की परंपरा का प्रादुर्भाव हुआ, और इस ग्रंथ की लोकप्रियता ने हिंदी कवियों को इस प्रकार के ग्रंथ लिखने के लिए प्रेरित किया । हिंदी साहित्य के विद्वान कवियों को इस परिपाटी का पालन करते हुए अनेक सतसइयाँ लिखीं । जिनमें कुछ ग्रंथ शुद्ध श्रृंगारिक थे तो कुछ नीति परक छंदों से पूर्ण हैं ।

वास्तव में भक्तिकालीन कवियों ने नीति शिक्षण के लिए ही सतसई प्रणाली को अपनाया था जिनमें वृन्द, रहिम, तुलसीदास जैसे विद्वान कवि भी शामिल है । हिन्दी सतसई के अनेक ग्रन्थ आज उपलब्ध है, परन्तु जो लोकप्रियता रीतिकालीन श्रृंगारिक कवि बिहारी के ग्रंथ ''बिहारी

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. ४१-४८. ISSN 2250-0391

* अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान ३०३००२, M: 6350639343, Email: rd.bairwa.kn@gmail.com

सतसई'' ने अर्जित की है वैसी लोकप्रियता अन्य किसी सतसई ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुई है । यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमाने में सतसई लिखने की प्रेरणा कवि बिहारी सतसई से ही लेते है ।

मुख्य शब्द - सतसई, बाल साहित्य, बालक, साहित्यकार, विकास, भक्ति और नीति, शृंगार रस

सतसई परंपरा में संस्कृत भाषा में प्राप्त सतसई गोवर्धनाचार्य कृत 'आर्या सप्तशती' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । आर्या सप्तशती में लगभग ७६० आर्याये हैं । यह मध्यकाल की रचना है एवं इस पर हाल कवि द्वारा लिखित गाथा सप्तशती का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। गाथा छन्द और आर्या छन्द एक दूसरे के काफी निकट है, अतः प्रभाव होना स्वाभाविक भी है । जिस प्रकार हाल ने प्राकृत भाषा में शृंगारपरक गाथाएं लिखी है उसी प्रकार गोवर्धनाचार्य ने संस्कृत में ।

गोवर्धनाचार्य आदि कवि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास तथा महाकवि कालिदास की संस्कृत काव्य कृतियों से बहुत प्रभावित थे । हाल कवि की गाथा सतसई में ग्रामीण जीवन की शृंगार पर झांकियां प्राकृत भाषा में गोवर्धनाचार्य को प्रिय लगी । इसलिए उन्होंने आर्या छंद में वैसे ही रससिक्त वर्णन संस्कृत भाषा में लिखें ।

संस्कृत भाषा में प्रारंभ हुई सप्तशती परंपरा, बाद में भी कवियों द्वारा अपनाए जाने के उल्लेख प्राप्त हुए हैं । विश्वेश्वर पांडेय ने संस्कृत में 'सप्तशती' की रचना की । पं. वागीश शास्त्री ने संवत् २०१८ विक्रमी में 'राधा सप्तशती' तथा शिवदत्त चतुर्वेदी ने विविध विषयों पर लिखी आर्याओ को 'स्फूर्ति सप्तशती' के रूप में तैयार किया गया ।

प्राकृत भाषा में सतसई परंपरा संस्कृत से पूर्व पाई जाती है, इसका प्रमाण हाल कवि की सतसई 'गाहा सतसई' या 'गाथा सप्तसती' है । गाथा सप्तशती की प्रमुख विशेषता भाषा प्रयोग में है । प्रकृति से चुने गए प्रतीक और बिंब भाषा को बहुत प्रभावपूर्ण बना रहे हैं । अलंकार उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, मानवीकरण, श्लेष, अनुप्रास, आदि के रूप आए हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से हाल कवि कृत 'गाथा सतसई' प्राकृत भाषा की एक श्रेष्ठ काव्य कृति है ।

हिन्दी साहित्य के विद्वान कवियों ने अनेक सतसइयाँ लिखी, जिनमें कुछ ग्रन्थ शुद्ध शृंगारिक थे तो कुछ नीतिपरक छन्दों से पूर्ण है । कुछ हिन्दी कवियों की सतसई का परिचय इस प्रकार है-

तुलसी सतसई– तुलसीदास द्वारा संवत् १६४२ में लिखी गई है, हिंदी साहित्य की सतसई परंपरा में इसे प्रथम सतसई माना गया है । इसे ७ सर्गों में विभक्त किया गया है जिसमें भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय देखने को मिलता है ।

बिहारी सतसई– रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि बिहारी ने बिहारी सतसई की रचना की । बिहारी सतसई पर गाथा सप्तशती, गोवर्धनाचार्य कृत आर्या सप्तशती, आदि का प्रभाव देखने को मिलता है । बिहारी सतसई का रचनाकाल १६९२ माना जाता है एवं तभी से सतसई रचना का क्रम प्रारंभ हुआ । सतसई में ७१३ दोहे माने जाते हैं, इसमें शृंगार रस की प्रधानता है एवं वियोग शृंगार रस भेदों को निरूपित किया गया है । नीति और भक्ति के पदों को भी इसमें समाहित किया गया है परंतु प्रधानता शृंगार रस की है । सतसई में शृंगार के पश्चात् भक्ति का स्वरूप अधिक आकर्षक दिखता है । बिहारी ने जगत, ब्रह्मा, सगुण, निर्गुण, आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है । बिहारी सतसई इतनी लोकप्रिय हुई कि तभी से सतसई परंपरा का आरंभ होने लगा ।

मतिराम सतसई– रीतिकाल के कवियों में मतिराम का नाम भी काव्य प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध है । इस सतसई में प्रधानतः शृंगार ही है, शृंगार के अतिरिक्त भक्ति और नीति के दोहे भी हैं ।

युक्ति तरंगिणी– युक्ति तरंगिणी कुलपति की १७७३ में लिखी गई कृति है । इसके नाम में सतसई नहीं है परंतु कुलपति ने इसमें ७०७ दोहे समाहित किए हैं । इस सतसई में शृंगार के दोनों पक्षों के साथ अन्य रसों का भी वर्णन है । इस सतसई के १०४ दोहों में नायिका भेद का ही निरूपण है ।

भूपति सतसई– भूपति ने सवंत् १७९१ में अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह के कहने पर सतसई लिखी थी । जिसमें शृंगार भक्ति एवं नीति के बाद हैं ।

वृंद सतसई– १७६१ में कवि वृंद द्वारा रचित सतसई से ही उन्हें प्रसिद्धि मिली । इसमें शृंगार का वर्णन ही नहीं किया गया है, बल्कि नीति, सदाचार एवं शिष्टाचार पर विशेष बल दिया गया हैं ।

चंदन सतसई– १८२०-१८५० के मध्य कवि चंदन ने शृंगार रस एवं भक्ति भाव पर आधारित एक सतसई की रचना की थी ।

राम सतसई– राम सतसई की रचना संवत् १८६० से १८८० के मध्य कवि राम सहाय ने की थी । परंपरागत द्दष्टि से इस सतसई में भी शृंगार रस का वर्णन है ।

विक्रम सतसई– १८२५-१८८५ के मध्य कवि विक्रम द्वारा इस सतसई की रचना हुई है । यह कृति बिहारी एवं मतिराम से प्रभावित है । भक्ति, लोक नीतिपरक, व्यावहारिक अनुभव, ऋतु, प्रकृति, पर्व, रीति रिवाज, धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख सतसई में समाहित है ।

दयाराम सतसई– दयाराम सतसई को डॉ. अंबाशंकर नागर ने प्रकाशित करवाया है । प्रस्तुत काव्य का रचनाकाल सन १८३३–१९०९ तक माना जाता है । इसके १४६ ग्रंथ उपलब्ध है, जिसमें ४६ ग्रंथ व्रज भाषा में रचित है । यह सतसई १५ प्रकरणों में विभक्त है ।

आधुनिक काल में रचित सतसई

हरि औध सतसई– आधुनिक काल में ७०० दोहों एवं ९६ प्रसंगो में रचित सतसई की रचना अयोध्या सिंह हरि औध ने की । यह आधुनिक काल में रचित पहली सतसई खड़ी बोली में लिखी गई है । इसमें ईश्वर गुणगान, विनय वर्णन एवं स्तुति से संबंधित दोहे लिखे गए हैं ।

वीर सतसई– सन् १९२७ में कवि वियोगी हरि ने ब्रजभाषा में वीर सतसई लिखी है । इसकी रचना सात शतकों में की गई है । इस सतसई में समाज सुधार, देश भक्ति, और वीर रस आदि से जुड़े हुए दोहे लिखे गए हैं । यह सतसई आधुनिक काल की प्रसिद्ध सतसईयों में शामिल है ।

किसान सतसई– उत्तर रीतिकालीन ब्रजभाषा में श्री जगनसिंह सेंगर ने किसान सतसई की रचना की है । इसमें भारत के कृषकों की दशा का वर्णन किया गया है । पूरी सतसई के सातों शतकों में किसानों की दशा, परिस्थितियों का चित्रण है ।

ब्रज सतसई– ब्रज सतसई की रचना पं. रामचरित उपध्याय ने आधुनिक काल में की है । यह तीन खंडों में रचित सतसई में ७१५ दोहे हैं ।

ज्ञान सतसई– ब्रज भाषा में ज्ञान संबंधित दोहों की सतसई लिखी गई है, जिसके कवि राजेन्द्र शर्मा है । प्रस्तुत सतसई में मानव को ज्ञान के माध्यम से उसके अंदर के अंधकार को समाप्त करने का प्रयास किया गया है ।

करुण सतसई– खड़ी बोली में अविभाजित पंजाब के निवासी रामेश्वर करुण ने ७१५ दोहों के सतसई की रचना की है । प्रस्तुत सतसई में दुःख एवं देशभक्ति के पदों का चित्रण है ।

पंकिल सतसई– आधुनिक जीवन से संबंधित पंकिल सतसई की रचना कवि रामरज पंकिल ने की है । प्रस्तुत सतसई में ब्रज भाषा में रचित ७०१ दोहे लिखे गए हैं । इस सतसई को तुलसी, रहीम और वृंद की परंपरा की मानी जाती है, जिसके लगभग सभी दोहे भक्ति, नीति एवम् उपदेशमूलक हैं ।

डॉ. कृष्ण मुरारी शर्मा– ''दोहांजलि'' (दोहा सतसई)– 'दोहांजलि' सात सौ एक दोहों का संकलन है जिसको विभिन्न वर्गो में विभाजित किया गया है । प्रथम वर्ग ''ज्योति कण'' शीर्षक से है, दूसरे वर्ग में देश तथा देश के मान सम्मान के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने वाले अमर बलि

सपूतों को नमन किया गया है । दोहांजलि में अधिकांश दोहे नीति विषयक है व उनमें देश-प्रेम, सदाचरण, ईमानदारी, कर्तव्य बोध, धर्म निष्ठा, पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, मानवता, इत्यादि मौक्तिकों को दोहों की माला पीरोकर प्रस्तुत किया गया है । दोहों में व्यक्त विचार विषय हमारे इर्द गिर्द के रोजमर्रा जीवन से लिये जाने से उनमें अटपटापन नहीं है । साथ ही उन्हें प्रचलित भाषा में प्रकट किया गया है ।

मुरलीधर पाण्डेय– ''मुरली सतसई'', –सात सौ दोहों में रचित 'मुरली सतसई' में सामाजिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक, उपदेशात्मक, शृंगार रस, बाल दोहे, हास्य-व्यंग्य स्वभाव पर केन्द्रित, पाताली हण्डों पर केन्द्रित तथा कुछ राजनीतिक दोहे सम्मिलित है । पाताली हण्डे का अर्थ है पाताल लोक में गंगा नदी के किनारे बने घाटों पर गौ दान स्वर्ग भेजने का दायित्व, दान-धर्म पर केन्द्रित दोहे मुरलीधर पाण्डेय की कल्पना पर केन्द्रित है, जो कि पृथ्वी पर बने घाटों पर गौ दान या कर्मकाण्ड अथवा धार्मिक क्रियाकलापों पर केन्द्रित मानकर नहीं लिखे गए, मात्र आनन्दानुभूति हेतु है ।

डॉ. विरेन्द्र निर्झर– ''सघंर्षों की धूप'' (दोहा सतसई),- सात सौ ग्यारह दोहों में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा नैतिक सरोकारों के साथ ही समाज में बढ़ रही विकृतियों, निराशा, कुण्ठा, आदि को जहाँ उद्घाटित किया गया है वहीं मानवीय मूल्यों के संपोषण हेतु महापुरुषों के आप्त वाक्यों, आचारों विचारों, को भी दोहों में रूपान्तरित किया गया है । आज की विषमताओं और विसंगतियों से जूझते मानव की ऊल्झन और विडंबनाओं को आलेखित करते हुए संघर्ष का नाम ''संघर्षों की धूप'' रखा गया है ।

डॉ. स्वामी विजयानन्द– ''विजयानन्द सतसई'', (खण्ड १ व २), – ''विजयानन्द सतसई'' खण्ड १ में सात सौ दस दोहे खण्ड २ में सात सौ आठ दोहे रचित है । जिसमें दोहों के सभी विभेदों का बिना किसी क्रम के समावेश किया गया है । साहित्यिक रसों को यथोचित सम्मान दिया गया है, भक्ति, वैराग्य, धर्म, शृंगार के अतिरिक्त नीति संबंधी दोहों का अभाव नहीं हैं । अलंकारों का स्वतः समावेश हुआ है जो कि स्वांतः सुखाय हेतु लिखे गये है । जीवन के हर पक्ष को सुचारु रूप से प्रस्तुत करके जीवन जीने की कला, कर्तव्य निर्वहन करने, निरन्तर प्रगति पथ पर बढने और आस्था भक्ति की न्याग्रा तीव्र धारा में डूबकर स्वार्थ, लोभ, मोह आदि से मुक्ति पाकर अंतिम सांस तक संघर्ष करने की प्रेरणा का स्वर्णाक्षरों में लिखित दस्तावेज है ।

हिन्दी साहित्य में लिखी गई अन्य सतसइयों में सूर्यमल मिश्रण कृत ''वीर सप्तशती'' या ''वीर सतसई'', दिवान बहादुर चन्द्रभान सिंह कृत ''प्रेम सतसई'', नरेश चन्द्र सक्सेना कृत ''सैनिक सतसई'' भगवान दास एजाज कृत ''एजाज सतसई'', एबी सिंह कृत ''भावनात्मक एकता'', (सात सौ सत्तर दोहों का संग्रह) ''धर्म कर्म का व्याकरण'', ''सामाजिक बदलाव'',

''गंगा यमुनी सभ्यता'', ''चिट्ठी आई गांव से'', ''सभी आबाद रहे'', ''बने सफल सत्कर्म से'', गंगा शरण शर्मा ''प्यासा'' कृत ''गंगा सतसई'', पंडित शिव दयाल वाजपेयी कृत ''शिव सतसई'', डॉ. जय जय राम आनन्द कृत ''हास्य योग आनन्द'', डॉ. सीता किशोर खरे कृत ''पानी पानीदार'', शिव मूर्ति सिंह द्वारा ''अनवरत यात्रा'' लिखी गई ।

बाल सतसई– डॉ. परशुराम शुक्ल–

''बाल सतसई'' बालकों के लिए लिखे गए सात सौ दोहे वाले संकलन को कहा गया है । हिन्दी बाल साहित्य में ''बाल रामायण'' शीर्षक से बाल कविता तो देखने में आयी है किन्तु ''बाल सतसई'' शीर्षक से संग्रह डॉ. परशुराम शुक्ल की देन है ।

डॉ. परशुराम शुक्ल द्वारा लिखित ''बाल सतसई'' में सात सौ एक दोहे है । दोहा मुक्तक छंद है । दोहा अपने आप में भाव व विचार प्रकाशन की द्दष्टि से पूर्ण है । इस प्रकार के मुक्तक छंदो (दोहे) के एकत्रित सात सौ संख्या वाले संग्रह को बाल सतसई कहा है । डॉ. परशुराम शुक्ल ने बाल सतसई के परिचय में बाल सतसई के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– ''हिन्दी साहित्यकारों ने दोहे के तीन प्रयोग किए है, इसका पहला प्रयोग गेय पदों में किया गया है । महात्मा सूरदास और मीरा बाई के अधिकांश पदों में इसे देखा जा सकता है । दोहे का दूसरा प्रयोग स्फुट रूप से अथवा सतसई में किया गया है । बिहारी सतसई इसका सर्वोत्तम उदाहरण है । इन दोनों प्रयोगों के साथ ही जायसी और गोस्वामी तुलसीदास जैसे साहित्यकारों ने अपने प्रबन्ध काव्यों में दोहों का प्रयोग किया है । ''पद्मावत'' और ''रामचरित मानस'' इसके उदाहरण है । अपनी काव्य कृतियों में दोहों का उपयोग करने वाले प्राचीन हिन्दी बाल साहित्यकारों में तुलसीदास, सूरदास, मीरा, बिहारी, रहीम और कबीर के साथ रसखान तथा रसनिधि के नाम उल्लेखनीय है ।''[१]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि ''बाल सतसई'' में बालकों के जीवन को लक्ष्य करके लिखे गए सात सौ एक संग्रहित है जिसके केन्द्र में बच्चों को रखा गया है । उन्होने बच्चों के महत्त्व को लगभग सम्पूर्ण काव्यों में दिखाया गया है । ''बाल सतसई'' का उद्देश्य यह दिखाना है कि हम बच्चों को ईश्वर का स्वरूप मानते है और उन्हीं ईश्वर प्रदत्त बच्चों के साथ पशुवत् व्यवहार भी करते है । समाज में हो रहे बच्चों पर अत्याचार शोषण आदि विरोधाभासी स्थितियों ने 'बाल सतसई' की रचना में मुख्य भूमिका का निर्वाह किया है । ''बाल सतसई'' का उपयोग बच्चों से अधिक इनके माता-पिता, अभिभावकों, शिक्षकों, आदि के लिए है । इसके उपयोग में वे बच्चों के महत्त्व को समझेगें एवं बच्चों के साथ उनके व्यवहार में भी परिवर्तन आएगा तथा उन्हें बच्चों के साथ सद्व्यवहार की प्रेरणा मिलेगी ।

''बच्चों का नित कीजिए मान और सम्मान''
''ये जीवन की प्रेरणा के ये सच्चे इंसान''

कवि यहाँ बच्चों के सम्मान की प्रेरणा दे रहे है और यह संकेत करते है कि बच्चो से अधिक से अधिक सच्चा एवं स्वच्छ मन का कोई नहीं हो सकता । सच्चा व्यक्ति वह है जिसमें धर्म, जाति, सम्प्रदाय, आदि का भेदभाव न हों । बच्चे इन भेदभावों से रहित होते है, इनका मन बहुत ही स्वच्छ होता है ।

उपसंहार–

डॉ. परशुराम शुक्ल कृत ''बाल सतसई'' मुक्तक काव्य कृति है । यह दोहा छंद में लिखा गया सात सौ एक दोहों का संकलन है । जिसके कारण इसे सतसई कहा गया है । यह पैंतीस अध्यायों में विभाजित संग्रह है । इसके प्रत्येक अध्याय में बीस-बीस दोहें संग्रहित है । बाल सतसई में जिन ३५ शीर्षकों में डॉ. शुक्ल ने दोहें प्रस्तुत किए हैं, वे है-बाल वंदन, बाल विश्व और बालक का जन्म, बाल रूप वर्णन, बच्चे और पाठशाला, बच्चे और शिक्षक, बच्चे और शिक्षा, बच्चे और परीक्षा, बच्चे और भोजन, बच्चों के खेल, बच्चे और स्वास्थ्य, बच्चों की इच्छाएं और आवश्यकताएं, बाल मनोविज्ञान, बच्चों के अधिकार, जन्मदिवस, बच्चे और त्यौहार, बच्चों के प्रिय खेल, बच्चे और टीवी, बच्चे और नैतिक शिक्षा, बच्चे और विज्ञान, बच्चे और साहित्य, बच्चे और प्रकृति, बच्चे और पर्यावरण, बच्चे और पर्यटन, बच्चे और राष्ट्र, बच्चे और राजधर्म, बच्चे और प्रजातंत्र, बच्चे और सरकार, बच्चे और समाज, बच्चे और ईश्वर तथा बच्चों का महत्त्व ।

साहित्यिक द्दष्टि से बाल सतसई डॉ. शुक्ल की महत्त्वपूर्ण कृति है । यह बालकों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास शारीरिक विकास, मानसिक विकास, बौद्धिक विकास, नैतिक विकास, आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है । बाल मनोवृत्ति के समुचित विकास के लिए स्वस्थ बाल साहित्य की रचना अति आवश्यक है ।

बालकों में प्रेम, सहिष्णुता एवं आपसी सहयोग के महत्त्व को विकसित किया जा सके तथा बच्चों में उदात्त भावना का विकास हो सके, यदि इस द्दष्टि से विचार किया जाए तो डॉ. परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई इसका अपवाद नहीं है । 'बाल सतसई' साहित्यिक कलात्मकता के साथ ज्ञानोपयोगी तथ्यों, संवेदनाओं को बहुत ही सुंदर एवं सरल रूप में प्रस्तुत करती है । इन सूचनाओं में छिपी संवेदनाएं समाज की भावी पीढ़ी एवं भविष्य के लिए अत्यंत उपयोगी होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । 'बाल सतसई' में निहित एक दोहा बालोपयोगी है । बालक ही नहीं बल्कि बच्चे से कई अधिक उनके अभिभावकों, शिक्षकों, प्रशासन, परिवार के लिए उपयोगी है ।

संदर्भ ग्रन्थ–

१. बाल सतसई, डॉ. परशुराम शुक्ल, नमन प्रकाशन, दिल्ली, २०११, पृष्ठ–१०

२. बाल सतसई, डॉ. परशुराम शुक्ल, नमन प्रकाशन, ४२३१/१ अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, ११०००२, २०१३

३. बाल सतसई की उपादेयता, ऋतिका सिंह, के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद उ.प्र., २०२१

४. परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई का अनुशीलन, सैफ अली, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, उ.प्र., २०२१

५. हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, डॉ. परशुराम शुक्ल, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, उ.प्र., २०१६

६. बाल सतसई मीमांसा, परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई की टीका, श्याम बिहारी श्रीवास्तव, राकेशकुमार, आशा प्रकाशन, कानपुर, उ.प्र., २०१९

डॉ. मंजुलाल मजमुदार का योगदान

(प्राच्यविद्यामंदिर के प्रकाशनों के संदर्भ में)

जे. के. उमरेठिया *

डॉ. मंजुलाल मजमुदार का पूरा नाम मंजुलाल रणछोडलाल मजमुदार है । इनका जन्म १८ सितंबर १८८७, ग्राम पेटलाद, जिला खेडा में तथा निधन ११ नवंबर १९८४ वडोदरा में हुआ था । वडोदरा उनकी कर्मभूमि रही है जहाँ पर विश्वख्यातिलब्ध संस्था प्राच्यविद्यामंदिर (Oriental Institute) में मजमुदारजी ने अपनी सेवा प्रदान कर अनेक ग्रंथों का संपादन किया, तत्पश्चात् अत्यधिक प्रसिद्धि को प्राप्त बड़ौदा कॉलेज के गुजराती विभाग में अध्यापन एवं संशोधन कार्य करते हुए उन्होंने अपनी विद्वत्ता की किरणों को चतुर्दिक्षु प्रसारित किया ।

मंजुलाल मजमुदार १९१५ में 'वसंत' सामयिक में 'नानो विहारी' तखल्लुस से बालवार्ता लिखते थे और १९१५ में उनकी वडोदरा कॉलेज मिसेलेनी में नरसिंह महेता की कविता प्रकाशित हुई । मंजुलाल मजमुदार का साहित्यक्षेत्र में विपुल योगदान रहा है । इन्होने 'सुदामाचरित', 'रणयज्ञ' आदि का संपादन किया । इनका रासमाला में 'जसमा का रासडा' का संपादन काफी प्रसिद्ध हुआ । इनके द्वारा लिखा हुआ 'गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास' ग्रंथ भी अभ्यासियों के लिए अत्यधिक रुचिकर रहा । 'गुजराती बहेनो प्रत्ये त्रण लेखो, सुधन्वा, बेहुला, पूर्व अने पश्चिमनां नैतिक ध्येयो, माधवानलकामकन्दला प्रबंध' का संपादन इत्यादि पुस्तकें मंजुलाल मजमुदार द्वारा लिखी गईं । इससे यह विदित होता है की मंजुलाल मजमुदारजी का गुजरात के साहित्यक्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा है ।

डॉ. मंजुलाल मजमुदार को गुजराती भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमानंद, शामल के ग्रंथो का अध्ययन और उनकी मूलगत शोध, संशोधन करने का श्रेय प्राप्त हुआ था । इस क्षेत्र में उनकी लेखनप्रवृत्ति वैविध्यपूर्ण है ।

सचित्र हस्तप्रत के विषय में मजमुदारजी का अभ्यास अद्वितीय था । हस्तप्रत के चित्रों के अध्ययन से गुजरात और राजस्थान, पश्चिम भारत की हस्तप्रतों की चित्रशैली में वैष्णव, शाक्त आदि संप्रदायों के ग्रंथो में चित्रों का सर्जन हुआ ।

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. ४९-५५. ISSN 2250-0391

* प्राच्यविद्यामंदिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, राजमहल दरवाजा के पास, राजमहल रोड, वडोदरा ३९० ००१, M: 9427849843, Email: jkumrethiya70@gmail.com

मंजुलाल मजमुदार ने मुंबई युनिवर्सिटी से रिसर्च स्कोलर के रूप में अच्छा कार्य किया। इन्होंने अभ्यास के फलस्वरूप चित्रों के अध्ययन से Ph.D की पदवी प्राप्त की। इस क्षेत्र में चित्रों के उपरांत मूर्तिशास्त्र और शिल्पों के अध्ययन में भी इनका विशेष योगदान रहा। इस कार्य के फलस्वरूप उनका Cultural Heritage of Gujarat और Chronology of Gujarat जैसे ग्रंथ भी प्राप्त हुए। इन्होंने गुजराती साहित्य के गद्य स्वरूपों का अभ्यासपूर्ण इतिहास भी लिखा।

मंजुलाल मजमुदार १९१८ में स्नातक कक्षा उत्तीर्ण हुए। १९२१ में लॉ का अभ्यास पूर्ण किया और गुजरात के भरूच शहर में राष्ट्रीय शाला में शिक्षक के पद पर नियुक्त हुए। १९२२ में सुदामा विषयक आठ मध्यकालीन कृतियों का सुदामाचरित के नाम से संपादन किया। फिर वकालत शुरु की लेकिन साहित्य के प्रति ज्यादा रुचि थी इसलिए वह छोड कर १९२८ में वडोदरा राज्य में 'श्रीसयाजी साहित्यमाला' के संपादक के रूप में नियुक्त हुए। वहाँ प्रेमानंद की कृति 'रणयज्ञ' का १९२३ में संपादन किया। १९२४ में इनकी यही कृति मेट्रिक की परीक्षा में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत हुई। तत्पश्चात् अभिमन्यु आख्यान प्रकाशित किया। इस समय के दौरान रासमाला अंतर्गत 'जसमा के रासडा' के खंडो का संपादन किया। प्राच्यविद्यामंदिर में काम करते समय इन्होंने 'गुजरातनो सांस्कृतिक इतिहास' नामक ग्रंथ लिखा और १९२९ में मुंबई युनिवर्सिटी ने इसी विषय पर इनके लिए एम. ए. की उपाधि दी।

१९३३ में वडोदरा में 7^{th} AIOC का आयोजन हुआ था। उसमे इन्होंने बालगोपालस्तुति तथा भागवत के दशमस्कंध के चित्रों की नई शोध प्रस्तुत की। १९३८ में बड़ौदा कॉलेज में गुजराती के अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। १९५२ में वो इस पद से निवृत्त हुए। १९४३ में 'कल्चरल बेकग्राउन्ड ऑफ गुजरात आर्टः स्पेशियली मिनियेचर्स' इस विषय पर महानिबंध लिखकर मुंबई युनिवर्सिटी से Ph.D की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद १९४७ में तीन साल के लिए इस युनिवर्सिटी में शिल्प-स्थापत्य के संशोधन के लिए 'स्पिन्गलर रिसर्च स्कोलरशिप' मिली। 'क्रोनोलॉजी ऑफ गुजरात' ग्रंथ १९६० में म. स. विश्वविद्यालय ने प्रसिद्ध किया। १९६५ में 'कल्चरल हिस्ट्री ऑफ गुजरात' ग्रंथ प्रकाशित हुआ इसमें १०० चित्रप्लेट भी शामिल है। मुंबई युनिवर्सिटी में १९५३ में ठक्कर वसनजी व्याख्यानमाला में व्याख्यान दिये तथा इनका ये व्याख्यान 'गुजरात एण्ड इट्स आर्ट्स हेरिटेज' नाम से ८० चित्रप्लेटों के साथ प्रकाशित हुआ था।

निवृत्ति के बाद उन्होने 'गुजराती साहित्यनां स्वरूपो' (१९५७), रेवाने तीरे तीरे (१९५६) मीरांबाईः एक मनन (१९६०), वल्लभ भट्टनी वाणी (१९६२), भीमकृत सदयवत्सवीरप्रबंध और ब्रेहेदेवकृत भ्रमरगीता (१९६३), सनीमनी लडाईनो पवाडो (१९६४) साहित्यकार प्रेमानंद-नवुं संपादन (१९६६), दसे आंगळीए वेढ (१९६७), वैष्णवतीर्थ डाकोर (१९८४ इत्यादि) ग्रंथ प्रसिद्ध हुए। आमोद के कवि गणपति कृत माधवानलकामकंदला का २५०० दोहा का संपादन

भी म. स. युनिवर्सिटी की प्रसिद्ध गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज में प्रकाशित हुआ है । इन्होंने गुजरात साहित्य सभा की ओर से १९३८ में ग्रंथस्थ वाङ्मय की समीक्षा की थी । १९६८ में इनको प्रसिद्ध रणजीतराम सुवर्णचंद्रक सम्मान मिला था ।

मंजुलाल मजमुदार का प्राच्यविद्यामंदिर से प्रकाशित पुस्तकों में विशेष योगदान रहा है । इन्होने साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है । प्रस्तुत शोधपत्र में मंजुलाल मजमुदार द्वारा साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में क्या क्या योगदान रहा है इसी संदर्भ में भूमिकारूप चर्चा करके प्राच्यविद्यामंदिर के प्रकाशनों को ध्यान में रखकर विषय को न्याय देने का प्रयत्न किया है ।

ई.स. १८९३ में महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने एक ऐसी संस्था की कल्पना की थी कि उसमें अपनी प्राचीन धरोहर पांडुलिपियाँ आदि का संरक्षण-संवर्धन हो और उन पर इस संस्था में अनवरत कार्य हो । उन्होने अपनी संकल्पना को साकार करने के लिए कई सारे विद्वानों को विविध शहरों में जहाँ हस्तप्रतें हो वहाँ भेजा और हस्तप्रत एकत्रित करने का अभियान प्रारंभ किया । १९२७ में इस संस्था Oriental Institute की विधिवत् स्थापना हुई और स्थापना से पहले संस्था के प्रकाशन देश-विदेश में प्रसिद्ध होने लगे । सबसे पहला प्रकाशन १९१६ में गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज में राजशेखर द्वारा विरचित काव्यमीमांसा का हुआ । १९३१ में भाषांतर विभाग जो शिक्षण विभाग के साथ जुडा हुआ था वो ओरिएण्टल इन्स्टिट्युट में स्थानांतर किया गया । इस भाषांतर विभाग के अन्तर्गत श्रीसयाजी साहित्यमाला, श्रीसयाजी बालज्ञानमाला, श्रीमातुश्री जमनाबाई स्मारक ग्रंथमाला, श्रीसयाजी ग्रामविकासमाला, श्रीशिशुविहार ग्रंथमाला इत्यादि श्रेणी में ६४० से भी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज में अद्यावधि १८७ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । ये सिरीज में अप्रकाशित हस्तप्रतों पर एवं अनेक भाषाओ में जैसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पर्शियन, अरेबिक इत्यादि विषयों से संबंधित भारतीय संस्कृति व विद्या को ध्यान में रखकर पुस्तकें प्रकाशित होती हैं ।

इस संस्था की गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज और भाषांतर विभाग के अंतर्गत श्रीसयाजी साहित्यमाला और श्रीसयाजी बालज्ञानमाला में मंजुलाल मजमुदार का विशेष योगदान रहा है । इनमें से विषय की मर्यादा को ध्यान में रखकर मैंने उनके योगदान की चर्चा की है ।

श्री सयाजी साहित्यमाला श्रेणी में इन्होने १९२९ में 'गुजराती बहेनो प्रत्ये त्रण लेखो' पुस्तक साहित्य पुष्प १५३ का संपादन किया है । पुस्तक की लेखिका (स्व.) सौ. चैतन्यबाला मजमुदार है । संपादक ने तीनों लेखों के बारे में अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है । पहला लेख 'स्त्रियों अने जनसेवा' के बारे में लिखा गया है । दूसरा लेख 'आधुनिक स्त्रीकेळवणीनी खामीओ' विषय पर लिखा गया है । गुजराती हिन्दु स्त्रीमंडल, मुंबई की १९२५ की इनामी

हरीफाई के लिये लिखा गया ये लेख का उस समय में पचास रूपया पारितोषिक मिला था । यह उस समय प्रसिद्ध 'गुणसुंदरी' सामयिक में प्रकाशित हुआ था । तीसरा लेख स्त्रीयोंना भणतरनी दिशा उस समय को निशान करता है । तीनों लेख में शीर्षक से ही पता चलता है की स्त्रियों की परिस्थिति का विचार उनमें केन्द्रस्थ था । गुजरात के स्त्रीजीवन का अभ्यास उस समय में कितना असरकारक हो सकता है ये सांप्रतस्थिति को देखकर कह सकते हैं । आज भी ये विषय प्रस्तुत है, इन लेखों के विषय को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है ।

श्री सयाजी साहित्यमालान्तर्गत प्रकाशित अन्य पुष्प भी हैं 'पूर्व अने पश्चिमनां नैतिक ध्येयो' । केनेथ सोन्डर्स के 'The Ideals of East & West' पुस्तक का यह भाषांतर है । १९३९ में प्रकाशित यह पुस्तक श्री सयाजी साहित्यमाला पुष्प २६६ है । पुस्तक की शुरुआत में अनुवादक श्री मंजुलाल मजमुदार ने अनुवाद के बारे में स्पष्टता की है । Religion and Ethics की प्रजा के उत्थान में कैसी भूमिका है यह तुलनात्मक दृष्टिकोण से दिखाया है । श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ की प्रेरणा से यह मूल ग्रंथ प्रो. सोन्डर्स ने १९३३ में लिखा था । उनमें धर्म एवं नीतिशास्त्र की दृष्टि से पृथ्वी पर विद्यमान धर्मों में नैतिक ध्येय तथा आदर्श कैसे हैं इस विषय को तुलनात्मक पद्धति से दिखाया गया है । इस पुस्तक का मराठी अनुवाद इसी श्रेणी में पुष्प २५२ अंतर्गत श्री चि. ग. कर्वे ने 'प्राच्य आणि पाश्चात्य नीतिध्येयें' (१९३७) शीर्षक से किया है । अपनी प्रजा के लिए हमेशा हितकर सोचने वाले तथा देशी भाषा के शास्त्रीय साहित्य की अभिवृद्धि करने में तत्पर महाराजा श्रीमंत ने इस पुस्तक का गुजराती, हिन्दी और मराठी भाषा में अनुवाद करने का आदेश दिया था । जिससे प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को इसका लाभ प्राप्त हो सके । पुस्तक में शब्दशः अनुवाद नहीं है, किन्तु मूल पुस्तक कैसे लोकगम्य हो सकती है इसको ध्यान में रखकर भाववाही भाषांतर किया है ।

'रामायणनुं रहस्य' पुस्तक का प्रकाशन बालसाहित्यमाला, पुष्प ८७ के अंतर्गत हुआ है । यह पुस्तक अनुपलब्ध है और इसकी अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाई है । यहाँ अभ्यासी के लिये मात्र नामनिर्देश किया है ।

'सुधन्वा' भी इसी श्रेणी में १९३२ में पुष्प ९३ से प्रकाशित हुआ है । पुस्तक १२ प्रकरणों में विभक्त है । पुस्तक की शुरूआत में विस्तृतरूप से पुस्तक लिखने का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है । कथा की रचना ही अपने धर्म के समुदाय को परोक्ष ज्ञानप्राप्ति हो इस हेतु से की जाती है । लेखक ने पुस्तक का उद्देश्य स्पष्ट करके लिखा है की धार्मिकपुस्तके प्रभु की आज्ञा समान होती हैं । इतिहास के ग्रंथ मित्र जैसे होते हैं वो कान खोल देते हैं, किन्तु लोकवार्ताएँ प्रेमार्द्र सहधर्मचारिणी जैसी होती है जो मन को काबू में करके मानवस्वभाव और मानवजीवन के बारे में उपदेश देते हैं । छोटे बच्चों को बालवार्ता कहने से मन पर शीघ्र प्रभाव पडता है । सीधा उपदेश

देने के बावजूद कथा कहने की असर कई गुना ज्यादा होती है । इस पुस्तक में पौराणिक पात्र 'सुधन्वा' की कथा है ।

महाभारत के अश्वमेध पर्व में पितृभक्त सुधन्वा की कथा दी गई है । एक तरफ पितृभक्ति और दूसरी तरफ विष्णुभक्ति, दोनों के बीच विरोध और उस विरोध की कठिन परीक्षा से सुधन्वा का निकलना होता है । अन्त में श्रीकृष्ण के दर्शन होने का उनका मनोरथ सिद्ध होता है । इस कथा में लेखक ने प्रेमानंद के सुधन्वा आख्यान से भी कई पंक्तियां ली हैं । परिणाम स्वरूप कथा और रसवाही बनी है । साथ साथ में यहाँ चित्र भी दिये हैं । उसमें भी बालमानस को ध्यान में रखा है यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है ।

इसी बालज्ञानमाला में १२३वाँ पुष्प 'बेहुला' है । इसका प्रकाशन १९३५ में हुआ था । इसमें छोटे छोटे ३५ प्रकरण हैं । साथ में चित्र भी दिये हैं ।

चाँद सोदागर और बेहुला का चरित्र प्राचीन साहित्य के पुरुषार्थ का सजीव आदर्श है । मनसादेवी के क्रोध से चाँद के छह पुत्रों की कैसे मृत्यु होती है और चाँद का अति कठिन परिस्थिति में भी वे शिवभक्ति में कैसे अडिग रहते हैं ये कथा पेरेडाइज़ लोस्ट की याद दिलाती है । पेरेडाइज़ लोस्ट में देवद्रोही की मूर्ति चाँद जैसी लगती है । चाँद परिस्थिति के सामने लडता है, किन्तु पुत्रवधू बेहुला की भक्ति के आगे चाँद आश्चर्यचकित हो जाता है । बेहुला भाग्यदोष से विवाह की पहली रात्री से ही स्वामीहीन हो जाती है । सब दोष बेहुला पर आता है पर वो हिम्मत नहीं हारती है । वह छह मास तक पति का शव लेकर घूमती फिरती है । वो पति के सान्निध्य में ही रहती है । रास्ते मे उसकी धर्म की बहन मिलती है । वह इसको स्वर्ग में ले जाती है और वहाँ बेहुला अपनी नृत्यकला से देवों को प्रसन्न करके पति को पुनर्जीवित करवाती है ।

बेहुला का चरित्र आदर्श चरित्र है । बंगाल में बहुत सारी व्रतकथाओं और रूपकथाओं जैसी बेहुला की कथा भी बहुत प्रसिद्ध है । यहाँ पुस्तक में दिए गये प्रसंगानुरूप चित्र भी आकर्षक हैं । एक बंगाल की कुलवधू साहित्य में कैसे पुरोहित कर्म करती है ये दिखाकार यहाँ प्राचीन कथारूप की प्राणप्रतिष्ठा की गई है । बेहुला की कथा बंगाली समाज में बहुत प्रसिद्ध है और वर्तमान समय में भी वो लोकप्रिय है ये उनकी प्रस्तुति दिखाता है ।

'माधवानलकामकन्दलाप्रबन्ध' मूल गणपति की कृति है । गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज़ में पुष्प ९३ में प्रकाशित हुई है । मंजुलाल मजमुदार ने इस कृति का संपादन किया था । गुजराती में प्रसिद्ध हंसावती, सदेवत सावलिंगा, ढोलामारु आदि जैसी ही यह कथा पश्चिम भारत और उत्तर-मध्यभारत तक बिखरती हुई एक लोकप्रिय मध्यकालीन कृति है । नायक माधव और नायिका कामकंदला की प्रेमकथा यहाँ पद्य में मिलती है । कथा कुल आठ अंगो में

विभाजित है और अलग अलग दोहे में मिलती है । परिशिष्ट में संस्कृत कवि आनन्दघनविरचित माधवनलाख्यान और वाचककुशललाभविरचित माधवनलकामकंदलाचउपइ और कवि दामोदर विरचित 'माधवनलकथा' दी गई है जो अभ्यासियों के लिये तुलनात्मक अध्ययन हेतु अत्यंत उपयोगी है ।

मंजुलाल मजमुदारजी के इन ग्रंथों से उनके विशाल दृष्टिकोण, विद्वत्ता और प्राचीन साहित्य के अभ्यासी होने का रूप दिखाई देता है । इन सब ग्रंथो में उन्होंने शास्त्रीय, ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण से अभ्यास किया है ।

डॉ. मंजुलाल मजमुदार की लेखनप्रवृत्ति, इतिहास, कला, मूर्तिशास्त्र, साहित्य इत्यादि विविध क्षेत्र में फैली हुई थी । डॉ. मंजुलाल मजमुदार बड़ौदा की विविध साहित्य और संस्कार आदि संस्थाओं के साथ जुडे हुए थे । इनकी इस क्षेत्र की प्रवृत्ति से ही बड़ौदा की साहित्यसभा, प्रेमानंद साहित्य सभा इत्यादि इमारतें जो आज खडी है इनका आरम्भ हुआ था । इन इमारतों में गुजरात के साहित्यकारों का फोटो रखना, बड़ौदा के साहित्यकारों के ग्रंथ तैयार करना इत्यादि कार्य इन्होंने किये हैं । इनके ग्रंथ और लेख इनकी सरस्वती उपासना की उत्तम देन है । प्राच्यविद्यामंदिर में विद्यमान रहकर डॉ. मजमुदारजी द्वारा सत्यनिष्ठा एवं कार्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठापरायणता के साथ अनेकानेक सफल कार्य किये गये जिसके कारण इनकी यशकीर्तिकौमुदी बड़ौदा में ही नहीं अपितु समग्र गुजरात में देदीप्यमान है ।

संदर्भग्रंथः-

१. गुजराती बहेनो प्रत्ये त्रण लेखो, श्री सयाजी साहित्यमाला, पुष्प १५३ सौ. चैतन्यबाला मजमुदार, संपादक और प्रकाशकः मंजुलाल रणछोडलाल मजमुदार, श्रीलक्ष्मी इलेक्ट्रीक प्रेस, कु. लि. भद्रकालीनी गली, वडोदरा, जनवरी, १९२९, आवृत्ति १

२. पूर्व अने पश्चिमनां नैतिक ध्येयो, श्री सयाजी साहित्यमाला, पुष्प २६६, अनुवादकः मंजुलाल रणछोडलाल मजमुदार, मुद्रक और प्रकाशक आर्यसुधारक प्रेस, वडोदरा, प्रथम आवृत्ति, ई.स. १९४०

३. सुधन्वा, श्री सयाजीबालज्ञानमाला, पुष्प ९३, ले. मंजुलाल र. मजमुदार, मुद्रक और प्रकाशकः आर्य सुधारक प्रेस, वडोदरा, प्रथमावृत्ति १९३५

४. बेहुला, श्री सयाजी बालज्ञानमाला पुष्प १२३, ले. मंजुलाल र. मजमुदार, मुद्रक और प्रकाशकः आर्य सुधारक प्रेस, वडोदरा, प्रथमावृत्ति १९३५

५. माधवानलकामकन्दलाप्रबंध, प्रथम खंड, गायकवाड ओरिएण्टल सिरीज़ No. XCIII, प्रकाशकः ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बरोडा, प्रथमावृत्ति १९४२, द्वितीयावृत्ति १९८१

६. रामायणनुं रहस्य, श्रीसयाजी बालज्ञानमाला, पुष्प ८७, अन्य जानकारी अप्राप्य.

७. सोवेनियर, ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, १९१४

८. स्वाध्याय (त्रैमासिक), पुस्तक, २२, अंक २, संपादकः सुरेशचंद्र गो. कांटावाला, प्राच्यविद्यामंदिर, म.स. विश्वविद्यालय, वडोदरा, जनवरी, १९८५

९. रेवाने तीरे तीरे, श्रीसयाजी साहित्यमाला, पुष्प ३२५, ले. मंजुलाल र. मजमुदार, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वडोदरा, प्रथमावृत्ति, ई. स. १९५८

१०. मीरांबाई – एक मनन, श्री सयाजी साहित्यमाला, पुष्प ३२२, ले. मंजुलाल र. मजमुदार, प्राच्यविद्यामंदिर, म. स. विश्वविद्यालय, वडोदरा, प्रथमावृत्ति १९५८, द्वितीय आवृत्ति १९७५

११. वैष्णवतीर्थ डाकोर, श्रीसयाजी साहित्यमाला, पुष्प ३६२, ले. मंजुलाल र. मजमुदार, प्राच्यविद्यामंदिर, म. स. विश्वविद्यालय, वडोदरा, प्रथमावृत्ति १९८४

THE GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES

GOS. Nos.		
169	NYĀYĀLAṄKĀRA - of Abhayatilaka Upādhyāya - Edited by A. L. Thakur & Late J. S. Jetly (1981)	Rs. 143.00
170	ṬṚCABHĀSKARA by Bhāskararāya - Edited by R. G. Sathe (1982)	Rs. 53.00
171	ŚRĪ GAṆEŚAVIJAYAKĀVYAM - Edited by B. N. Bhatt (1984)	Rs. 46.00
172	PĀDA INDEX OF THE CRITICAL EDITION OF VĀLMĪKI RĀMĀYAṆA Vol. I - Edited by R. T. Vyas (1989)	Rs. 303.00
173	GANDHASĀRA - GANDHAVĀDA - Edited by R. T. Vyas (1989)	Rs. 128.00
174	NYĀYAKANDALĪ - Edited by Late J.S. Jetly & Vasant G. Parikh (1991)	Rs. 275.00
175	FATUHAT-I-ALAMGIRI of Ishwar Das Nagar Persian Text; English Trans. by Prof. M.F. Lokhandwala & Sir Jadunath Sarkar - Edited by Dr. Raghubir Sinh & Quazi Karamtullah. Ist Edition (1995)	Rs. 287.00
176	VIŚVĀMITRĪMĀHĀTMYA - Critically Edited with a Critical Study of the text by J. P. Thaker. Ist Edition (1997)	Rs. 280.00
177	THE PĀDA INDEX OF THE VĀLMĪKI RĀMĀYAṆA Vol. II (1997) - A comprehensive Index of verse-quarters of the Critical Edition of Vālmīki Rāmāyaṇa - Edited by R.I. Nanavati. (1997)	Rs. 455.00
178	AN ALPHABETICAL LIST OF MSS IN THE ORIENTAL INSTITUTE Vol. III - Edited by P. H. Joshi & B.P. Pandya (1998) Ist Edition.	Rs. 670.00
179	ANUMĀNAKHAṆḌADŪṢAṆODDHĀRA of Narahari Upādhyāya - Edited by V. G. Parikh (1999) - Ist Edition.	Rs. 155.00
180	GUJARAT UNDER THE MAITRAKAS OF VALABHĪ - Edited by H.G. Shastri (2000).	Rs. 410.00
181	PĀDA INDEX OF THE VĀLMĪKI RĀMĀYAṆA - Vol. III - Edited by R. I. Nanavati (2001)	Rs. 310.00
182	THE SŪRYAPRAKĀŚA OF SŪRYADĀSA - Edited by Pushpa Kumari Jain (2002)	Rs. 265.00
183	KALANDIKĀPRAKĀŚA OF SOMANĀTHA VYĀSA - Edited with an Introduction by Babulal Shukla Shastri (2002)	Rs. 255.00
184	PRIYAṀVADĀCARITAM OF BHIKŪDEVA - Edited with an Introduction by Purushottam H. Joshi (2002)	Rs. 140.00
185	KṚTYAKALPATARU (ŚĀNTIKĀṆḌA). - Edited by M.L. Wadekar (2008)	Rs. 265.00
186	AN ALPHABETICAL LIST OF MANUSCRIPTS IN THE ORIENTAL INSTITUTE (Vol. IV) - Compiled & Edited by U.M. Brahmachari & S. C. Prajapati (2008)	Rs. 515.00
187	MEGHADŪTA VYAKHYA BY JANARDANA - Edited by P. H. Joshi, B. P. Pandya & M. L. Wadekar (2009)	Rs. 170.00
40.	ADVAYAVAJRASAMGRAHA- by Advayavajra, Edited by Haraprasad Shastri (Reprint), 2014	Rs. 220.00

Books are available at :

Co-ordinator, The University Publications Unit

Opp. C. C. Mehta Auditorium, Pratapgunj, Vadodara - 390 002, Gujarat-India

Phone : 0265 2781700

जैन दर्शन एवं विज्ञान में परमाणुवाद

सपना जैन*

सारांश : इस सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ ? किसके द्वारा यह सृष्टि निर्मित की गयी ? किन मूल तत्त्वों से सृष्टि की रचना हुई ? उन मूल तत्त्वों का स्वरूप कैसा है ? ये प्रश्न शाश्वत हैं तथा आदिकाल से ही मनुष्य के मन में कुतूहल उत्पन्न किए हुए हैं । इन विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के समाधानार्थ मननशील मानव सदैव ही मनन करता रहा है । सर्वप्रथम ऋषियों के द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार करके विभिन्न वैदिक सूक्तों में भौतिक जगत् की उत्पत्ति व उसके मूल कारण विषयक वैदिक संकल्पनाएँ प्रस्तुत की गयी । उसके उपरान्त विभिन्न दर्शनों के प्रणेताओं के द्वारा इस विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रतिपादित किये गये । उनमें आस्तिक दर्शनों की सूची में परिगणित महर्षि कणाद द्वारा प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन तथा नास्तिक दर्शनों के वर्ग में परिगणित जैन दर्शन ही परमाणुवाद पर केन्द्रित होकर परमाणुवाद का विस्तृत एवं विशद विवेचन प्रस्तुत करते हैं । जैन दर्शन में प्रतिपादित परमाणुवाद प्राचीनता और मौलिकता दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । जैन परमाणुवाद का सम्बन्ध भगवान पार्श्वनाथ (ई.पू. ८७७-७७७) से माना जाय तो इससे अधिक प्राचीन परमाणुवाद का कोई रूप उपलब्ध नहीं होता है । यदि भगवान महावीर (ई.पू. ५९९-५२७) से इसका सम्बन्ध माना जाय तो भी वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद और ग्रीक दार्शनिक डेमोक्रिटस से जैन परमाणुवाद प्राचीनतर सिद्ध होता है । जिस विस्तार के साथ जैन ग्रन्थों में परमाणु की प्रकृति, स्वरूप, गुणधर्म एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है उतना उल्लेख किसी भी अन्य दार्शनिक ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है । कुछ विषय तो ऐसे हैं जहाँ तक आधुनिक विज्ञान भी अभी नहीं पहुँच सका है । अतएव कहा जा सकता है कि विज्ञान जगत् के साथ-साथ जैन दर्शन जगत् में भी यह अतिमहत्त्वपूर्ण विषय रहा है । जैन दर्शन सम्मत परमाणुवाद का विज्ञान के आलोक में अध्ययन करने से भौतिक जगत् के मूल कारण विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान अवश्य ही हो पायेगा जो भावी शोध कार्यों हेतु एक दिशा प्रदान करेगा ।

मुख्य शब्द : परमाणुवाद, जैन दर्शन, विज्ञान, भौतिक जगत्, मूलकारण, सूक्ष्म कण, पुद्गल

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. ५७-६८. ISSN 2250-0391

* A-137, तक्ष डिवाइन, निजानंद आश्रम के पीछे, एडजोइनिंग एल. एन्ड टी. नोलेज सीटी, बडौदा, गुजरात-३९००१९, M: 8764097770, Email: vision123.sapna@gmail.com

भूमिका : जैन दर्शन ने विश्व को अनेक खण्ड सिद्धान्त प्रदान किये हैं । पुद्गल द्रव्य की अद्वितीय मान्यता भी जैन दर्शन की ही देन है । विज्ञान में जिसे 'मैटर' कहा गया है, जैन दर्शन उसे पुद्गल[१] की संज्ञा देता है । यह जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है । 'पुद्गल' शब्द की व्युत्पत्ति – पूरणात् पुद्, गलयति इति गल इस प्रकार की गयी है । पुद्गल की गणना स्वतन्त्र रूप से जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित पञ्चास्तिकायों[२] एवं षड्द्रव्यों में की गई है । पुद्गल का अन्तिम, सूक्ष्मतम, अतीन्द्रिय, अविभागी, शाश्वत तथा अवयवरहित तत्त्व ही परमाणु कहा गया है[३] । भगवतीसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र, पञ्चास्तिकायसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र समयसार, प्रवचनसार, इत्यादि प्राचीन जैनग्रन्थों में परमाणुवाद का विशद विवेचन प्राप्त होता है । जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि परमाणुवाद जैन दर्शन का अतिमहत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है । पाश्चात्य जगत् में यह विचार सर्वप्रथम यूनानी दर्शन से प्रारम्भ हुआ । यूनानी दार्शनिक ल्युसिप्पस (४४० ई.पू.)के द्वारा अनेक परमाणुओं के मूल अस्तित्व को स्वीकार किया गया । परमाणु को ल्युसिप्पस ने 'एटोमोस' कहा है जिसका तात्पर्य है – जिसे अन्य सूक्ष्म अंशों में विभाजित नहीं किया जा सकता है । ल्युसिप्पस के शिष्य डेमोक्रिटस ने परमाणुवाद को एक व्यवस्थित रूप दिया । पाश्चात्य दर्शन द्वारा प्रदत्त परमाणु सिद्धान्त के आधार पर सन् १८०३ में सर्वप्रथम रसायनशास्त्री जॉन डॉल्टन के द्वारा रसायनशास्त्र से सम्बद्ध परमाणु सिद्धान्त प्रतिपादित किया । उसके पश्चात् विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा तीन सूक्ष्मतम कणों इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन की खोज की गई तथा अविभाज्य माने जाने वाले 'एटम' का विभाजन संभव हो गया । सूक्ष्म कणों की संख्या आज २०० से भी अधिक पहुँच गयी है । इसके उपरान्त भी यह जिज्ञासा यथावत् बनी हुई है कि इस दृश्यमान जगत् का मूल कारण क्या है ? वैज्ञानिकों द्वारा निरन्तर नवीन प्रकार के सूक्ष्म कणों की खोज की जा रही है । प्रतीत होता है कि विज्ञान इस विषय में किसी निश्चित निर्णय तक नहीं पहुँच पाया है । ऐसी स्थिति में जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित परमाणुवाद तथा विज्ञान सम्मत परमाणु सिद्धान्त का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है । दर्शन तथा विज्ञान के सम्मिलित अध्ययन से ही परमाणुवाद जैसे गूढ़ विषय को अधिगत करने में सहायता प्राप्त हो सकेगी ।

---

१ "The *pudgal* (matter) is made by the smallest particle and has a stable entity, known as *aṇu* and *paramāṇu*. Both the words mean only 'atom' unlike modern knowledge in physical science where 'aṇu' means molecule and *'paramāṇu'* means atom."- "Atomism of *Nyāya-Vaiśeṣika* vs Jainism-A Scientific Appraisal", *IJHS,* 41.3(2006), 247.

२ जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं ।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ।।– पंचत्थिकायसंगहो, गाथा ४

३ सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू ।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ।।–वही, गाथा ८४

परमाणु की परिभाषा एवं स्वरूप : जैन ग्रन्थों में परमाणु को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है । पुद्गल द्रव्य का अन्तिम, अविभाज्य, अतीन्द्रिय, एवं शाश्वत तत्त्व परमाणु है । यह समस्त भौतिक जगत का मूल कारण है[४] । यूनानी दार्शनिक ल्युसिप्पस (४४०ई.पू.) ने अनेक परमाणुओं के मूल अस्तित्व को स्वीकार किया है । परमाणु को ल्युसिप्पस ने 'एटोमोस'[५] कहा है जिसका तात्पर्य है जिसे अन्य सूक्ष्म अंशों में विभाजित नहीं किया जा सकता[६] । इनके द्वारा यह भी माना कि सभी परमाणुओं में केवल परिमाण का ही अन्तर है अर्थात् रूप, आकार का अन्तर । यद्यपि परमाणुवाद के प्रवर्तक ल्युसिप्पस माने जाते हैं, परन्तु उनके शिष्य डेमोक्रिटस ने परमाणुवाद को एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया[७] । इनका मानना है कि भौतक द्रव्यों को अन्तिम रूप से विभाजित कर दिये जाने पर अन्त में जो अविभाज्य इकाई बच जाती है उसी को 'एटोमोस' अर्थात् 'एटम' कहा जाता है[८] । परमाणु अनेक, असंख्य, अतीन्द्रिय तथा सूक्ष्म हैं और गुण की दृष्टि से सभी एक समान हैं । इनमें रूप, विस्तार तथा स्थान का अन्तर है । संभवतः परमाणु स्वयं गतिशील होते हैं और इसी गतिशीलता के कारण कुछ परमाणु एक साथ सम्बद्ध हो जाते हैं । इस प्रकार भौतिक जगत् का निर्माण हुआ है ।

पारम्परिक विज्ञान (क्लासिक फिजिक्स) में भी परमाणु (एटम) को अन्तिम एवं अविभाज्य कहा गया था परन्तु आधुनिक विज्ञान में परमाणु की नित्यता एवं अविभाज्यता सुरक्षित नहीं रह सकी । आधुनिक विज्ञान जिसे 'एटम' की संज्ञा देता है वह विभाज्य है अतएव उसे जैन दर्शन सम्मत 'व्यावहारिक' परमाणु की कोटि में ही रखा जा सकता है जो साधारण दृष्टि से अग्राह्य, अछेद्य एवं अभेद्य है । साधारण शक्ति या बल या अस्त्र-शस्त्र से वह तोड़ा नहीं जा सकता है । उसकी परिणति सूक्ष्म होती है । जो निश्चय परमाणु है, वह इन्द्रियातीत ज्ञान का ही विषय बन सकता

---

४ कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।
एक रस गंधवर्णों, द्विस्पर्शः कार्यलिंगश्च ।।-अनुयोगद्वार सूत्र, पृ.२८१

५ 'एटोमोस' इस ग्रीक शब्द से ही एटम शब्द की निष्पत्ति हुई है ।

६ " Against the reality of one, Leucippus held that there are countless real entities, each one of them is eternal, indestructible, indivisible, and invisible. Because each such entity is uncuttable or indivisible, so he called it 'atom' that is, what cannot be further cut or divided."-*A Critical History of Western Philosophy,* p.25

७ "Democritus was the famous and gifted disciple of Leucippus. Democritus accepted the theory of atoms and void and extended this theory to explain epistemology, ethics, and metaphysics" *Ibid,* p.27

८ "A few Greeks, however, such as Democritus, held that matter was inherently grainy and that everything was made up of large numbers of various different kinds of atoms (The word *atom* means "indivisible" in Greek)."-*A Brief History of Time,* p.67

है, इन्द्रिय ज्ञान का नहीं । क्षेत्रीय दृष्टि से जिसका आदि, मध्य तथा अन्त एक ही है अर्थात् जो अनादि, अमध्य, अनन्त है । परमाणु को एक ज्यामितिक बिन्दु कहा जा सकता है क्योंकि जिसमें न लम्बाई है, न चौड़ाई और न गहराई[९] । वह कार्यलिङ्ग है-परमाणु के अस्तित्व का अनुमान उसके कार्यों अर्थात् सामूहिक क्रियाओं से लगाया जा सकता है । परमाणु के गुणों का ज्ञान भी सामूहिक गुणों से ही हो सकता है । एक अकेले परमाणु को सीधे नहीं जाना जा सकता है ।

परमाणु के प्रकार : जैन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न दृष्टियों से परमाणु के प्रकारों की चर्चा की गयी है । भगवतीसूत्र में परमाणु को चार प्रकार का बताया गया है - १. द्रव्य परमाणु २. क्षेत्र परमाणु ३. काल परमाणु ४. भाव परमाणु[१०] । अनुयोगद्वारसूत्र में परमाणु के दो प्रकार कहे गये हैं - १. सूक्ष्म परमाणु (निश्चय परमाणु) २. व्यावहारिक परमाणु[११] । सूक्ष्म परमाणु वास्तविक रूप से निश्चय परमाणु है जिसका विभाजन संभव नहीं है तथा जो इन्द्रियातीत है । केवल ज्ञानी एवं परमावधि ज्ञानी ही जिसका प्रत्यक्ष कर सकते हैं । व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं का समूह है । आधुनिक विज्ञान जिसे 'एटम' (अणु) की संज्ञा देता है, वह विभाज्य है, अतः विज्ञान के सूक्ष्म अणुओं को व्यावहारिक परमाणुओं की श्रेणी में ही रखा सकता है ।

परमाणु-संख्या : जैन दर्शन के अनुसार परमाणु संख्या में अनन्त हैं । गुण की दृष्टि से एक परमाणु में केवल एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श ही होते हैं । इस आधार पर ५ वर्ण, २ गंध, ५ रस में से एक-एक वर्ण, गंध, और रस तथा चार-चार स्पर्शों में से दो-दो स्पर्श होने से मूलतः २०० प्रकार के परमाणु हो सकते हैं । परन्तु वर्ण आदि की मात्रा या गुण (यूनिट) की तरतमता के कारण उसके अनन्त प्रकार हो जाते हैं । विज्ञान जगत् में 'एटम' भी संख्या में अनन्त कहे जा सकते हैं । भौतिक जगत् के मूल कारण को ज्ञात करने हेतु सर्वप्रथम एटम का विभाजन करके तीन सूक्ष्मतम कणों इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन को खोजा गया[१२] । तत्पश्चात् उन सूक्ष्मतम कणों का भी विभाजन संभव हो गया । निरन्तर खोजे जा रहे सूक्ष्म अणुओं को तीन विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करके उन्हें हेड्रॉन्स, लेपटान्स तथा ग्लूओन्स नाम दिया गया ।

---

९ भगवतीसूत्र २०/६/३८

१० वही, २-१०,
जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. ३२१

११ से किं तं परमाणू ? परमाणू दुविहे पण्णत्ते । तंजहा य १ ववहारिए य २ । तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे ।- अनुयोगद्वारसूत्र, उत्सेधांगुल, पृ. २८०-२८१

१२ *Maya in Physics*, p.24

इसके पश्चात् भी इन्हें अन्य उपश्रेणियों में वर्गीकृत किया गया । कुछ संहतिरहित कणों को भी खोज लिया गया जिन्हें क्वार्क तथा फोटोन नाम दिया गया । इस प्रकार वर्तमान में भी सूक्ष्मतम कणों की खोज निरन्तर जारी है[१३] ।

परमाणु की नित्यता : जैन दर्शन में पुद्गल द्रव्य की अन्तिम विभाज्य इकाई को परमाणु कहा गया है । पुद्गल द्रव्य गलन-मिलन स्वभाव वाला कहा गया है । अर्थात् जो बनता रहे, बिगड़ता रहे वह पुद्गल द्रव्य है । प्रत्येक परमाणु अनादि काल से अस्तित्व में था और अनन्तकाल तक उसका अस्तित्व बना रहेगा । वह अपनी सत्ता को किसी भी परिस्थिति में सदैव बनाये रखता है । परमाणुओं को न निर्मित किया जा सकता है और न नष्ट किया जा सकता है । इसकी तुलना आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त 'लॉ ऑफ कन्जर्वेशन ऑफ एनर्जी' से की जा सकती है । अतएव परमाणु नित्य स्वरूप वाला कहा गया है । विज्ञान की फ़्यूजन एवं फिशन प्रक्रिया की तुलना जैन दर्शन सम्मत पुद्गल द्रव्य से की जा सकती है । एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ बन्ध करके स्कन्ध का निर्माण करता है अतः परमाणु में फ्यूजन प्रक्रिया होती है यह स्पष्ट है, परन्तु फिशन प्रक्रिया परमाणु में संभव नहीं है ।

परमाणु के गुण एवं विशेषताएँ : जैन दर्शन सम्मत परमाणु में एक प्रकार की गंध, एक प्रकार का रूप, एक प्रकार का रस तथा दो प्रकार का स्पर्श पाया जाता है[१४] । अर्थात् परमाणु रूपी अर्थात् मूर्त है किन्तु इन चार प्रकार गुणों के होने पर भी परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं है । केवलज्ञानी तथा परमावधि ज्ञानी व्यक्ति ही परमाणु का प्रत्यक्ष कर सकता है । आधुनिक विज्ञान के अनुसार परमाणुओं में इस प्रकार का कोई गुण नहीं पाया जाता । परमाणु में पाये जाने वाले दो स्पर्श स्निग्ध अथवा रुक्ष, शीत अथवा ऊष्ण की तुलना विज्ञान के पॉजिटिव और नेगेटिव चार्ज से की जा सकती है[१५] । जैन दर्शन के अनुसार परमाणु की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता स्पर्श गुण है । चतुःस्पर्शी तथा अष्टस्पर्शी के रूप में दो प्रकार के पुद्गल शरीर स्वीकार किये गये हैं । चतुःस्पर्शी पुद्गल शरीर वे हैं जिनमें चार प्रकार का स्पर्श (स्निग्ध और रुक्ष, शीत और ऊष्ण) पाया जाता है । उसी भांति अष्टस्पर्शी पुद्गल शरीर आठ प्रकार के स्पर्श (स्निग्ध और रुक्ष, शीत और ऊष्ण, लघु और गुरु, मृदु और कठोर) को धारण करता है । परमाणु केवल दो स्पर्श वाला होता है - स्निग्ध या रुक्ष, शीत या ऊष्ण । परमाणु को जैन दर्शन में अगुरुलघु गुण वाला बताया गया है ।

---

१३ At the microcosmic level the atom, the 'atomos' of Democritus, the hard material, the unbreakable fundamental of all matter has already dematrialized into more than two hundred sub-atomic objects. - *Modern physics and Vedanta,* p. 1

१४ एगरसवण्णगंधं दो फासं कद्दकारणमसद्दं ।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणु तं वियाणीहि ।।- पंचत्थिकायसंगहो, गाथा८८

१५ जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. ३१६

परमाणुओं के द्वारा जब स्कन्ध का निर्माण किया जाता है तब उनमें गुरुत्व तथा लघुत्व की उत्पत्ति होती है । दो स्पर्श युक्त परमाणु तथा चतुःस्पर्शी पुद्गल में संहति (द्रव्यमान) नहीं होता है । केवल अष्टस्पर्शी पुद्गल में यह गुण पाया जाता है । आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रारम्भिक सूक्ष्मतम कणों-इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, तथा न्यूट्रॉन को संहति (द्रव्यमान) नहीं होता है । केवल अष्टस्पर्शी पुद्गल में यह गुण पाया जाता है । आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रारम्भिक सूक्ष्मतम कणों-इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, तथा न्यूट्रॉन को संहति (द्रव्यमान) युक्त कहा गया है तथा बाद में खोजे गये सूक्ष्म कणों को उनकी संहति (द्रव्यमान) के आधार पर निम्न भार, माध्यम भार तथा उच्च भार वाले कणों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है । वे कण जो इस संरचना में उपयुक्त प्रतीत नहीं होते हैं उन्हें भाररहित सूक्ष्म कण कहा जा सकता है । आधुनिक विज्ञान में फोटोन, मुओन इत्यादि कणों को भाररहित कहा गया है । किन्तु इन संहतिरहित कणों को भी जैन दर्शन के परमाणु के समान भौतिक जगत् का मूल कारण नहीं कहा जा सकता है । कुछ कण ऐसे हैं जिनका सिद्धान्त रूप में अस्तित्व है किन्तु प्रायोगिक रूप से उन्हें अभी तक खोजा नहीं जा सका है ।

परमाणु की गति एवं क्रिया : जैन दर्शन में परमाणु स्वतः गतिशील तथा क्रियाशील है[१६] । भगवतीसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि जैन दार्शनिक ग्रन्थों में परमाणु की गति के विषय में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । परमाणु कभी एजन करता है, कभी वेजन करता है, कभी चलायमान होता है, कभी स्पन्दन करता है, कभी क्षुब्ध होता है आदि । इस शब्दावली से स्पष्ट होता है कि परमाणु विभिन्न प्रकार से गति करता है । यह गति सरल कम्पन, सरल स्थानान्तरण, जटिल कम्पन, जटिल स्थानान्तरण, दोलन, प्रसारण, ग्रहण, घूर्णन, घर्षण, फिरकन या तरंग-प्रसार इत्यादि रूप में हो सकती है[१७] । इसके अतिरिक्त परमाणु की प्रतिघाती और अप्रतिघाती गति के विषय में भी विवेचन प्राप्त होता है । परमाणु की गति कुछ सन्दर्भों में नियमों से नियत है तो कभी अनियतता के सिद्धान्त का अनुसरण करती है । इसकी तुलना आधुनिक विज्ञान के अनिश्चतता सिद्धान्त से की जा सकती है । सूक्ष्म कण इलेक्ट्रॉन की गति एवं स्थिति के विषय में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है ।

परमाणु की अस्पृशद् गति : जैन दर्शन सम्मत परमाणु अचेतन होते हुए भी गतिशील है । परमाणु की न्यूनतम गति एक समय में एक आकाश प्रदेश से दूसरे आकाश प्रदेश पर और अधिकतम

---

१६ "The atom may develop a motion of its own, and this motion may become so swift that by means of it an atom may transverse in one moment the whole universe from one end to the other", *Indian Atomism,* p.7

१७ जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. ३२६-३२७

लोक के एक अन्त से दूसरे अन्त तक एक समय में हो सकती है । इस अत्यन्त तीव्र वेगमय गति में परमाणु मध्यवर्ती आकाश का स्पर्श किये बिना ही गति करता है । इस गति को जैन दर्शन में 'अस्पृशद् गति' कहा गया है । 'क्वांटम भौतिकी' में भी परमाणु के सौरमण्डलीय प्रतिरूप में यह बताया गया है कि ऋणावेशित इलेक्ट्रॉन धनावेशित नाभिक के चारों ओर भ्रमण करता है । इलेक्ट्रॉन अपनी-अपनी कक्षाओं में इस प्रकार स्थित होते हैं जिससे नाभिक तथा इलेक्ट्रॉन के मध्य सन्तुलन बना रहे । जब परमाणु के द्वारा ऊर्जा ग्रहण की जाती है तो उनके इलक्ट्रॉन बाह्य कक्षाओं में किसी एक में उछलकर चले जाते हैं तथा फिर ऊर्जा का उत्सर्जन करके आन्तरिक कक्षाओं में लौट आते हैं, इस प्रकार मध्यवर्ती आकाश से बिना गुजरे ही वे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में छलांग लगाते हुए प्रतीत होते हैं[१८] । इस आधार पर जैन दर्शन तथा क्वांटम भौतिकी में साम्य दिखाई पड़ता है ।

परमाणु का तीव्रतम वेग : परमाणु एक समय में सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई को पार सकता है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसका उत्कृष्टतम वेग १४ रज्जु/समय है । एक रज्जु का मान असंख्यात योजन है । असंख्यात योजन का मान जैन दर्शन में गणितीय आधारों पर निकाला गया है[१९] । आधुनिक विज्ञान के अनुसार विश्व में उत्कृष्टतम वेग प्रकाश का है जो तीन लाख किलोमीटर/सैकण्ड है । प्रथमतः वैज्ञानिक माइकल्सन तथा मोर्ले ने सिद्ध किया कि प्रकाश का वेग नियत है, किसी भी स्थिति में वह इससे अधिक नहीं हो सकता । तत्पश्चाद् रूस के वैज्ञानिक कैरेनोव ने यह प्रमाणति कर दिया कि निर्वात में प्रकाश का वेग इतना ही रहेगा किन्तु किसी विशिष्ट माध्यम में प्रकाश का वेग इससे अधिक हो सकता है[२०] । आइंस्टीन के 'सापेक्षता-सिद्धान्त' के अनुसार इससे अधिक वेग किसी भी पदार्थ का होना संभव नहीं है, किन्तु संहित (द्रव्यमान) को यदि शून्य माना जाये तो प्रकाश से अधिक वेग की संभावना की जा सकती है । आइंस्टीन के पश्चात् आधुनिक विज्ञान में ऐसे सूक्ष्म कणों की संभावना की गई है जिनका वेग प्रकाश से अधिक है । संहतिशून्य कणों की अवधारणा विशुद्ध गणितीय क्षेत्र से सम्बद्ध है । जैन दर्शन का परमाणु संहति (द्रव्यमान) से शून्य माना गया है इसके आधार पर उसके उत्कृष्टतम वेग की संभावना की जा सकती है ।

---

१८ The atomic orbits, however, are very different from those of the planets in the solar systems, the difference arising from the wave-nature of the electrons. Also, whenever an atom absorbs energy, its electrons jump to one of the other outer orbits and later return to the inner orbits by emitting the energy absorbs earlier. Since the electrons are never found anywhere between the orbits, they appear to keep jumping from one orbit into another, without passing through the intervening space, -*Microcosmology Atom in Jain Philosophy & Modern Science*, p. २०१-२०२

१९ इस हेतु मुनि महेन्द्र कुमार द्वारा लिखित विश्व-प्रहेलिका, पृ. २५५-२७० द्रष्टव्य है ।

२० जैन दर्शन एवं विज्ञान, पृ. ३३२-३३३

परमाणु ऊर्जा और तेजोलेश्या : विज्ञान की परमाणु शक्ति (न्यूक्लीयर एनर्जी) तथा जैन दर्शन सम्मत तेजोलेश्या की प्रक्रिया में यत्किञ्चत् साम्य है । जो व्यक्ति छह महिने तक बेले का तप करे, ऊर्ध्वबाहु रहकर हमेशा सूर्य की आतापना ले और पारणे में एक मुट्ठी उड़द और एक चुल्लु पानी ग्रहण करे, वह तेजोलेश्या को प्राप्त करता है । तेजोलेश्या परमाणु-शक्ति की भाँति विध्वंसकारी बन सकती है । तेजोलेश्या पौद्गलिक है और वह विस्तृत भाव को प्राप्त होकर अंग, बंग, मगध, मलय-मालव जैसे १६ देशों को एक साथ भस्म कर देती है । आधुनिक परमाणु ऊर्जा तो केवल ऊष्मा के रूप में ही प्रकट होती है, किन्तु तेजोलेश्या में उष्णता और शीतलता दोनों गुण विद्यमान हैं । तेजोलेश्या के दो भेद बताये गये हैं-ऊष्ण तेजोलेश्या (न्यूक्लीयर एनर्जी) तथा शीतल तेजोलेश्या (एंटीन्यूक्लीयर एनर्जी) । शीतल तेजोलेश्या ऊष्ण तेजोलेश्या के प्रभाव को तत्क्षण नष्ट कर सकती है । वैज्ञानिक अभी तक ऊष्णतेजोलेश्या (न्यूक्लीयर एनर्जी) अर्थात् एटम बम तथा हाइड्रोजन बम का ही आविष्कार कर पाये हैं, किन्तु अणु आयुधों का प्रतिकारक अस्त्र उन्हें अभी तक नहीं मिल पाया है[२१] ।

परमाणु-बन्ध के नियम : जैन दर्शन ने परमाणुओं के संयोग के लिए स्निग्ध तथा रूक्ष स्पर्श को कारण माना है[२२] । स्निग्ध तथा रूक्ष स्पर्श की तुलना आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रतिपादित धन विद्युत तथा ऋण विद्युत आवेश के साथ की जा सकती है । जैन दर्शन के अनुसार ऊर्जा या बिजली की उत्पत्ति में उक्त गुण ही निमित्त बनते हैं । प्रत्येक पुद्गल-परमाणु और पुद्गल-स्कन्ध में स्निग्ध या रूक्ष गुण अवश्य ही पाया जाता है । इन दो प्रकार के स्पर्शों की मात्रा जिसे गुण कहा जाता है, उसके आधार पर यह निर्धारित होता है कि दो पुद्गल-परमाणुओं का संयोग हो सकता है या नहीं । इसकी न्यूनतम मात्रा एक गुण होती है, उससे कम नहीं । यह एक प्रकार से क्वांटम यानी एक पूर्ण राशि या पैकेट है जो अपूर्णांक द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो सकता । इसका तात्पर्य यह हुआ कि कोई परमाणु एक गुण स्निग्ध या एक गुण रूक्ष हो सकता है, किन्तु १/२ भाग या १/४ भाग नहीं हो सकता । आधुनिक विज्ञान के क्वांटम सिद्धान्त द्वारा भी यही प्रतिपादित किया गया है । इसके साथ ही जैन दर्शन यह भी स्वीकार करता है कि रूक्ष परमाणु का रूक्ष परमाणु के साथ तथा स्निग्ध परमाणु का स्निग्ध परमाणु के साथ दो से लेकर अनन्त गुणों की तरतमता यावत् बन्धन प्राप्त होता है । परन्तु एक गुण रूक्ष तथा एक गुण स्निग्ध परमाणु कभी बन्धन को प्राप्त नहीं होते हैं ।

---

२१ जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. ३३९-३४०

२२ क. स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ।।- तत्त्वार्थसूत्र, ५/३३

ख. अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसद्दो जो ।
णिद्धो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुभवदि ।।- प्रवचनसार, १६३

परमाणु की द्विविधता : हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ सकता है कि इस भौतिक जगत् के मूल कारण परमाणु की वास्तविक प्रकृति कैसी है ? क्या यह तरंग है अथवा कण ? या यह द्रव्य है अथवा ऊर्जा ? क्या यह इलेक्ट्रोमेग्नेटिक फील्ड से युक्त है या यह ग्रेविटेशनल फील्ड से सम्बद्ध है ? आधुनिक विज्ञान की क्वांटम भौतिकी में वैज्ञानिक 'लुइस डि ब्रोगली'के द्वारा 'तरंग-कण द्वन्द्वात्मकता'की संकल्पना को प्रस्तुत किया गया । जिसके अनुसार एक गतिशील कण किन्हीं परिस्थितियों में एक कण की भांति व्यवहार करता है तथा कुछ परिस्थितियों में तरंग की भाँति । इसी भाँति जैन दर्शन विभिन्न प्रकार की ऊर्जा, आतप (हीट), प्रकाश, विद्युत् इत्यादि को पुद्गल के पर्यायों की संज्ञा देता है । भावार्थ यह है कि पुद्गल कभी पदार्थ रूप में उपस्थित होता है तो कभी तरंग के रूप में दिखाई देता है[२३] । जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त की दृष्टि से कहा जा सकता है कि जब कण का अस्तिभाव रहता है तब तरंग का नास्तिभाव विद्यमान रहता है । और जब तरंग का अस्तिभाव होता है तब कण का नास्तिभाव विद्यमान रहता है । स्याद्वाद का तीसरा अंग अवक्तव्य है । विज्ञान जगत् में अवक्तव्य का अर्थ 'अनप्रेडिक्टेबल' के रूप में लिया जाता है सूक्ष्म पदार्थ के व्यवहार को समझने में जब यह निश्चित नहीं हो पाता कि पदार्थ कण रूप व्यवहार कर रहा है या तरंग रूप व्यवहार कर रहा है तो इसे उस समय के लिए अवक्तव्य कहा गया है । आइंस्टीन के द्रव्यमान-ऊर्जा (लॉ ऑफ कन्जर्वेशन ऑफ मास एंड एनर्जी) सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ व ऊर्जा दोनों स्वरूपतः एक ही तत्त्व हैं[२४] जो अनुकूल स्थितियों में अपना स्वरूप परिवर्तित करते रहते हैं । इस दृष्टि से जैन दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान में साम्य दिखाई देता हैं ।

परमाणु परिमाण : जैन दर्शन में परमाणु को आदि, मध्य तथा अन्त से रहित बताया गया है[२५] । यह भी कहा गया है कि परमाणु में न लम्बाई है, न चौड़ाई है और न मोटाई[२६] । अतः जैन दर्शन सम्मत परमाणु परिमण्डलाकार प्रतीत होता है । आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि इलेक्ट्रॉन एक ही निर्धारित रेखा में चक्कर नहीं लगाता । यद्यपि प्रत्येक परत की सीमा निर्धारित है, किन्तु

---

२३ जैन दर्शन एवं विज्ञान, पृ. ३३६

२४ "Einstein's famous equation . E=mc2 has shown that matter and energy are mutually transformable. The paradox presented by the waves of atoms and particles of light has been resolved by a new mathematical equation that permits accurate description of quantum phenomena, either in terms of waves or in terms of particles, as on wished. Today the whole complex of the physical universe is almost resolved into homogenous fabric in which matter and energy are indistinguishable." - *Scientific Vision of Lord Mahāvīra*, pp. 124-125

२५ भगवतीसूत्र, ५/७/१६०

२६ प्रदेशमात्रभाविभिः स्पर्शादिभिः गुणैस्सततं परिणमन्त इत्येवं अण्यन्ते शब्द्यन्ते ये ते अणवः ः। सौक्ष्म्यादात्मादयः आत्मामध्या आत्मान्ताश्च ।।-तत्त्वार्थवार्तिक, ५/२५/१

उसी सीमा में चक्कर लगाने की रेखा निर्धारित नहीं है । उसी सीमा में वह स्थानान्तरित होती रहती है । तीव्र गति से घूमना और घूमने की रेखाओं का स्थानान्तरित होते रहना सूक्ष्म कण को एक मण्डल के आकार में अभिव्यक्त करता है, क्योंकि यह आकार सब ओर से समान प्रतीत होता है । इसलिए इसको परिमण्डलाकार कहा जा सकता है । इस प्रकार परमाणु के परिमाण के विषय में जैन दर्शन तथा विज्ञान एकमत प्रतीत होते हैं ।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक जिस परमाणु एटम 'अणु' के अनुसंधान में लगे हुए हैं, जैन दर्शन के मतानुसार वह अनेक परमाणुओं से संघटित कोई स्कन्ध (मॉलिक्यूल) ही है । उसका कारण यह है कि जैन ग्रन्थों में परमाणु की सूक्ष्मता के विषय में कहा गया है कि वह परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं है तथा किसी प्रयोग का विषय भी नहीं है । उस पर मनुष्यजन्य विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रभाव नहीं होता है । जैन दर्शन सम्मत परमाणु की परिभाषा के अनुसार सूक्ष्म कण इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन तथा उनके विभाजन के फलस्वरूप खोजे गए फोटॉन, न्यूट्रीनो, क्वार्क इत्यादि में से भी किसी कण को परमाणु की संज्ञा नहीं दी जा सकती हैं । एटम को विभाजित करने के क्रम में जितने भी सूक्ष्म कणों की खोज की जा चुकी है उन्हें जैन दर्शन सम्मत निश्चय परमाणु अथवा सूक्ष्मतम परमाणु नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि निश्चय परमाणु पूर्णतः अविभाज्य एवं मौलिक हैं । ऐसे कण जो सूक्ष्मतम प्रतीत होते हैं वे वास्तविक रूप में व्यवहार परमाणु हैं । इस भौतिक जगत् का मूल कारण अर्थात् अन्तिम कारण क्या है ? इस पहेली को अभी तक विज्ञान द्वारा सुलझाया नहीं जा सका है । मूल कारण को ज्ञात करने हेतु लगातार की जा रही खोजों के क्रम में नवीन सूक्ष्म कणों का उदय होता जा रहा है, किन्तु सृष्टि के अन्तिम कारण रूप सूक्ष्मतम कण का ज्ञान अभी आधुनिक वैज्ञानिकों को भी नहीं हो पाया है । भविष्य में ऐसी आशा है कि विज्ञान के प्रयोगों तथा जैन दार्शनिक ग्रन्थों के समन्वित अध्ययन से ही इस गुत्थी को सुलझाकर सत्य तक पहुँचा जा सकेगा ।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

१. भगवतीसूत्र, अंगसुत्ताणि, भाग-२, वाचना प्रमुख-आचार्य तुलसी, सम्पादक-मुनि नथमल, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, १९७४

२. भगवतीसूत्र जोड., श्रीमज्ज्याचार्य, खण्ड १ व २, वाचना प्रमुख-आचार्य तुलसी, सम्पा.-मुनि नथमल, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, १९८१, १९८६

३. अनुयोगद्वार सूत्र (शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ एवं विवेचन सहित), सम्पा.-नेमीचन्द बांठिया, पारसमल चण्डालिया, अनु, प्रो. डॉ. छगनलाल शास्त्री, डॉ. महेन्द्रकुमार रांकावत, श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर.

४. तत्त्वार्थसूत्र; उमास्वाति, सं. सुखलाल संघवी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९७६

५. सर्वार्थसिद्धि (गृद्धपिच्छ, प्रणीत तत्त्वार्थसूत्रवृति सहित); पूज्यपाद विरचित, सं व अनु. फूलचद्र शास्त्री, भारतीय, ज्ञानपीठ, दिल्ली संस्करणः पन्द्रहवां, २००९

६. तत्त्वार्थवार्तिकम् [राजवार्तिकम्] (हिन्दीसारसहितम्) [प्रथमो भागः द्वितीयो भागः च]; भट्ट अकलंकदेव विरचितम्, सं व अनु. महेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करणः आठवाँ, २००८

७. पञ्चास्तिकायसंग्रह [पंचत्थिकायोसंगहो] (जयसेनकृत तात्पर्यवृति सहित); सं. व अनु. मन्नूलाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, संस्करणः द्वितीय, २००४

८. प्रवचनसार (जयसेन द्वारा विरचित तात्पर्यवृत्ति टीका का शब्दशः अनुवाद); कुन्दकुन्दप्रणीत, अनु. कल्पना जैन, प्रका. श्री दिगम्बर जैन ट्रस्ट, बैंग्लोर एवं पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, संस्करणः द्वितीय, १९९७

९. महेन्द्र कुमार, मुनिश्री, विश्वप्रहेलिका, जवेरी प्रकाशन, बॉम्बे, १९३९ (जैन विश्वभारती, लाडनूँ, ३४१३०६ राजस्थान में उपलब्ध)

१०. Gangopadhyaya, M.K., *Indian Atomism (History and Sources)*; Bagachi Indological Series, Culcutta, 1980

११. Zaveri, J.S., *Microcosmology: Atom in Jaina Philosophy & Modern Science;* Jaina Vishva Bharti Institute, Ladnun (Raj), Edition: Third, 1995

१२. Samani Chaitanya Pragya, *Scientific Vision of Lord Mahavira,* Jain Vishva Bharati, Ladnun, Rajasthan (India), 2005

१३. Hawking, Stephen W.: *A Brief History of Time,* Bantam Press, London, 1989

१४. Masih, Y., *A Critical History of Western Philosophy (Greek. Medieval and Modern);* Motial Banarasidass Publishers Private Limited, Delhi, Reprint: 1999

१५. Jitatmananda, Swami, *Modern Physics and Vedanta,* Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai, 2006

१६. Panda, N.C., *Māyā in physics,* Motilal Banarasidass Publishers Private Limited, Delhi, 2008

१७. Ashoka K. Mishra, *"Atomism of Nyaya-Vaisesika VS Jainism - A Scientific Appraisal", Indian Journal of History of Science,* Delhi, 2006

योगदर्शन में ज्योतिषीय सिद्धांत

मृत्युञ्जय तिवारी *

भारतीय जीवन दर्शन में मानव जीवन आनंद तथा शांति की प्राप्ति के लिए है । त्रिकालदृष्टा मुनियों ने जीवन को इहलौकिक और पारलौकिक दो भागो में बाँटकर मानव जीवन काल में भौतिक तथा आध्यात्मिक सुख शांति के लिए ऋक्, यजु, साम और अथर्व संज्ञक चार वेद बताये हैं । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष छः वेदांग हैं । पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र चार उपांग हैं । उपपुराणों का पुराणों में, वैशेषिक शास्त्र का न्याय में, इतिहास संज्ञक महाभारत और रामायण का सांख्यमें, पातंजल, पाशुपत और आगमों का अभ्युदय निःश्रेयसपद धर्मशास्त्रों में अंतर्भाव युक्त है । इस प्रकार चतुर्विध वेद, षडंग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ही चौदह विद्यास्थान हैं ।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।।[१]

मानव जीवन काल में भौतिक सुख शान्ति के लिए अनेक शास्त्र हैं जैसे - आयुर्वेद, ज्योतिष, योगशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पकलादि एवं आध्यात्मिक विद्याओं में वेदांत, न्याय, सांख्य एवं योगदर्शन आदि । इनमें भी प्राचीन काल में मुख्यतया ३ विद्याएँ अत्यधिक प्रचलन में थी - आयुर्वेद, ज्योतिष और योगशास्त्र । हम सभी जानते हैं कि मानव सुख-शांति पूर्वक अपना जीवन निर्वहन करने के लिए अनेक प्रकार के कर्म करता है, ये कर्म शुभाशुभ होते हैं । कर्मों के द्वारा ही उसका प्रारब्ध या भाग्य निर्धारित होता है, तथा जीवन में सुख-दुःख की अनुकूलता प्रतिकूलता का वर्तमान एवं भविष्य का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा किया जाता है ।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव[२] ।।

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. ६९-७५. ISSN 2250-0391

* संस्कृतविभाग, श्रीकल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय, चित्तौड़गढ़, M: 8866774099
Email: mrityunjaydtiwari@gmail.com

१ याज्ञवल्क्य स्मृति, १/३ आचाराध्याय, हिंदी व्याख्याकार-गंगा सागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण, २०१७, पृ. २

२ लघुजातक, १/३ राशिशीलाध्याय, संपादक-कमलाकांत पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१६, पृ. २

वेदांगो में ज्योतिषशास्त्र को नेत्र की संज्ञा प्राप्त है, इस शास्त्र का उद्देश्य ही जीवन को अध्यात्म की ओर लगाना है । यह शास्त्र व्यावहारिक जीवन को दर्शित करने वाला है । इससे प्रारब्ध को ज्ञात किया जा सकता है, तथा जीवन को अग्रसर करने की प्रेरणा भी यहीं से प्राप्त होती है, इसीलिये यह शास्त्र सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है । आयुर्वेद के द्वारा जिन व्याधियों अथवा बीमारियों का निरूपण किया जाता है उन व्याधियों को दो प्रकार से विभक्त किया गया है-

नहि कर्म महत्किञ्चित् फलं यस्य न भुज्यते ।
क्रियाघ्नाः कर्मजा रोगाः प्रशमं यान्ति तत्क्षयात् ।।[३]

अर्थात् व्याधियाँ भी कर्म से उत्पन्न होती हैं तथा कुछ व्याधियाँ आहार-विहार के (वात-पित्त-कफादि) दोषों से जन्म लेती हैं । यह सिद्धान्त भी कर्म की ओर इंगित करता है । इसी सिद्धान्त को और भी स्पष्ट करते हुए योगेश्वर कृष्ण ने कहा है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।[४]

अर्थात् प्राणियों का अधिकार केवल कर्म करने पर है । अतः हम कह सकते हैं कि ज्योतिषशास्त्र की आधारशिला कर्मवाद तथा आकाशीय ग्रह स्थिति पर निर्भर है ।

ब्रह्माण्ड के सभी ग्रहों, नक्षत्रों, तारों आदि आकाशीय पिण्डों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचल का प्रभाव भी सीधे पृथ्वी पर पडता है । जिसमें सूर्य तथा चन्द्रमा के प्रभाव को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । द्योतते इति ज्योतिः, सूर्यो ज्योतिः अर्थात् सूर्य ही प्रकाश है । ग्रहों में सूर्य-चन्द्र को प्रकाश ग्रह की उपमा प्राप्त है । सूर्य की मुख्य ७ रश्मियाँ हैं । जिनको शास्त्रों में क्रमशः सुषुम्ना, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, अर्वावसु एवं स्वराड् नामों से जाना जाता है । इनमें से सुषुम्ना नामक रश्मि ही चन्द्रमा को प्रकाशित करती है, एवं वहाँ से परावर्तित होकर पृथ्वीवासियों के लिए अमृतवर्षा करती है । द्युलोक में देवता के रूप में सूर्य का वर्णन वेदों में प्राप्त है - सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च[५] । वस्तुतः भूवासियों के लिए हमारे विशेषज्ञ मनीषियों ने अंतरिक्ष अनुसंधान में निरत रहते हुये सूर्य से निकलने वाली सप्तरश्मियों का विशिष्ट अध्ययन किया तथा इन रश्मियों से निकलने वाली ऊर्जा को पहचाना ।

---

३ चरक संहिता, १/११७ शरीरस्थानम्, व्याख्याकार-महर्षि अग्निवेश भार्गव, भार्गव पुस्तकालय गायघाट, वाराणसी, द्वितीय आवृत्ति, संवत् २००५, पृ. २१

४ श्रीमद्भगवद्गीता, तत्वबोधिनी हिंदी टीका, २/४७, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर, ११२ वां पुनर्मुद्रण, संवत् २०७८, पृ. १०१

५ यजुर्वेद संहिता, ७/४२, संपादिका-रेखा व्यास, विश्व बुक प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, २०१६, पृ. ७८

साधारणतया हम सभी जानते हैं कि १२ आदित्य या सूर्य हैं । इन १२ आदित्यों के माध्यम से ही तपःपूत ऋषियों ने १२ महीनों में पृथक्-पृथक् सूर्य के प्रकाश-ताप तथा रश्मिगत प्रभावों में आने वाले परिवर्तन तथा जीवमात्र पर पडने वाले प्रभाव को देखकर ही सूर्यनारायण के ऊर्जा स्रोत तथा प्रभाव को सूर्यरश्मियों के अध्ययन से जाना । सर्वविदित है कि-आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः[६]-अर्थात् ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूर्य आत्मा का एवं चन्द्रमा मन का कारक है । इसीलिये जन्मांग वा अन्तरिक्ष में चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार ही मन की स्थिति होती है ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्[७] ।।

मन और बुद्धि के कारण ही अनेक वैचारिक एवं शारीरिक हलचलें होती हैं, आधुनिक विज्ञान भी इसी सिद्धान्त को मानता है-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।[८]

अर्थात् मन पर नियंत्रण ग्रहस्थितियों पर भी निर्भर करता है, संसार के प्राणियों में कुछ मन पर नियंत्रण कर लेते हैं तो कुछ पूर्णतः नियंत्रण नही कर पाते, ज्योतिषशास्त्र में इसका विस्तृत अध्ययन किया जाता है । शरीर और मन का सम्बन्ध शरीर में स्थित नाडियों तथा व्याप्त वायुभेद से है, जिसका निरूपण योगशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र में किया गया है । योगदर्शन के अनुसार शरीर में उपस्थित नाडी वह मार्ग है जिससे होकर शरीर की उर्जा प्रवाहित होती है । ये नाडियाँ ही शरीर में स्थित नाडी चक्र को जोडती हैं । महर्षि पतंजलि ने अपने कालजयी ग्रन्थ योगसूत्र में कहा है - योगश्चित्तवृत्तिर्निरोधः[९]-अर्थात् चित्त (मन)की विविध वृत्तियों का नियंत्रण ही इस योगशास्त्र का प्रमुख विषय है ।

---

६ लघुजातक, २/१ ग्रहबलाबलाध्याय, संपादक-कमलाकांत पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, २०१६, पृ. १६

७ ब्रह्मबिन्दूपनिषद् ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदत्, श्रीवासुदेवशर्मा, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

८ श्रीमद्भगवद्गीता तत्वबोधिनी हिंदी टीका, ६/३८, जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर, ११२वां पुनर्मुद्रण, संवत् २०७८, पृ. ३३२

९ योगसूत्र, १/२, श्री नंदलाल दशोरा रणधीर, हरिद्वार, तृतीय संस्करण, १९९७, पृ. १२

आधुनिक विज्ञान ने भी इसी बात पर बल दिया है कि जहाँ-जहाँ सूर्य और चन्द्रमा की रश्मियों का समुचित प्रवाह है वहाँ पर ही जीवन संभव है, जहाँ इनका अभाव है वहाँ जीवन संभव नहीं है । आज विज्ञान इस समस्त ब्रह्मांड में पृथ्वी से इतर किसी अन्य पिंड पर जीवन है या नहीं इस पर अनुसन्धान करने में निरंतर प्रयत्नशील है । वहीं हमारे वैदिक सिद्धांत के अनुसार स्थावर एवं जंगम दोनों की सृष्टि अग्नि या सूर्य और सोम पर टिकी हुई है । सोम का सम्बन्ध अन्य पिंडो या पृथ्वी से सूर्यरश्मियों के माध्यम से होता है । सूर्यरश्मियों का विशद् विवेचन ज्योतिषशास्त्र में भी इसी रूप में स्वीकार किया गया है, तथा इनके साथ सूर्य और चन्द्रमा की भूमिका भी स्पष्ट की गयी है ।

सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वश्रवाः ततश्चान्यः संयद्वसुरतः परः ।

अर्वावसुरिति ख्यातः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः ।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम्[१०] ।।

सुषुम्ना नाडी का सीधा सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है । हमारे शरीर में स्थित दस नाडियाँ तथा उनमें व्याप्त वायु निम्नलिखित प्रकार से समझे जा सकेंगे-

क्र.सं.	नाडी	वायु	क्र.सं.	नाडी	वायु
१.	इडा	प्राण	६.	पूषा	नाग
२.	पिंगला	अपान	७.	यशा	कूर्म
३.	सुषम्ना	समान	८.	व्यूषा	कृकल
४.	गान्धारी	उदान	९.	कुहू	देवदत्त
५.	हस्तिजिह्वा	व्यान	१०.	शंखिनी	धनञ्जय

इनमें तीन नाडियों (इडा, पिंगला और सुषुम्ना) को हम आसानी से पहचान पाते हैं । क्योंकि इनका परीक्षण हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं । भारतीय चिकित्सा पद्धति में कई बार इन नाडियों का नाम सुषुम्ना को सूर्य नाडी, इडा को चन्द्र नाडी कहते हैं क्योंकि इन नाडियों का सीधा सम्बन्ध इन ग्रहों से है । पिंगला का सम्बन्ध सूर्य से तथा सुषुम्ना का सम्बन्ध शम्भु से बताया गया है । ज्योतिषशास्त्र में स्पष्ट किया गया है-

१०. कूर्मपुराण, १/४१.३-४, संपादक-जैनेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, १९५१, पृ. २८२

इडा नाडीस्थितः चन्द्रः पिंगला भानुवाहिनी ।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण शम्भुहंसस्वरूपकः ।।[११]

अर्थात् इडा नाडी के माध्यम से चन्द्रस्वर तथा पिंगला के माध्यम से सूर्यस्वर नासिका से प्रवाहित होते हैं और इस पूरी प्रक्रिया का संचालन सुषुम्ना नाडी पर आधारित है । सुषुम्ना को हंसस्वरूप कहा गया है, हंस ही शम्भु है । श्वास आवागमन की प्रक्रिया को हंस कहा जाता है, जब नाक से श्वास बाहर आती है तब हकार (ह) जब अन्दर श्वास प्रवेश करती है तब सकार (स) स्वरूप होती है । यही सुषुम्ना हकार से शम्भु स्वरूप तथा सकार से शक्ति स्वरूप है । योगीजन इसी श्वास के निर्गम तथा प्रवेश की क्रिया को शिवशक्ति से जोडकर परमात्मा को हंस नाम से जानते हैं । तथा ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शुभ कर्म में चन्द्र या इड़ा नाड़ी का चलना तथा रौद्र कर्म में सूर्य या पिंगला नाड़ी का चलना शुभ फलदायी माना जाता है । इड़ा नाड़ी चलने का अर्थ है बायीं नाक से श्वास का चलना और दाहिनी नाक से श्वास का चलना पिंगला नाडी को इंगित करता है । किस समय कौन सी नाड़ी चल रही है इसका अनुभव अपनी नासिका छिद्रों के पास अपनी अंगुलियों को ले जाकर कर सकते हैं ।

सूर्य एवं चन्द्रमा कि गति से ही तिथियों का निर्माण होता है १८० अंश की दूरी पर आमने सामने इनके पड़ने से पूर्णिमा तो ३६० अंश अर्थात् साथ में रहने से अमावस्या आदि तिथियाँ बनती हैं । तिथियों के अनुसार ही इन नाड़ियों के चलने का क्रम इस प्रकार से है - शुक्ल पक्ष में पहले तीन दिन तक चन्द्र नाड़ी और उसके बाद तीन सूर्य नाड़ी चलती है । इसी क्रम से शुक्लपक्ष में नाडी सञ्चालन होती है । इसी प्रकार से कृष्णपक्ष में पहले तीन दिन दाहिनी नाड़ी यानी सूर्य-स्वर का उदय होता है उसके बाद चन्द्र नाड़ी का । इसी प्रकार से प्रत्येक दिन इन नाड़ियों का क्रमबद्ध उदय एवं अस्त होता है । इन समस्त नाड़ियों का सञ्चालन करने वाली शक्ति ही कुण्डलिनी शक्ति है ।

उच्छ्वासश्चैव निःश्वासो हंस इत्यक्षरद्वयम् ।
तस्मात् प्राणस्थहंसाख्य आत्माकारेण संस्थितः[१२] ।।

बिना उच्चारण के श्वास-प्रश्वास के माध्यम से होने वाले जप के कारण ही योगीजन इस प्रक्रिया को अजपा जप कहते हैं - न जप्यते नोच्चार्यते अपितु श्वाशप्रश्वाशयोर्गमनागमनाभ्यां सम्पाद्यते[१३] अर्थात् बिना जप एवं उच्चारण किये केवल श्वास के आने से जो जप संपन्न होता है

---

११. नरपतिजयचर्या हंसचार, श्लोक ९, सम्पादक- क्षेमराज श्री कृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रकाशन, मुंबई, पृ. ४५

१२. अग्निपुराण, २१४/२४, पृ. ४०७

१३. शब्दकल्पद्रुः, श्रीहरिचरण वसु, प्रथम भाग, चौखम्बा संस्कृतसीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृतीय संस्करण सं. २०२८, पृ. १७-१८

उसे अजपा जप कहते हैं । जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में सूर्य की सुषुम्ना नामकी रश्मि चंद्रमंडल से होकर भूमंडल पर पहुँचकर अमृत वर्षा करती है, ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर में सुषुम्ना नाड़ी कपाल में स्थित होकर अमृत का स्राव करती है तथा योगशास्त्र का ज्ञाता अपनी जिह्वा को कपाल कुहर में ले जाकर अमृत का पान करता है, इसे ही खेचरी मुद्रा का नाम दिया गया है-

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी[१४] ।।

हम सभी जानते हैं कि योगशास्त्र की परम साधना का विषय षट्चक्र भेदन है, कई बार साधक अनेकानेक प्रयासों के बाद भी इन चक्रों का भेदन नहीं कर पाता है तो कई बार सहज ही इन चक्रों का भेदन साधको द्वारा प्रत्यक्ष देखा गया है क्योंकि इन चक्रों का सम्बन्ध ग्रहों से है-

षट्चक्र एवं उनके ग्रह

क्र.सं.	षट्चक्र	अधिष्ठातृ देवता	कारक देवता
१.	मूलाधार	गणेश	बुध
२.	स्वाधिष्ठान	विष्णु	शुक्र
३.	मणिपूर	रुद्र	रवि
४.	अनाहत	रुद्र	मंगल
५.	विशुद्ध	रुद्र	चन्द्र
६.	आज्ञा	रुद्र	गुरु

इन्हीं षट्चक्रों के भेदन के उपरांत योगीजन सातवें सहसार में प्रवेश कर परम योगेश्वर रुद्र का साक्षात्कार करता है । इस सहसार चक्र के देवता या अधिष्ठाता रुद्र हैं तथा कारक ग्रह शनि है । इन षट्चक्रों में दूसरे क्रम पर स्वाधिष्ठान तथा पाँचवे क्रम के विशुद्ध चक्रों का भेदन अत्यंत कठिन है, ध्यातव्य है कि इन चक्रों के कारक ग्रह क्रमशः शुक्र एवं चन्द्रमा हैं तथा इन दोनों की गति अन्य ग्रहों की अपेक्षा सर्वाधिक है । ये ग्रह अतिशीघ्रता से विचरण करने के कारण ही

१४. हठयोगप्रदीपिका, ३/३२, खेचरी मुद्रा टीकाकार स्वामी मुक्तिबोधानंद अंग्रेजी टीका, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, २००६, पृ. ३१०

मनुष्यों को अत्यंत संवेदनशील बनाते हैं एवं मन की एकाग्रता में बाधा पहुँचाते हैं फलस्वरूप साधक कभी कभी इन चक्रों तक पहुँचकर भी ग्रहों के प्रभाव से असफल हो जाता है तथा उसकी साधना भी भंग हो जाती है । तथा जो साधक ग्रहों की अनुकूलता में विशुद्ध चक्र का भेदन कर लेते हैं वे आज्ञा चक्र का भेदन गुरुकृपा से सहज ही कर लेते हैं क्योंकि आज्ञा चक्र का कारक ग्रह देवगुरु बृहस्पति ही है और गुरुकृपा होते ही सहसार चक्र में प्रवेश पा लेता है ।

इस प्रकार हम देख रहे हैं कि योगशास्त्र तथा ज्योतिष दोनों साथ साथ बहने वाली धाराओं के नाम हैं, कई बार ये एक दूसरे में अन्तरंग हो जाती हैं दोनों ही शास्त्रों का चरम लक्ष्य मानव कल्याण ही है । जहाँ एक ओर एक ज्योतिषी को शांत चित्त की आवश्यकता होती है वही योग के साधक योगी को भी शांत चित्त होकर ही सिद्धियाँ मिल सकती हैं । ज्योतिष शास्त्र में सिद्ध योगी ब्रह्मयोगी आदि के योग भी बताये गए हैं ।

Manuscript-copies Procuring Charges*

Charges for Indian Scholars

Sr. No.	Material	Handling Charge	Referring Charge	Digitization Charge	Using own Camera
1.	Paper Manuscript	Rs. 15/- (per MS)	Rs. 15/- (per MS)	Rs. 20/- (per page)	No Charges but the scholar has to submit one digitized copy of the work free of cost to the Institute
2.	Palm Leaf Manuscript	Rs. 30/- (per MS)	Rs. 30/- (per MS)	Rs. 40/- (per page)	No Charges but the scholar has to submit one digitized copy of the work free of cost to the Institute
3.	Illustrated Manuscript	Rs. 30/- (per MS)	Rs. 30/- (per MS)	Rs. 700/- per Exposure/ page	No Charges but the scholar has to submit one digitized copy of the work free of cost to the Institute

Charges for Non-Indian / Foreign Scholars

Sr. No.	Material	Handling Charge	Referring Charge	Digitization Charge	Using own Camera
1.	Paper Manuscript	Rs. 45/- (per MS)	Rs. 45/- (per MS)	Rs. 40/- (per page)	No Charges but the scholar has to submit one digitized copy of the work free of cost to the Institute
2.	Palm Leaf Manuscript	Rs. 90/- (per MS)	Rs. 90/- (per MS)	Rs. 80/- (per page)	No Charges but the scholar has to submit one digitized copy of the work free of cost to the Institute
3.	Illustrated Manuscript	Rs. 90/- (per MS)	Rs. 90/- (per MS)	Rs. 1400/- per Exposure/ page	No Charges but the scholar has to submit one digitized copy of the work free of cost to the Institute

Kindly note -

- **Copies can be delivered On-line or in CD/DVD** by registered Post- parcel/Courier or can be collected in person.
- **Money** can be **transferred** in the following Current Bank Account of **Oriental Institute**
  Bank : **Bank of Baroda** (Current Account at Dandia Bazar Branch, Vadodara)
  Account No. : 05780200000213
  Branch Code : BARB0DANDIA (Fifth Character is Zero)
  Swift Code : BARBINBBRM
- **Contact details of the Oriental Institute:**
  Phone No. : 0265-2425121
  E-Mail : director-oriental@msubaroda.ac.in
  Director's Mobile No. : 09898472669
- The five volumes of **'An Alphabetical List of Manuscripts'** available on **www.msubaroda.ac.in**

* Charges as per the Letter No. 289, dated 10.9.2012 of S.R. No.14, dated 31.07.2012

राजशेखर के रूपकों में नायक विवेचन–एक अनुचिन्तन

शिबुनाथ भूञ्या*

भूमिका :–

महाकवि राजशेखर संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य नाट्यकार हैं । उन्होंने अपनी विशिष्ट रचनाओं से संस्कृत साहित्य को गौरवान्वित तथा समृद्ध किया है । राजशेखर को आचार्यों की श्रेणी में प्रतिस्थापित करने वाला उनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ काव्यमीमांसा है । उनका संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं पर पूर्णाधिकार था । जहाँ एक ओर उनकी संस्कृत भाषा में लिखी गई बालरामायण, बालमहाभारत नाटक श्रेणी में तथा विद्धशालभञ्जिका नाटिका श्रेणी में कृतियाँ हैं, वहीं प्राकृत भाषा में लिखी गई कर्पूरमंजरी–सट्टक आदि अनुपम हैं । बालरामायण के प्रथम अंक से राजशेखर के अपनी कुल परम्परा का संक्षिप्त विवरण ज्ञात होता है,–'तदामुषयायणस्य महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः शीलवतीसूनुरूपाध्यायः श्रीराजशेखरः इत्यपर्याप्तं बहुमानेन।'[१](बालरामयण, प्र.अ. पृ.६) महाराष्ट्र चूडामणि अकाल जलद की चौथी पीढ़ी में राजशेखर का जन्म हुआ । इसी अन्तः साक्ष्य के आधार पर राजशेखर अकालजलद के प्रपौत्र थे । इनके पिता का नाम दर्दुक (दुहिक) तथा माता का नाम शीलवती था तथा इनका गोत्र अमुष्यायण था । इनकी पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी था ।

नायकों का लक्षण तथा भेद :–

कथानक पात्रों की सहायता से अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है । उसमें से प्रधान है नायक या नेता । दशरूपककार ने अपने नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ दशरूपक में नेता के सामान्य गुणों का वर्णन किया है । ये गुण नायक में अवश्य विद्यमान होना चाहिये । उनका कथन है कि –

''नेता विनीतो मधुरस्तयागी दक्षः प्रियंम्वदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा ।।
बुद्धयुत्साहस्मृतिप्राज्ञकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।।'' (दशरूपक २/१–२)

'स्वाध्याय' – पु. ६० वर्ष २०२३, पृ. ७७–८७. ISSN 2250-0391

* प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, M: 7864049817, Email : sibunathbhunia@gmail.com

नायक का प्रथम गुण है विनयशीलता से विभूषित होना तथा यह प्रियदर्शन या सुन्दर आकृति वाला हो । नायक में त्यागशीलता हो तथा अपने कार्यों को त्वरित गति से सम्पादन करने की क्षमता हो । नायक को प्रियभाषी और सम्पूर्ण समाज के प्रति प्रेम होना चाहिए । नायक की वृत्तियाँ पवित्र हो और मन में निर्मलता होनी चाहिए । नायक वार्तालाप और संभाषण में निपुण हो । उसका जन्म उच्चवंश में होना चाहिए तथा मन की चंचलता आदि दोषों से रहित हो । नायक की अवस्था भी युवा होनी चाहिए । इसके साथ-साथ वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्राज्ञ, कला, स्वाभिमान आदि गुणों से समन्वित हो तथा वह शूर, दृढ़, तेजस्वी तथा शास्त्रानुकूल कार्य करने वाला धार्मिक हो । दशरूपक में नायक के चार भेद माने हैं : धीरललित, धीरशांत, धीरोदात्त, धीरोद्धत - ''भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्'' । (दशरूपक २/३)

धीरललित – ''निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।'' (दशरूपक २/३)जो निश्चिन्त हो, कलाओं में आसक्त हो, सुखी हो और कोमल हो ऐसे नायक को धीरललित कहते हैं । नायक निश्चिन्त इसलिये होता है कि इसके योग (अप्राप्त की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) का सारा भार सचिव इत्यादि के अधीन होता है । यही कारण है कि यह गीत इत्यादि कलाओं में लगा रहता है और योग में संलग्न रहता है । उसमें शृंगार की प्रधानता होती है । इसीलिए उसके सारे आचार व्यवहार और चित्तवृत्तियाँ सुकुमार होती है । अतएव उसे मृदु कहते है । रत्नावली नाटिका का नायक वत्सराज उदयन इसका उदाहरण है ।

धीरप्रशान्त – ''सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक : ।'' (दशरूपक २/४)जो सामान्य गुणों से युक्त हो इस प्रकार के द्विज इत्यादि को धीरप्रशान्त कहते हैं । जैसा पहले नायक के सामान्य गुणों के वर्णन में विनय इत्यादि गुणों को कहा गया है, वे गुण धीरप्रशान्त नायक में द्विज इत्यादि में - ब्राह्मण, मंत्री इत्यादि सभी आ जाते हैं । परन्तु वह प्रकरण का नायक नहीं हो सकता हैं । किन्तु द्विज इत्यादि ही हो सकता है क्योंकि निश्चिंतता आदि गुण अन्यत्र भी संभव होते है । किन्तु विप्र इत्यादि में शान्ति ही होती है उनमें लालित्य नहीं होता । धीरशान्त नायक भवभूति कृत मालतीमाधव में और मृच्छकटिक प्रकरण के चारुदत्त को इस कोटि में रखा जा सकता है ।

धीरोदात्तः – ''महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।।'' (दशरूपक २/५)

धीरोदात्त नायक का अन्तःकरण शोक, क्रोध इत्यादि मानसिक विकारों से अभिभूत नहीं होता है । उसका अहंकार प्रकट नहीं होता है क्योंकि नायक के अन्दर विनयशीलता की मात्रा इतनी अधिक होती है जिससे अहंकार उभरने नहीं पाता है उसके चरित्र में दृढ़ता होती है तथा वह जिस कार्य को अंगीकार कर लेता है उसको अपनी पूर्ण शक्ति से निर्वाह करता है । नागानन्द नाटक का जीमूतवाहन इसका उदाहरण है ।

धीरोद्धतः - ''दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो, मायाच्छद्मपरायणः ।
धीरोद्धस्त्वहंकारी, चलश्चण्डो विकत्थनः ।।'' (दशरूपक २/६)

जिसमें दर्प और मात्सर्य बहुत अधिक हो, जो माया छद्म में लगा हुआ हो, जो अहंकारी हो, चंचल हो, उग्र स्वभाव वाला हो, बढ़चढ़कर बाते करने वाला हो उसे धीरोद्धत कहते हैं । धीरोद्धत नायक के रूप में दुर्योधन, परशुराम तथा रावण आते हैं ।

कर्पूरमंजरी में नायक चण्डपाल-

कर्पूरमंजरी का नायक राजा चण्डपाल है । कवि ने नायक का चरित्र समग्र रूप में अङ्कित किया है उसके चरित्र में वे सभी विशेषतायें स्पष्ट रूप से मिलती हैं जो वास्तव में नाट्यशास्त्रानुसार धीरललित नायक के गुण हैं । नायक-कलाप्रेमी, निश्चिन्त स्वभाव का है । राज्य संचालन के दायित्व के प्रति कम चिंनित है तथा राज्यचिन्ता का भार केवल मंत्रियों पर ही है । राजा इस कर्तव्य से उदासीन होकर सौन्दर्य की उपासना में निमग्न है । राज्यविस्तार की आकांक्षा राजा में नहीं है और कामक्रीडा उनकी प्रमुख दिनचर्या है ।

नायक अत्यन्त सुरूप है और साक्षात् कामदेव की प्रतिमूर्ति ही है । स्त्रियाँ उन्हें देखते ही उनकी ओर आकर्षित हो जाती हैं । राजा चण्डपाल सुन्दरी नायिका को देखकर एकदम सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है इस प्रेम का पर्यवशान अन्ततगत्वा विवाहसूत्र के बंधन के रूप में होता है । नायिका के रूप राशि को देखकर उसके अनिन्द्य सौन्दर्य पर आश्चर्य प्रकट करता है तथा ''अहह अच्चरिअइ अच्चरिअं'' कहकर प्रशंसात्मक विस्मय प्रकट करता है-

''जं धोआंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालंबिदकेसपल्लबचए दोल्लंति जं बिंदुणो ।
जं एक्वं सिचअंचलं ण्णिबसिदं तं णहाणकेलिट्ठिदा
आणीदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा ।।'' (कर्पूरमञ्जरी, १/२६)

अर्थात् जिसका काजल रहित किन्तु रक्त वर्ण का नेत्र हैं, केशाग्रभाग से जिसका मुख ढका हुआ है, जिसके हाथ से पकड़े हुए केश समूहों से जल बिन्दु गिर रहे हैं तथा जिसने एक ही वस्त्र विधारण किया है उस स्नानगृह में स्थित लोकोत्तर सौन्दर्य से युक्त देवी को इस योगीश्वर ने यहाँ उपस्थित किया है । फिर राजा नायिका के वियोग में परितप्त होता है । उसे प्रकृति की सभी सुन्दर वस्तुऐं संतापदायी लगती हैं । राजा की विरहावस्था का वर्णन विदूषक के मुख से हुआ है । राजा पूर्णतया कर्पूरमंजरी में अनुरक्त है और उसके ही ध्यान में तल्लीन है-

''परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चंदणरसो ।
खदक्खारो हारो रअणिपबणा देहतबणा ।।
मुणाली बाणाली जलदि अ जलाद्दा तणुलदा ।
बरिट्ठा जं दिट्ठा कमलबदणा सा सुणअणा ।।'' (कर्पूरमञ्जरी, २/४)

तात्पर्य है कि – जब वह कमलनयनी सुन्दरी दृष्टिपथ में आयी तब से चांदनी ताप उत्पन्न करने लगी, चन्दनरस गरल के समान प्रतीत हुआ । हार कांटो पर नमक सा लगने लगा, रात के ठण्डे पवन देह को जलाने लगे । मृणाल बाणावली प्रतीत हुआ और जल से आर्द्र तनुलता भी जलने लगी ।

राजा समग्र राजकार्य से हाथ खींचकर एक ही मन्त्रोपाय के चिन्तन में व्यस्त है । उसकी सारी शक्तियाँ इसी अभीष्ट की प्राप्ति हेतु अग्रेसर हैं । राजा का साथी विदूषक और उसकी परिचारिकायें इसी ध्येय की प्राप्ति कराने को सचेष्ट हैं । दासी विचक्षणा और विदूषक ऐसी व्यवस्था करते हैं जिससे राजा झुला झुलते हुए और चरण स्पर्श से अशोक वृक्ष को कुसुमित करते हुए देख सकें । राजा इन्हीं परिस्थितियों की सहायता से अपनी योजना में सफल होता है और इस प्रकार ये प्रेमाङ्कुर पल्लवित और पुष्पित होता है ।

नायक चण्डपाल कला का भी पारखी है । मित्र विदूषक और विचक्षण के कवित्व की सराहणा तथा अन्यत्र त्रुटियों का संकेत नायक की काव्य मर्मज्ञता को प्रकट करता है । नायक की संगीत कला में भी विशेष अभिरुचि है, जिसका उदाहरण मिलता है –

''कुंतलेस्सरसुआकरप्फस्सप्फारसोक्खसिढिलीकिदसग्गो ।
पालएमि बसुहातलरज्जं चक्कबट्टिपदबीरमणिज्जें ।'' (कर्पूरमञ्जरी, ४/२२)

आचार्य श्यामवर्मा ने अपने ग्रन्थ ''आचार्य राजशेखर'' में नायक के विषय में कहा हैं – राजा चण्डपाल सुन्दरी नायिका के प्रथम दर्शन मे ही उस पर अनुरक्त हो जाता है और ''अहह अच्चरिअ अच्चरिअ'' कहकर प्रशंसात्मक विस्मय प्रकट करता है । वह कला का पारखी है । वह विनोदी एवं विलासी है । प्रारम्भ से अन्त तक हम उसे प्रमोदवन में, लताकुंज में या रत्न चतुरङ्ग में पाते हैं । नायिका के दर्शन न होने में विरह वेदना की अनुभूति करने वाला यह नायक वास्तव में शृङ्गारी है । (श्यामवर्मा, १९७०; ९८) नाट्यशास्त्रकार भरत और आचार्य धनञ्जय द्वारा वर्णित नाटिका के लक्षण में कहा है – ''प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृप ।'' (नाट्यशास्त्र–१८/५७, दश. ३/४३) इस प्रकार राजा चण्डपाल में धीरललित नायक के सभी गुण विद्यमान हैं और उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है, क्योंकि चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है । चाहे उसमें वैवाहिक हेतु हि क्यों न हो । कर्पूरमंजरी में अपने आश्रयदाता महेन्द्रपाल के प्रति अतिशय आदर के कारण राजशेखर ने चण्डपाल को सार्वभौम पद पर प्रतिष्ठित किया है ।

विद्धशालभञ्जिका में नायक विद्याधरमल्ल-

विद्धशालभञ्जिका में प्रमुख पुरुष पात्र विद्याधरमल्ल नायक हैं । कर्पूरमंजरी के नायक के ही समान वो धीरललित प्रकृति का है तथा धीरललित नायक के जो गुण होते हैं वह सब विद्याधरमल्ल में विद्यमान हैं । साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने धीरललित नायक में निश्चिंतता, शृङ्गारक्रियता तथा कलापरायणता, आदि गुणों का प्राधान्य माना है -

'निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ।' (साहित्यदर्पण ३/३४)

राजा विद्याधरमल्ल में ये सभी गुण दृष्टिगोचर होते है । राज्यारोहण के कार्यभार से प्रायः वो मुक्त है । एक सीमा तक अपने प्रजापालन रूप दायित्व से अपने को अलग रखकर केवल इन्द्रियवासना की पूर्ति में आसक्त है । उससे अपनी सारी शक्ति को विषयभोग में ही लगा रखी है । जिसकी सारी परिणति एक नहीं दो-दो विवाहों में होती है । मध्यकालीन राजाओं के अन्तःपुर के समान वहाँ पहले से कई रानियां उपस्थित है - ''अन्ते उरिकासहस्सपरिवारस्स महाराअस्स किं तीए विणा विसूरिदित्ति ?'' (विद्धशालभञ्जिका प्र.अ. पृ.-११) फिर भी राजा की अभिलाषा नित्य नूतन स्त्रीरत्न की प्राप्ति में सचेष्ट रहती है । राजा विद्याधरमल्ल ने राज्य संचालन का संपूर्ण भार अपने योग्य मंत्री भागुरायण को सौंप दिया है । ऐसी स्थिति में मंत्री भी अपने दायित्व को भुलाकर राजा के लिए अभीप्सित वस्तु को जुटाने के लिये तत्पर रहता है । मंत्री भागुरायण ही इस प्रकार का विधान सम्पादन के लिये मृगांकवली को राजा के सामने बुलाने का प्रयत्न करता है, जिससे उसके ऊपर राजा आसक्त हो सके । मंत्री भागुरायण अपने उद्देश्य में सफल होता है । राजा मृगांकवली को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है ।

राजा अत्यन्त भावुक है । वो विदूषक से कहता है कि - 'मैनें स्वप्न में एक सुन्दरी को देखकर उसे पकड़ना चाहा, किन्तु वह अपनी मोतियों की माला छोड़कर भाग गई' । राजा कलाप्रेमी है और संयोगवश जब वह अपनी चित्रशाला में अपनी प्रेयषी की खुदी हुई मूर्ति (विद्धशालभञ्जिका) देखता है तो उसके गले में मोतियों की माला डाल देता है ।

नायक राजा निरन्तर अपनी प्रेयशी को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नरत है । राजा की शृंगारिक वृत्तियाँ उस स्वप्न सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए प्रतिक्षण प्रेरितं करती रहती हैं । प्रकृति के प्रति उसका विशेष अनुराग है । वह अपना अधिकांश समय प्रमोदोद्यान में वसन्त आदि ऋतुओं की चर्चा करता हुआ, अनेक मनोरंजक क्रीडाओं में व्यतीत करता है । राजा की उत्कंठा यहाँ तक बढ़ जाती है कि राजा विदूषक के साथ अपनी प्रेयषी को उद्यान में खेलते हुए तथा एक प्रणयलेख पढ़ते हुए देखता है । इस प्रकार दोनों का अनुराग प्रगाढ़तर हो जाता है ।

यद्यपि राजा की ये चेष्टायें सुविदित हैं और रानी भी इसमें कोई प्रतिरोध करने में असफल रहती है वरन् रानी के ईर्ष्यालु स्वभाव के कारण ही प्रतिशोध की भावना स्वभाविकता राजा के मनोरथ की सिद्धि कर देता है और मृगांकवली एवं कुवलयमाला दोनों का विवाह राजा से होता है तथा राजा को चक्रवर्ती पद प्राप्त होता है ।

आचार्य श्यामवर्मा विद्धशालभञ्जिका नाटिका का राजा विद्याधरमल्ल को धीरललित प्रकृति का नायक माने हैं । उनके कथन अनुसार-दशरूपककार ने मृदु का अर्थ - श्रृंगार-प्रधान एवं सुकुमार सत्वाचार बतलाया है - ''शृंगारप्रधानत्वाच्च सुकुमारसत्वचारो मृदुरिति ललित ।'' (दशरूपक - २/३) राजा विद्याधरमल्ल अत्यधिक शृंगारी है - उसके अन्तःपुर में हजारो रानियां है तथापि स्वप्नदृष्ट्वा नायिका के लिए वह दुःखी है । वह राजा नायिका मृगांकवली के सौन्दर्य का रातदिन स्मरण करता है, किन्तु अपनी रानी को भी दुःखी नही देख सकता । वह उसे भी यथाशक्ति प्रसन्न रखने का प्रयास करता है । (श्यामवर्मा, १९७०, ९५) । नाटिका के विषय में धनञ्जय एवं विश्वनाथ का कथन है - 'अन्तःपुर में नायिका को देखने सुनने से छिपकर डरना-डरता प्रेम करता है'-विद्याधरमल्ल के विषय में वह बात विल्कुल सत्य है । इसप्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हैं कि नायक राजा विद्याधरमल्ल धीरललित प्रकृति का है और सर्वत्र नाटिका में उसकी यही प्रकृति अभिव्यंजित है ।

बालरामायण में नायक श्रीराम-

बालरामायण नाटक के नायक राम हैं । उनमें वे सभी गुण पाये जाते है जो एक धीरोदात्त नायक के होने चाहिये । साहित्यदर्पण के अनुसार-

''अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः ।।'' (साहित्यदर्पण ३/३४)

अविकत्थन अर्थात् अपनी प्रशंसा न करने वाला, क्षमायुक्त, अति गम्भीर स्वभाववाला, महासत्त्व अर्थात् हर्ष, शोकादि से अपने स्वभाव को नहीं बदलने वाला, स्थिर प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व रखने वाला और दृढ़व्रत अपनी बात का पक्का पुरुष धीरोदात्त कहलाता है । राम में ये सभी गुण समुज्ज्वल है । आत्मश्लाघा रूप गुण से राम सदा असंपृक्त हैं । जब तक वह अपनी की हुई प्रतिज्ञा या घोषित कार्य को सम्पन्न नहीं कर लेते हैं तब तक उनकी कोई बढाई करें ये उन्हें सह्य नहीं है । वह चाहते है कि उनका पराक्रम स्वयं मुखर हो । जब वह अपनी दुस्साध्य प्रतिज्ञा को पुरी करके दिखा दें तभी उसका उल्लेख होना चाहिये । ये स्पृहणीय गुण है और श्रेष्ठपुरुषों ने इसका परित्याग किया है । धर्मशास्त्रों ने भी इसका अनुमोदन किया है । ''सम्मानात् ब्रह्मणो नित्यं उद्विजेद् विशदिव'' । (मनुस्मृति) राम भी रावण वध तक अपनी स्तुति (प्रशंसा) को प्रतिबंधित कर

देते हैं । -''प्रतिहारः- ननु रामदेवेन निषिद्धमात्मोपवर्णनमादशरड़स्वर्गारोहणश्रुतेरादशकण्ठबन्धम् ।'' (बालरामायण स.अ., पृ.२१८) उनमें परस्पर विरोधी गुणों का भी दर्शन होता है । एक ओर वे अतिशय विनम्र हैं - वे वयोवृद्ध परशुराम के सम्मुख भारतीय शिष्टाचार के रूप में अपना शिर उनके आगे झुका देते हैं -

''स्वायत्तेन कुठारेण स्वाधीने राममूर्द्धनि
यथेष्टं चेष्टतामर्यस्त्वदाज्ञां को निषेधति ।।'' (बालरामायण ४/६२)

अर्थात् कुठार आपके अधीन है और राम का शिर भी आपके अधीन है अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा व्यवहार करिये । आपकी आज्ञा का निषेध कौन करता है । ये विनम्रता राम की भीरुता नही है प्रत्युत शालीनता है । पुनः जब परशुराम उन्हें युद्ध करने के लिए आह्वान करते है तो वह युद्ध के लिए भी तत्पर हो जाते हैं यही उनके चरित्र की दृढ़ता है जो सभी स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है । सेतुबन्ध के अवसर पर राम समुद्र से मार्ग की याचना विनम्रता पूर्वक करते है परन्तु आज्ञा का परिपालन न होने पर दण्ड देने को भी उद्यत हो जाते हैं । वह राक्षसों का नियमन करने के लिये कृतसंकल्प हैं । अन्याय का प्रतिकार करना उनके जीवन का चरम लक्ष्य हैं । वह आजीवन इसी नीति पर चले-'राक्षसरक्षौषधं रामभद्रमानेतुं' । अपने प्रबल शत्रु रावण के प्रति भी विनम्र ही रहे और युद्ध प्रारंभ होने पर रावण से यही निवेदन किया कि वह उनकी धर्मपत्नी सीता को वापस लौटा दे ।-

''भो लंकेश्वर ! दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते ।
कोऽयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचिद्गतम् ।।'' (बालरामायण ९/१९)

तात्पर्य है कि - हे राम ! सीता को दीजिये । राम स्वयं याचना कर हरे हैं । आपका यह कौन सा मति-विभ्रम है । नीति का स्मरण कीजिये । अब भी कुछ गया नहीं है । साथ ही राम नीतिवचनों के पालन की सार्थकता भी रावण को हृदयंगम करा देना चाहते हैं कि जो मनुष्य नीति पर नहीं चलता विधाता उसका अवश्य पराभव करता है । मेरे बाण भी आततायी को दण्ड देने के लिये तूणीर से बाहर निकलने के लिये व्यग्र हैं ।-

''नैवं चेत् खरदूषणत्रिशिरसां कण्ठसृजा पंकिला ।
पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्यबन्धन्धूकृतः ।।'' (बालरमयण, भरतवाक्य)

यही राम के चरित्र का वैशिष्ट्य है । इन अति उत्तम गुणों का समावेश हमें उनके चरित्र में दिखाई देता है वह महान पितृभक्त है । वाल्मीकिरामायण में तो पितृचरणों में अनुरक्त हैं ।-

''अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ।
भक्ष्येयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।।'' (रामायण, अ. का. २८/२८-२९)

बालरामायण में भी उनकी पितृभक्ति अनुमेय है । वह दशरथ का वेश रखने वाले यक्ष के साथ चल देते हैं । आचार्य श्यामवर्मा ने अपने ग्रन्थ ''आचार्य राजशेखर'' में नायक के विषय में कहा हैं - बालरामायण में श्रीरामचन्द्र क्षमाशील, अत्यन्त गम्भीर, दुख सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभिमानी किन्तु विनीत हैं । राम में समस्त गुणों की विद्यमानता देखकर राजशेखर ने उनके नायकत्त्व एवं आदर्श चरित्र को पुष्ट किया है किन्तु राम का परिचय नाटक में अत्यन्त विलम्ब से दिया गया है । दर्शक उनके गुणों का श्रवण प्रथम अंक के प्रारंभ से करते हैं किन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन चतुर्थ अङ्क मे ही हो पाता है । (श्यामवर्म, १९७०; ८९) तथापि राम में सभी गुणों की उपलब्धि नाटक में होने के कारण धीरोदात्त नायक श्रेणी में आते हैं ।

बालभारत में नायक युधिष्ठिर-

बालभारत नाटक की कथा का आधार महाभारत है । इस नाटक के नायक युधिष्ठिर हैं । इसमें केवल दो ही अंक उपलब्ध होने से नायक युधिष्ठिर का चरित्र समग्ररूप में अंकित नहीं हो सका है । प्रारंभिक जीवन के ही कुछ अंशो का ही दिग्दर्शन नाटक में कराया गया है । पाण्डव द्रौपदी स्वयंवर में ब्राह्मण वेश में उपस्थित होते हैं । जहाँ राधावेध (मत्स्य विशेष पर लक्ष्य संधान करना) करने पर द्रौपदी से विवाह की शर्त रखी गई हैं, युधिष्ठिर सभामण्डप में अपने भाईयों के साथ उपस्थित हैं, उनका हृदय उत्कण्ठित है । परन्तु किसी प्रकार का चांचल्य क्षोभ नहीं है । वे पूर्ण आश्वस्त होकर विनम्रता से कहते हैं कि - ''युधिष्ठिरः - वत्स सोदर ! वृकोदर ! परपुरंजय ! धनंजय ! मण्डितपाण्डवकुल नकुल ! द्विषद्दुः सह ! सहदेव ! इह हि महाराज समाजे न जाने कमवलम्बिष्यते राधावेधवैजयन्ती ।'' (बालभारत, प्र.अ., पृ.१३)

उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली है और चरित्र में शालीनता है । सभी उनके आज्ञानुवर्ती हैं और अपने बड़े भाई युधिष्ठिर पर स्नेह एवं श्रद्धा करते हैं । भीम उनके पराक्रम की प्रशंसा करते हैं 'आर्यो वेत्ति निजां न विक्रमकलां त्वं विश्वरक्षामणिः' । (बालभारत, १/२३) यद्यपि युधिष्ठिर धर्मपरायण है - ''युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः'' (बालभारत, २/९४) तथापि द्यूतक्रीड़ा में उनकी प्रवृत्ति हो जाती है - ''राजसूयक्रवोर्यज्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः आहुतो न निवर्तेत द्यूतादपि रणादपि'' । (बालभारत, २/९६) द्यूतक्रीड़ा में आसक्त होना उनके चरित्र की दुर्बलता है और एक प्रकार का कलंक है जिससे उनका अवमान एवं तिरस्कार होता है और वे धन और सम्पत्ति से भी हाथ धो बैठते हैं और उन्हें निर्वासन आदि अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता हैं-

"वर्षाणि द्वादशारण्ये सह तिष्ठतु निष्ठया ।
अज्ञातचर्चया वर्षमावयोर्यो विजीयते ।।" (बालभारत, २/१२५)

द्यूतक्रीड़ा में प्रवृत होने पर वे अपनी धर्मपरायण पत्नी द्रौपदी को भी दाव पर लगा देता हैं उसे भी हार जाते हैं । उन्हीं के सामने सभा में द्रौपदी का भी अपमान किया गया है-

"पंचानां या कलत्रं द्रुपदमखविधौ चाद्भूतं जन्म यस्याः
पूतायाः राजसूयावभृथपरिगमे मन्त्रपूतैः पयोभिः ।
तामेतां द्यूतदासीं कुरूपतिनियमं मूर्ध्नि कृत्वा मयाऽन्तः
वेशेष्वाकृष्यमाणां श्रृणुत नृपतयो यस्य शक्तिः स पातु ।।" (बालभारत, २/१२६)

इसप्रकार हम देखते हैं कि युधिष्ठिर के कार्यकलापों और उपलब्ध सामग्री के आधार पर युधिष्ठिर का चरित्र धीरप्रशान्त नायक का है ।

उपसंहार :-

इसप्रकार से विचार करने के बाद देखते हैं कि कर्पूरमंजरी में केन्द्रबिन्दु चरित्रवान राजा चण्डपाल है । उसके शासन के अधीन उच्चवर्ग के अमात्य, महारानी, विदूषक तथा परिचारिकायें सभी राजा को प्रसन्न करने के लिए कृतसंकल्प दिखाई देते हैं । वास्तव में कर्पूरमञ्जरी शृंगार अथवा प्रणय की नाटिका है, जिसमें राजा की विलासी प्रवृत्ति सर्वोपरि है । महाकवि भाष ने भी "स्वप्नवासवदत्तम्" में "वत्सराज उदयन" का चरित्र उसी प्रकार का चित्रित किया है । जो राजा चण्डपाल के समकक्ष रख सकते हैं परन्तु चण्डपाल के चरित्र में कामुकता तथा तांत्रिकों की धर्मसाधना पर विश्वास दिखाई देता है । इसके फलस्वरूप देखते हैं "वाममार्ग" की रहस्यमयी चेष्टाओं के रूप में कर्पूरमंजरी का समागम राजा के समक्ष होता है और कर्पूरमंजरी राजा की अङ्कातिशायिनी बनती है । वाममार्गी तांत्रिको की धर्मसाधना का यही मूर्तरूप है । जिसके आधार पर ऐसे तांत्रिक राजकुल तथा अन्तःपुर में विश्वासपात्र बन जाते थे । सर्वत्र नाटिका में राजा का एक ही रूप दृष्टिगोचर होता है । उसका कलाप्रेम भी अपनी प्रेयषियों की आराधना में अभिव्यक्त होता है । उसकी धीरललित प्रकृति मनोहारी है । अन्तःपुर में वस्तुतः राजा का ही शासन है और राणी जो भी व्यवधान अभिलाषा पूर्ति में उपस्थित करती हैं उनको वह बड़े चातुर्य के साथ दूर कर देता है । राजा को इन विवाह संबंधों के द्वारा चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है । उससे राजा की गौरव वृद्धि होती है ।

विद्धशालभञ्जिका में नायक विद्याधरमल्ल भी धीरललित नायक में आते है । क्योंकि वह अपने राज्यपाट मन्त्री भागुरायण को सौंप के निश्चिन्त रहते है तथा कामवासना में डुबे रहते हैं । मन्त्री भागुरायण राजा की कामवासना देखकर अपनी बुद्धि से कुशलतापूर्वक राजा के समक्ष

मृगांकवली को उपस्थित करता है तथा मृगांकवली अपना प्रेम प्रकट करता है और राजा भी उसमें अनुरक्त हो जाते हैं । इस नाटिका में भी जैसा कर्पूरमंजरी मैं है राजमहिषी राजा की प्रणय लीलाओं में गतिरोध उत्पन्न करने के लिये अंकुश लगाने में प्रयत्नरत हैं परन्तु रानी अपने कार्य मे सफल नहीं होती है । राजा अपने कौशल से मृगांकवली को पाने में समर्थ हो जाता हैं तथा एक अन्य नायिका कुवलयमाला से पाणिग्रहण करने में समर्थ होते हैं । अपनी सारी चेष्टाओं को प्रणय लीलाओं में संलग्न कर देते हैं प्रणय लीलायें ही उनके जीवन का सर्वस्व है । उनके जीवन की यही चरम उपलब्धि है जिसकी फलश्रुति महाकवि राजशेखर ने विद्याधरमल्ल की धीरललित नायक के रूपमें उपस्थापित किया हैं ।

बालरामायण में राम के उदात्त गुणों का वर्णन मिलता है । भारतीय इतिहास में जो सम्मान उन्होंने सामाजिक मर्यादा का पालन करते हुए अर्जित किया है वह अनुपम है । राम का चरित्र देवकोटि का है । अपनी सहज विनम्रता, क्षमाशीलता, परदुःखकातरता और दुष्टदमन की नीति आदि गुणों से अन्य सभी पात्रों की तुलना में वह देदीप्यमान भास्कर के समान है और अपने चरित्र की धीरोदात्त गुणो से वे महान हैं । उनकी जीवन की प्रतिज्ञा राक्षसों का विनाश करना और साधु सन्तों-ऋषियों एवं महात्माओं की रक्षा करना । जिसका उन्होनें विकट परिस्थितियों में रहते हुए निर्वाह किया । परशुराम के अहंकार को बड़ी शालीनता के साथ उन्होंने विखंडित किया तथा उनके सामने नतमस्तक भी हुये । इसका कारण उनसे भयभीत होकर नहीं अपितु उनके गौरव और भारतीय शिष्टाचार का उल्लंघन न होने देना । इस प्रकार की विशाल हृदयता और दूरदर्शिता अन्य चरित्रों में नहीं है । आत्मश्लाघा से सदैव अपने को पराङ्गमुख रखा जब तक कार्यसिद्धि नही हो जाती । इसप्रकार अपने समुज्ज्वल चरित्र और स्पृहणीय गुणों के कारण राम नाटक के पात्रो में शिरोमणि है और राजशेखर इन्हीं गुणों के कारण बालरामायण नाटक में नायक राम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है ।

''प्रचण्डपाण्डव'' में युधिष्ठिर की प्रधानता स्पष्ट है । वे पाण्डवों के अग्रज हैं और इसीलिए उनके छोटे भाई उनको गुरुतुल्य आदर देते हैं, जिसके वे पात्र भी हैं । उनमें आभिजात्य गुण विद्यमान है । नाटक में उन्हें ब्राह्मण के वेश में राजा विराट की स्वयंवर सभा में उपस्थित पाते हैं तथा अपने भाई अर्जुन के कौशल एवं पराक्रम से विजयी होते हैं । परन्तु तदनन्तरं उनके जीवन का वो अध्याय प्रारंभ होता है जिसमें भाग्यदेवी उनसे रूठ जाती है । द्यूतक्रीड़ा का व्यसन उन्हें अपमान और विपत्तियों के कगार पर खड़ा कर देता है जिसमें पड़कर जीवन के सुखों से वंचित हो जाते हैं दुर्योधन के द्वारा किया हुआ द्रौपदी का अपमान इनमें प्रतिशोध की भावना जगा देता है और यही प्रतिशोध की चिंगारी धीरे-धीरे भीषण रणज्वाला में परिणत हो जाती है तथा समग्र कौरवकुल अग्निसात् हो जाता है । युधिष्ठिर के निर्मल चरित्र में द्यूतक्रीड़ा का व्यसन एक

अरोचक स्थान है । किन्तु इस नाटक में केवल दो ही अंक उपलब्ध होने के कारण उनके अन्य चारित्रिक गुण दोषों के महत्त्व और स्थिति की समीक्षा करना सुलभ नहीं है । इस प्रकार युधिष्ठिर का चरित्र गुणदोषों से मण्डित है और भारतीय इतिहास के नायक के रूप में उन्हें अन्ततोगत्वा विजय मिली उसका श्रेय उनके चारित्रिक गुणों में निहित है ।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

१. दशरूपक – सुधाकर मालवीय (सम्पादक), द्वितीय प्रकाश, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २०१०

२. श्री रामकुमार आचार्य (सम्पादक), कर्पूरमंजरी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९५५

३. वाबुलाल शुक्ल शास्त्री (सम्पादक), विद्धशालभञ्जिका, चौखम्बा ओरियेन्टालिया, वाराणसी, १९७६

४. जीवानन्द विद्यासागर (अनुवादक), बालभारत, बङ्गीय साहित्य परिषद्, कलिकाता, १८८८

५. साहित्यदर्पण – श्रीशालग्रामशास्त्री विद्यावाचस्पति (व्याख्याकार), भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, २००४

६. राकेश शास्त्री (व्याख्याकार), मनुसंहिता, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २००६

७. श्याम वर्मा – आचार्य राजशेखर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७१

શ્રી સયાજી સાહિત્યમાળા, પુષ્પ ૩૮૧

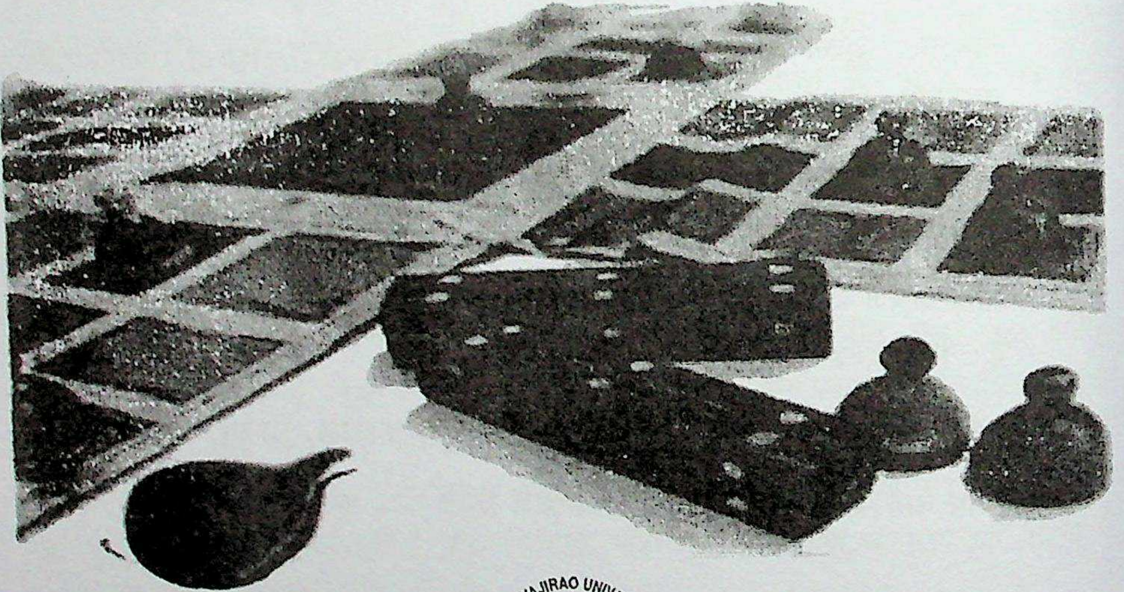
મહાભારતનાં ગૂઢ રહસ્યો

મૂળલેખક

ગ. વા. કવીશ્વર

અનુવાદ

વિજયા લેલે





પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર

મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય

રાજમહેલ દરવાજા સામે, રાજમહેલ રોડ, વડોદરા-૩૯૦ ૦૦૧

૨૦૧૬

Email : director-oriental@msubaroda.ac.in

Phone No. 0265-2425121

વૈદિક અસુર નમુચિનું પુરાણોમાં ઉપબૃંહણ

મનસુખ કે. મોલિયા*

વૈદિક સાહિત્યમાં દેવો અને અસુરો વચ્ચેના સંગ્રામનાં પુષ્કળ વર્ણનો છે, જેમાં દેવોના અધિપતિ ઇન્દ્ર અને વિવિધ અસુરો વચ્ચેના યુદ્ધની કથાઓ મુખ્ય છે. ઇન્દ્રના શત્રુઓમાં વૃત્ર સૌથી મુખ્ય છે. આ સિવાય પણ શમ્બર, અહિ, અશ્ન, પિપ્રુ, નમુચિ, રુધિક્રા વગેરે અસુરો સાથે યુદ્ધ કરીને ઇન્દ્રે તેમને હણ્યા હતા. પ્રસ્તુત લેખમાં વૈદિક સાહિત્યમાં પ્રાપ્ત થતી નમુચિકથાનું પુરાણસાહિત્યમાં થયેલ ઉપબૃંહણનું અધ્યયન કરવાનો પ્રયત્ન છે. અત્યન્ત રસપ્રદ વાત છે કે પુરાણ સાહિત્યમાં હિરણ્યકશિપુની કથામાં પ્રાપ્ત થતાં તેના અવધ્યત્વ અંગેનાં લોકપ્રિય તત્ત્વો નમુચિની કથામાંથી ઊતરી આવ્યાં છે. હિરણ્યકશિપુને બ્રહ્માનું વરદાન હતું કે લાકડા કે લોખંડથી, અસ્ત્ર કે શસ્ત્રથી દિવસે કે રાતે, કોઈ મનુષ્ય કે પ્રાણી તેને મારી શકે નહિ. બ્રહ્માએ હિરણ્યકશિપુને આપેલા આ વરદાનને લીધે જ તેને હણવા વિષ્ણુએ નરસિંહ અવતાર ધારણ કર્યો હતો. વિષ્ણુના દશ અવતારોમાં નરસિંહઅવતાર ચોથા ક્રમે છે. વૈદિક નમુચિકથામાં રહેલું અવધ્યત્વ અંગેનું રોચક તત્ત્વ હિરણ્યકશિપુ સાથે જોડાયા પહેલાં વૃત્રની સાથે પણ જોડાયું છે, જો કે વૃત્રકથામાં તેનો વિનિયોગ બહુ સફળ રહ્યો નથી. તેનું મુખ્ય કારણ એ છે કે વૈદિક સાહિત્યમાં વૃત્રનું કથાનક અનેક સ્થળે મળતું હોઈ સુપ્રસિદ્ધ છે. તેના પાત્રની રેખાઓ બહુ જ સ્પષ્ટ રીતે આલેખિત થયેલી છે. વૈદિક સાહિત્યમાં ક્યાંય વૃત્રને પ્રાપ્ત થયેલ અવધ્યત્વ અંગેના નિર્દેશો મળતા નથી. તેથી નમુચિકથાના અવધ્યત્વના મૂળ તત્ત્વનો વૃત્રકથામાં વિનિયોગ બહુ સ્વીકાર્ય રહ્યો ન હોઈ મહાભારત (ઉદ્યોગપર્વ) અને દેવીભાગવત સિવાય અન્યત્ર ક્યાંય દૃષ્ટિગોચર થતો નથી. પણ નમુચિકથામાં રહેલું અવધ્યત્વ અંગેનું આ વિશિષ્ટ તત્ત્વ હિરણ્યકશિપુની કથાનું પ્રાણભૂત તત્ત્વ બની રહ્યું છે.

(૧) વૈદિક સંહિતામાં નમુચિ

ઋગ્વેદ : ઋગ્વેદમાં કુલ નવ ઋચાઓમાં નમુચિનો નામોલ્લેખ થયો છે અને બે ઋચાઓમાં તેનો નામોલ્લેખ ન હોવા છતાં પૂર્વાપર સંદર્ભથી તે નમુચિને જ લાગુ પડતી હોઈ કુલ અગિયાર ઋચાઓમાં તેનું નિરૂપણ થયું છે એમ કહી શકાય.[1] ઋગ્વેદની આ અગિયાર ઋચાઓને આધારે નમુચિ અંગેની વિગતો આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે.

'સ્વાધ્યાય' – પુ. ૬૦, વર્ષ ૨૦૨૩, પૃ. ૮૯–૧૧૦. ISSN 2250-0391

* સંસ્કૃત ભવન, સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ, M: 9687692933, Email : mansukh_moliya@yahoo.com

૧ ઋગ્વેદ, ૧.૫૩.૭, ૨.૧૪.૫, ૫.૩૦.૭-૮, ૬.૨૦.૬, ૭.૧૯.૫, ૮.૧૪.૧૩, ૧૦.૭૩.૭, ૧૦.૧૩૧.૪ (આ ઉપરાન્ત ૫.૩૦.૯ અને ૧૦.૧૩૧.૫માં નમુચિનો નામનિર્દેશ નથી પણ આગળની ઋચાઓને અનુસરીને તે નમુચિને જ લાગુ પડે છે. ૫.૩૦.૯ પરના ભાષ્યમાં સાયણાચાર્યે નમુચિનો નામોલ્લેખ પણ કર્યો છે.)

- નમુચિને માટે દાસ,[૨] માયિન્[૩] અને મખસ્યુ[૪] વિશેષણો પ્રયોજાયાં છે.
- ઇન્દ્રે અન્ય શત્રુઓની જેમ નમુચિનો પણ વધ કર્યો હતો.[૫]
- તેણે નમુચિને માયારહિત કરીને મનુ માટે દેવોની મધ્યમાં લઈ જનાર માર્ગની રચના કરી હતી.[૬]
- ઇન્દ્રે નમુચિના મસ્તકનું મંથન કર્યું હતું અને નમી સાપ્યનું રક્ષણ કરીને તેને અવિનાશી પશુ વગેરેનું ધન અને અન્ન આપીને સમૃદ્ધ કર્યા હતા.[૭]
- નમુચિ પાસે સ્ત્રીઓની સેના હતી. ઇન્દ્રે તેની સેનામાં રહેલી બે સ્ત્રીઓને પકડી લીધી હતી અને પોતાના ઘરમાં રાખી હતી. પછી તેણે નમુચિને યુદ્ધ માટે પડકાર ફેંક્યો હતો.[૮]
- ઇન્દ્રે પાણીના ફીણથી નમુચિનું મસ્તક કાપ્યું હતું.[૯]
- પછીથી અશ્વિન દેવતાઓ અને સરસ્વતીએ ઇન્દ્રને સ્વસ્થ કર્યો હતો. તેમણે તેનું સારી રીતે રક્ષણ કર્યું હોઈ ઇન્દ્રને 'સુત્રામા' કહેવામાં આવ્યા છે.[૧૦]

ઋગ્વેદમાં નમુચિ વિષયક ઉપર્યુક્ત નિર્દેશો પૈકી ''ઇન્દ્રે પાણીના ફીણથી નમુચિનું માથું કાપી નાખ્યું હતું''- એ એક માત્ર નિર્દેશને વિષય તરીકે લઈને આ લેખ તૈયાર કર્યો છે. ઋગ્વેદમાં નીચેના શબ્દોમાં આ વાત કહેવામાં આવી છે.

अपां फेनैन नमुंचेः शिरं इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजंयः स्पृधंः ॥ ઋગ્વેદ, ૮.૧૪.૧૩.

ઋગ્વેદ (સાયણભાષ્યસહિત), ખંડ ૧ થી ૪, વૈદિક સંશોધન મંડળ, પૂના, ઈ.સ. ૧૯૩૩, ૧૯૩૬, ૧૯૪૧ અને ૧૯૪૬

૨ ઋગ્વેદ, ૧૦.૭૩.૭, ૫.૩૦.૭-૮, ૬.૨૦.૬

૩ ઋગ્વેદ, ૧.૫૩.૭

૪ ઋગ્વેદ, ૧૦.૭૩.૭

૫ ઋગ્વેદ, ૨.૧૪.૫

૬ ઋગ્વેદ, ૧૦.૭૩.૭

૭ ઋગ્વેદ, ૬.૨૦.૬

૮ ઋગ્વેદ, ૫.૩૦.૯

૯ ઋગ્વેદ, ૮.૧૪.૧૩

૧૦ ઋગ્વેદ, ૧૦.૧૩૧.૪-૫

(અનુવાદ : હે ઇન્દ્ર, તમે પાણીના ફીણથી નમુચિનું માથું કાપી નાખ્યું, જ્યારે તમે સઘળી શત્રુસેનાને હરાવી હતી.[૧૧])

સામાન્ય રીતે ઇન્દ્ર વજ્રથી વૃત્ર વગેરે અસુરોને હણે છે. પણ નમુચિના વધ અંગે અહીં ભિન્નતા જોવા મળે છે. ઇન્દ્રે પાણીના ફીણથી નમુચિનું મસ્તક કાપ્યું હતું. આ મન્ત્રમાં પ્રાપ્ત થતો શબ્દપ્રયોગ 'अपां फेनेन' નમુચિ કથાનું પ્રાણતત્ત્વ કહી શકાય એવો છે. અહીં 'કાપી નાખ્યું' એ અર્થને દર્શાવવા 'उदवर्तयः' ક્રિયાપદ વપરાયું છે. સાયણાચાર્ય આ મન્ત્રની સરળ સમજૂતી આ પ્રમાણે આપે છે: ''હે ઇન્દ્ર, તમે વજ્ર બની ગયેલા પાણીના ફીણથી નમુચિના શરીરમાંથી ઉપર ઉઠેલા તેના માથાને કાપી નાખ્યું હતું, જ્યારે તમે તમારી સાથે સ્પર્ધા કરતી સઘળી આસુરી સેનાઓને જીતી લીધી હતી.''[૧૨] આ સમજૂતી પૂર્વે તેમણે એક કથા નોંધી છે, જે આ પ્રમાણે છે : ''ઇન્દ્રે બધા અસુરોને હરાવ્યા હતા. પરન્તુ તે નમુચિને હરાવી શક્યો ન હતો. નમુચિ સાથે યુદ્ધ કરતા ઇન્દ્રને નમુચિએ પકડી લીધો હતો. પછી તેણે ઇન્દ્ર સાથે એક શરત કરીને તેને છોડ્યો હતો. તે શરત આ પ્રમાણે હતી : ''જો તું મને રાતે કે દિવસે, સૂકા કે ભીના આયુધથી હણે નહિ તો હું તને મુક્ત કરું.'' નમુચિની શરત સ્વીકારીને ઇન્દ્ર મુક્ત થયો. પછી તેણે દિવસ અને રાત્રિના સન્ધિકાળે સૂકા કે ભીના નહિ એવા વિલક્ષણ ફીણથી તેનું મસ્તક છેદી નાખ્યું.''[૧૩]

સાયણાચાર્યે નોંધેલી ઉપર્યુક્ત કથા નમુચિને પાણીથી ફીણથી હણવાના ઇન્દ્રના કૃત્યના કારણને સ્પષ્ટ કરે છે. નમુચિ સાથે ઇન્દ્રે કરેલી શરતને લીધે તેને પાણીના ફીણથી હણવામાં આવ્યો હતો. આ શરતનો ઉલ્લેખ ઋગ્વેદમાં ક્યાંય સાંપડતો નથી. અત્યન્ત મહત્ત્વપૂર્ણ વાત એ છે કે ઋગ્વેદનો ઉપર્યુક્ત મન્ત્ર બાકીના ત્રણેય વેદમાં પણ મળે છે.[૧૪]

---

૧૧ English Translation : "With waters' foam thou torest off, Indra, the head of Namuci, Subduing all contending hosts."

The Hymns of the Rigveda, Vol III, translated by Ralph T. H. Griffith, E. J. Lezarus and Co., Benares, A.D. 1891

૧૨ हे इन्द्र अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचे असुरस्य शिरः उदवर्तयः शरीरादुद्गतमवर्तयः । अच्छैत्सीरित्यर्थः । कदेति चेत् । यत् यदा विश्वा सर्वाः स्पृधः स्पर्धमाना आसुरीः सेनाः अजय जितवानसि इन्द्रो वृत्रं हत्वासुरान्........॥ ઋગ્વેદ, ખંડ ૩, ઉપર્યુક્ત, સાયણભાષ્ય, પૃ. ૬૧૮

૧૩ पुरा किलेन्द्रोऽसुराञ्जित्वा नमुचिमसुरं ग्रहीतुं न शशाक । स च युध्यमानस्तेनासुरेण जगृहे । स च गृहीतमिन्द्रमेवमवोचत् । त्वां विसृजामि रात्रावह्नि च शुष्केणार्द्रेण चायुधेन यदि मां मा हिंसीरिति । स इन्द्रस्तेन विसृष्टः सन्नहोरात्रयोः सन्धौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन फेनेन तस्य शिरश्चिच्छेद । अयमर्थोऽस्यां प्रतिपाद्यते । એજન

૧૪ • શુક્લ યજુર્વેદ સંહિતા (શ્રીમદ્ વાજસનેયિ માધ્યન્દિન) (ઉવટાચાર્ય અને મહીધરાચાર્યના ભાષ્ય સહિત), વાસુદેવ લક્ષ્મણ પણશીકર, પ્રકાશક : પાંડુરંગ જાવજી, નિર્ણયસાગર પ્રેસ, મુંબઈ, ઈ.સ. ૧૯૨૯, મન્ત્ર ક્રમાંક ૧૯.૭૧

શુક્લ યજુર્વેદ : ઋગ્વેદનો ઉપર્યુક્ત મન્ત્ર શુક્લ યજુર્વેદ અધ્યાય ૧૯માં પ્રાપ્ત થાય છે. તેના પરના ઉવટ અને મહીધરના ભાષ્યમાં ઇન્દ્ર અને નમુચિ વચ્ચેની શરતનો ઉલ્લેખ મળતો નથી.[૧૫] શુક્લ યજુર્વેદમાં અન્યત્ર નમુચિને લગતા નિર્દેશો મળે છે પણ પાણીના ફીણથી તેના વધની કથાને સ્પષ્ટ કરે તેવો કોઈ સંકેત તેમાં મળતો નથી.

તૈત્તિરીયસંહિતા : કૃષ્ણયજુર્વેદની તૈત્તિરીય સંહિતામાં 'રાજસૂય પ્રકરણ'માં નમુચિનો ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત થાય છે.[૧૬] પણ અહીં પાણીના ફીણથી તેના વધનો સંકેત જોવા મળતો નથી.

મૈત્રાયણીસંહિતા : કૃષ્ણ યજુર્વેદની મૈત્રાયણી સંહિતામાં નમુચિ કથામાં વધારાનાં તત્ત્વો દૃષ્ટિગોચર થતાં હોઈ તેનું મહત્ત્વ વિશેષ છે.[૧૭] અહીં કાણ્ડ ૪, પ્રપાઠક ૩, અનુવાક ૪ માં ઇન્દ્ર અને નમુચિ વચ્ચેની શરતનો પ્રથમ વખત ઉલ્લેખ મળે છે. ઋગ્વેદમાં પાણીના ફીણથી નમુચિનો વધ કર્યાનો સંક્ષિપ્ત નિર્દેશ મળ્યો હતો. અહીં આ કથામાં પાણીના ફીણનો ઉલ્લેખ પ્રથમ વખત દૃષ્ટિગોચર થાય છે.

इन्द्रो वै नमुचिं नालभत, स रश्मीन् कुलायं कृत्वान्वारोहदमुमादित्यं, तं वा अन्वमन्त्रयत, सखाया असावेति, सोऽब्रवीन्नाहं हनिष्यामीति, सोऽब्रवीत, सन्धा ते सन्दधै यथा त्वा न दिवा हनानि न नक्तं न शुष्केण नार्द्रेणेति, तस्य वा उपोदये सूर्यस्य नीहारं, सन्तत्यापां फेनेन शिरोऽछिनत्, तद्वा एनमन्ववर्तत, मित्रद्रुगसीति, पाप्मा वै नमुचेः शिरः, पाप्मा वा एनं तदन्ववर्तत, पाप्मानं वै स तेनापहत ॥ મૈત્રાયણી સંહિતા, ૪.૩.૪ (પૃ. ૩૫૪-૫૫)

• सामवेद का सुबोध भाष्य, डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, ई.स. १९८५, मन्त्र क्रमांक : १.२.२.८, पृ. ७३

• અથર્વવેદ (ભાગ ૪), સં. શંકર પાંડુરંગ પંડિત, નિર્ણયસાગર પ્રેસ, મુંબઈ, ઈ.સ. ૧૮૯૮, મન્ત્ર ક્રમાંક : ૨૦.૨૯.૩

૧૫ • अथेन्द्रो मन्त्रः सोमो राजेत्यस्य निदानभूतः पठ्यते । अपां फेनेन । तृतीयपादप्रभृतिव्याख्यानं यच्छब्दयोगात् । विश्वाः सर्वाः । यत् यदा अजयः स्पृधः सङ्ग्रामान् । अथ तदा अपां फेनेन फेनपुञ्जेन नमुचेः असुरस्य शिरः हे इन्द्र त्वमुदवर्तयः उद्वर्तितवानसि । उत्पूर्वो वृतिः छेदने वर्तते ॥ શુક્લ યજુર્વેદ, ઉપર્યુક્ત, મન્ત્રાંક : ૧૯.૪૧ પરનું ઉવટભાષ્ય, પૃ. ૩૭૮

• इन्द्रो गायत्री अग्रिमानुवाकनिदानभूता । हे इन्द्र, यत् यदा त्वं विश्वाः स्पृधः सर्वान् सङ्ग्रामानजयो जितवानसि तदा अपां फेनेन जलडीण्डीरेण नमुचेरसुरस्य शिरः उदवर्तयः छिन्नवानसि । उत्पूर्वो वृति छेदार्थः ॥ શુક્લ યજુર્વેદ, ઉપર્યુક્ત, મહીધરભાષ્ય, પૃ. ૩૭૮

૧૬ निरस्तं नमुचेः शिरः ॥ कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता (तृतीय भाग), आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि ग्रन्थांक ४२, काशीनाथ शास्त्री अगाशे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूणे, ई.स. १९४७, वाक्यांश : १.८.१४.१, पृ. ९१८

૧૭ मैत्रायणीसंहिता, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, औन्धनगर, सतारा, महाराष्ट्र, ई.स. १९४२

મૈત્રાયણી સંહિતામાં નમુચિના વધ સાથે નીચેની બાબતો પ્રથમ વખત જોવા મળે છે. જેમ કે,

(૧) ઇન્દ્ર નમુચિને શોધી શક્યો ન હતો.

(૨) તે કિરણોને પોતાનું સ્થાન બનાવીને રહ્યો હતો.

(૩) ઇન્દ્રે નમુચિ સાથે શરત કરી હતી કે તેને દિવસે કે રાત્રે ન મારવો, ભીનાથી કે સૂકાથી પણ મારવો નહિ.

(૪) ઇન્દ્રે સૂર્યોદય પહેલાના સમયે પાણીના ફીણથી તેનું માથું કાપી નાખ્યું હતું.

(૫) કપાયેલું માથું ઇન્દ્રની પાછળ પડ્યું હતું અને ઇન્દ્રને મિત્રદ્રોહી કહ્યો હતો.

(૬) નમુચિનું માથું પાપ છે. તે ઇન્દ્રની પાછળ ફરતું હતું.

મૈત્રાયણી સંહિતામાં મળતું આ કથાનક પરવર્તી વૈદિક અને લૌકિક સાહિત્યનું આધારસ્રોત બની રહ્યું છે. અત્યન્ત સંક્ષિપ્ત આ કથાનકમાં નમુચિ અને ઇન્દ્રના સંઘર્ષમાં ઉપર દર્શાવ્યા પ્રમાણે કેટલાક નવાં જ તત્ત્વો સામેલ થયાં છે.

(૨) બ્રાહ્મણ સાહિત્યમાં નમુચિ

તૈત્તિરીયબ્રાહ્મણ : તૈત્તિરીયબ્રાહ્મણમાં એક કરતાં વધુ વખત નમુચિનો ઉલ્લેખ સાંપડે છે.[૧૮] પ્રસ્તુત ચર્ચાના સંદર્ભમાં નીચેનો એક જ ઉલ્લેખ દ્રષ્ટવ્ય છે. મૈત્રાયણી સંહિતા સાથેના સામ્ય છતાં અહીં કેટલીક નવી બાબતો જોઈ શકાય છે. કથાનક આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થાય છે.

- इन्द्रो वृत्रं हत्वा । असुरान् पराभाव्य । नमुचिमासुरं नालभत । तँ शच्यागृह्णात् । तौ समलभेताम् । सोऽस्मादभिशुनतरोऽभवत् । सोऽब्रवीत् । सन्धाँ सन्दधावहै । अथ त्वावः स्रक्ष्यामि । न मा शुष्केण नाद्रेण हनः । તૈત્તિરીયબ્રાહ્મણ, ૧.૭.૧.૬ (પૃ. ૩૬૨)
- न दिवा न नक्तमिति । स एतमपां फेनमसिञ्चत् । न वा एष शुष्को नार्द्रो व्युष्टासीत् । अनुदितः सूर्यः । न वा एतद्दिवा न नक्तम् । तस्यैतस्मिँल्लोके । अपां फेनेन शिर उदवर्तयत् । तदेनमन्ववर्तत । मित्रद्रुगिति । તૈત્તિરીયબ્રાહ્મણ, ૧.૭.૧.૭ (પૃ. ૩૬૨-૬૩)

આ કથાનકમાં પ્રથમ વખત 'શચી' શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે. ભાસ્કરાચાર્ય 'શચી'નો અર્થ 'વિશેષ પ્રકારની શક્તિ' કરે છે. ભાસ્કરાચાર્યના ભાષ્ય મુજબ કથાનકને સમજીએ. ઇન્દ્રે બીજા

૧૮ तैत्तिरीयब्राह्मणम्, भट्टभास्करमिश्रविरचितभाष्यसमेतम्, प्रथमाष्टकम्, गवर्नमेन्ट ओरिएन्टल लाईब्रेरी सीरीझ, बिब्लिओथेका संस्कृत क्रमांक ३६, सं. ए. महादेव शास्त्री, गवर्नमेन्ट ब्रांच प्रेस, मैसुर, ई.स. १९०८

અસુરોને પરાજિત કર્યા પણ તે નમુચિ નામના અસુરને હણવા શક્તિમાન થઈ શક્યો નહિ. તેણે તેને શચી દ્વારા પકડી લીધો. પછી તેઓ બન્ને વચ્ચે યુદ્ધ થયું. નમુચિ ઇન્દ્ર કરતાં વધારે બળવાન બની રહ્યો. વિશેષ બળવાળા નમુચિએ ઇન્દ્રને કહ્યું, ''આપણે બન્ને સમાધાન કરીએ. તો હું તને છોડીશ. આજથી શરૂ કરીને મને સૂકા કે ભીના આયુધથી મારવો નહિ, દિવસે કે રાત્રે પણ મારવો નહિ.'' આ પ્રમાણે શરત થતાં નમુચિએ ઇન્દ્રને મુક્ત કર્યો. પછી ઇન્દ્રે તેને હણવા પાણીના ફીણને આયુધ બનાવ્યું. ફીણ સૂકું પણ નથી અને ભીનું પણ નથી. જ્યારે રાત્રિ પૂર્ણ થવા આવી હતી અને સૂર્ય ઉગ્યો ન હતો ત્યારે તે સમયે દિવસ પણ ન હતો અને રાત્રિ પણ ન હતી. દિવસરાત્રિના આવા સન્ધિકાળે ઇન્દ્રે પાણીના ફીણથી નમુચિનું માથું કાપી નાખ્યું. કાપી નાખવામાં આવેલું તે માથું ઇન્દ્રનો પીછો કરવા લાગ્યું અને કહેવા લાગ્યું કે તું મિત્રદ્રોહી છે.

તૈત્તિરીયસંહિતા અને મૈત્રાયણી સંહિતામાં નમુચિના કપાયેલા માથા વડે ઇન્દ્રનો પીછો કરવાનો ઉલ્લેખ મળે છે તે પરવર્તીકાળે નમુચિકથામાં કે તેનાથી પ્રભાવિત વૃત્ર કે હિરણ્યકશિપુની કથામાં બિલકુલ અદશ્ય છે, પણ ગ્રહણ સમયે સૂર્ય અને ચન્દ્રને ગ્રસી જતા રાહુના મસ્તકની પૌરાણિક કથાનું મૂળ અહીં જોઈ શકાય છે.

શતપથબ્રાહ્મણ : શતપથબ્રાહ્મણમાં એક કરતાં વધુ સ્થળે નમુચિનું કથાનક પ્રાપ્ત થાય છે.[૧૯] અહીં કુલ ત્રણ સ્થાનોમાં પ્રાપ્ત કથાનક નોંધનીય છે.

(૧) શતપથબ્રાહ્મણના પંચમકાણ્ડની નોંધ મુજબ નમુચિ એક અસુર હતો અને ઇન્દ્રે તેને નીચે પછાડ્યો હતો પોતાના પગથી કચડી નાખ્યો હતો. જ્યારે તે આ રીતે કચડાયેલો ઉદરાકારે રહ્યો. ઇન્દ્રે પોતાના પગથી તેના માથાને ચીરી નાખ્યું. પછી તેમાંથી એક રાક્ષસ જન્મ્યો. તેણે ઇન્દ્રને કહ્યું કે ''તું ક્યાં જઈશ ? મારાથી કઈ રીતે છુટકારો મેળવીશ ?''

नमुचिर्ह वै नामासुर आस । तमिन्द्रो निविव्याध । तस्य पदा शिरोऽभितष्ठौ । स यदभिष्ठित उदबाधत स उच्छवङ्कः । तस्य पदा शिरःप्रचिच्छेद । ततो रक्षः समभवत् । तद्ध स्मैनमनुभाषते क्व गमिष्यसि, क्व मे मोक्ष्यसऽइति ॥ કાંડ ૫, અ.૪, બ્રાહ્મણ ૧, કંડિકા ૯ (ભાગ ૨, પૃ. ૧૪૧)

(૨) શતપથબ્રાહ્મણના બારમા કાણ્ડના સાતમા અધ્યાયમાં નમુચિની કથાનાં અમુક નવાં તત્ત્વો ઉમેરાયાં છે. તે મુજબ ઇન્દ્ર નમુચિ સાથે ફરતો હતો ત્યારે તે નમુચિએ આમ વિચાર્યું, ''આ પહેલાંથી સાવ જુદો થઈ ગયો છે. હું તેની ઇન્દ્રિય, વીર્ય, સોમપાન અને અન્નાદિને હરી લઉં.'' તેની આ સુરાને હરી લઈને તેણે ઇન્દ્રના ઇન્દ્રિયબળ, વીર્ય, સોમપાન અને અન્નાદિને હરી લીધાં, ઇન્દ્ર શક્તિહીન બની ગયો. દેવો તેની ફરતે એકઠા થયા અને કહેવા લાગ્યા કે ''આ ખરેખર આપણામાં શ્રેષ્ઠ છે. અત્યારે તેને પાપ ઘેરી વળ્યું છે. અરે, આપણે તેની સારવાર કરીએ.''

---

૧૯ श्रीवाजसनेयि-माध्यन्दिन-शतपथब्राह्मणम्, श्रीमत्सायणाचार्यविरचितवेदार्थप्रकाशाख्यव्याख्यासमेतम्, ज्ञानपब्लिशिंग हाउस, दिल्ही, प्रथमपुनर्मुद्रणम्, ई. १९८७

अथ ह वैतर्हि नमुचिनैवासुरेण सह चचार । स ऐक्षत नमुचिः, अपुनर्वा अयमभूत् । हन्त ! अस्येन्द्रियं वीर्यं सोमपीथमन्नाद्यं हराणीति । तस्यैतयैव सुरयेन्द्रियं वीर्यं सोमपीथमन्नाद्यमहरत् । स ह न्यर्णः शिश्ये । तं देवा उपसंजग्मिरे । श्रेष्ठो वै नोऽयमभूत् । तमिमं पाप्माऽविदत् । हन्त, इमं भिषज्यामेति ॥ કાંડ ૧૨, અ.૭, બ્રાહ્મણ ૧, કંડિકા ૧૦ (ભાગ ૪, પૃ. ૮૭)

પછી દેવોએ અશ્વિનદેવો અને સરસ્વતીને વિનંતી કરી. તેમણે યજ્ઞભાગ માગ્યો. દેવોએ તેમની માગણી સ્વીકારી એટલે તેમણે નમુચિમાંથી ઇન્દ્રિય અને વીર્યને લઈને તેનામાં ફરીથી સ્થાપિત કર્યાં.

(૩) શતપથબ્રાહ્મણના બારમા કાણ્ડના સાતમા અધ્યાયમાં ફરીથી નમુચિની વાત મળે છે. અહીં ઇન્દ્ર અને નમુચિ વચ્ચે થયેલી શરતનો પણ ઉલ્લેખ છે. આ શરત ઇન્દ્રે ક્યારે અને શા માટે કરી હતી તે જાણવા મળતું નથી. સુરાપાન કરીને નમુચિએ ઇન્દ્રના ઇન્દ્રિય, અન્નરસ અને સોમનું હરણ કરી લીધું ત્યારે તેમને પાછા મેળવવા ઇન્દ્ર અશ્વિનદેવ અને સરસ્વતી પાસે ગયો અને નમુચિએ હરેલી વસ્તુ પાછી અપાવવા પ્રાર્થના કરી. આ વખતે ઇન્દ્રે અશ્વિન દેવો અને સરસ્વતીને કહ્યું કે મેં નમુચિને એમ કહીને શપથ લીધા છે કે ''હું તને દિવસે કે રાત્રે હણીશ નહિ, દણ્ડ કે બાણથી હણીશ નહિ, હાથની હથેળી કે મુઠ્ઠીથી મારીશ નહિ. સૂકી કે ભીની વસ્તુથી પણ મારીશ નહિ.'' તેમણે ઇન્દ્ર પાસે યજ્ઞભાગ માગ્યો અને ઇન્દ્રે તેને કબૂલ રાખ્યો. પછી બન્ને અશ્વિનો અને સરસ્વતીએ પાણીનું ફીણ સૂકું કે ભીનું નથી એમ કહીને વજ્ર તરીકે પાણીના ફીણને છાંટ્યું. રાત્રિ જ્યારે સ્વચ્છ બની રહી હતી અને સૂર્ય ઊગ્યો ન હતો ત્યારે આ દિવસ પણ નથી અને રાત પણ નથી એમ વિચારીને ઇન્દ્રે તેનું માથું ભાંગી નાખ્યું.

इन्द्रस्येन्द्रियम् अन्नस्य रसम्, सोमस्य भक्षं सुरयाऽऽसुरो नमुचिरहरत् । सोऽश्विनौ च सरस्वतीं चोपाधावत् । शेपानोऽस्मि नमुचये । न त्वा दिवा न नक्तं हनानि । न दण्डेन । नधन्वना । न पृथेन । न मुष्टिना । न शुष्केण । नार्द्रेण । अथ म इदमहार्षीत् । इदं म आजिहीर्षयेति ॥ કાંડ ૧૨, અ. ૭, બ્રાહ્મણ ૩, કંડિકા ૧

तावश्विनौ च सरस्वती च अपां फेनं वज्रमसिञ्चन् । न शष्को नार्द्र इति । तेनेन्द्रो नमुचेरासुरस्य व्युष्टायां रात्रौ, अनुदित आदित्ये, न दिवा न नक्तमिति शिर उदवासयत् ॥ કાંડ ૧૨, અ. ૭, બ્રાહ્મણ ૩, કંડિકા ૩ (ભાગ ૪, પૃ. ૯૫)

આગળ જતાં કહ્યું છે કે નમુચિ એ પાપ છે. ઇન્દ્રે પોતાનો દ્વેષ કરનાર તે પાપી શત્રુને હણીને તેનાં ઇન્દ્રિય અને વીર્ય ખૂંચવી લીધાં. જેને શત્રુ હોય તેણે સૌત્રામણીથી યજન કરવું જોઈએ. તે પાપી અને દ્વેષ કરનાર શત્રુને હણીને તેનું ઇન્દ્રિય અને વીર્ય ખૂંચવી લે છે. નમુચિના કપાયેલા મસ્તકમાં સોમરસ લોહી સાથે ભળેલો હતો. તેથી દેવોએ તેને ધિક્કાર કર્યો.

पाप्मा वै नमुचिः । पाप्मानं वाव तद्विषन्तं भ्रातृव्यं हत्वा, इन्द्रियं वीर्यमस्यावृङ्क्त । स यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स सौत्रामण्यायजेत । पाप्मानमेव तद्विषन्तं भ्रातृव्यं हत्वा, इन्द्रियं वीर्यमस्य वृङ्क्ते । तस्य शीर्षच्छिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽतिष्ठत् । तस्मादबीभत्सन्त । त एतदन्धसो विपानमपश्यत् । ''सोमो राजाऽमृतंसुतः''- (वा.सं. १९.७२, ७९) इति । तेनैनं स्वदयित्वाऽऽत्मन्नदधत ॥ કાંડ ૧૨, અ.૭, બ્રાહ્મણ ૩, કંડિકા ૪

શતપથબ્રાહ્મણમાં પ્રાપ્ત થતા નિર્દેશોમાં વૈવિધ્ય છે. ઇન્દ્રે પોતાના પગથી તેનું માથું ચીરી નાખ્યું અને તેમાંથી ઉત્પન્ન રાક્ષસની વાત અન્યત્ર ક્યાંય મળતી નથી. નમુચિએ સુરાપાન કરીને ઇન્દ્રનાં બળ અને સામર્થ્યને હરી લીધાં હતાં. સૌત્રામણી યજ્ઞ દ્વારા તેને અશ્વિનદેવો અને સરસ્વતી દ્વારા સ્વસ્થ કરવાનો ઉલ્લેખ પણ નવો છે.

ઋગ્વેદમાં નમુચિને પાણીના ફીણથી હણવાના અત્યન્ત સંક્ષિપ્ત નિર્દેશનો પરવર્તી વૈદિક સાહિત્યમાં આ પ્રકારે વિસ્તાર થયો છે.

(૩) રામાયણ અને મહાભારતમાં નમુચિ

રામાયણ : રામાયણમાં ઉત્તરકાણ્ડમાં બે વખત નમુચિનો નામોલ્લેખ થયો છે. રાવણનો વધ કરીને અયોધ્યામાં રાજ્યગાદી પર બેસેલા રામને અભિનન્દન આપવા માટે આવેલા મુનિઓની સાથે નમુચિને દર્શાવ્યો છે. ગીતા પ્રેસમાં પ્રાપ્ત નમુચિ નામના સ્થાને સમીક્ષિત આવૃત્તિમાં અહીં નમુચુ જોવા મળે છે એ નોંધનીય છે.[૨૦] ઉત્તરકાણ્ડમાં અધ્યાય છમાં અસુરોની નામાવલિમાં કાલનેમિ, સંહ્લાદ વગેરે સાથે તેનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે[૨૧], પણ સમીક્ષિત આવૃત્તિમાં એ શ્લોકોને મૂળ અંશ તરીકે મુદ્રિત કરવામાં આવ્યા નથી. આમ, રામાયણમાં ક્યાંય પણ ઇન્દ્રે કરેલા નમુચિના વધ અંગેનો કોઈ નિર્દેશ મળતો નથી.

મહાભારત : મહાભારતના આદિપર્વ, શલ્યપર્વ અને શાન્તિપર્વમાં નમુચિનો ઉલ્લેખ છે.[૨૨] આદિપર્વ ૬૪.૨૨ અનુસાર કશ્યપ અને દનુના ૩૪ પુત્રોમાં એક નમુચિ છે. મહાભારત શાન્તિપર્વમાં અધ્યાય ૨૨૬માં ઇન્દ્ર અને નમુચિ વચ્ચેનો સંવાદ છે. ઇન્દ્ર નમુચિને શોક અંગે પૂછે છે ત્યારે તે કહે છે કે શોકના પ્રસંગે પણ તે શોક કરતો નથી. નમુચિના મુખમાં તત્ત્વજ્ઞાનપરક વિચારો મૂકવામાં આવ્યા છે. પ્રસ્તુત લેખના સંદર્ભમાં આ સંવાદનું વિવરણ અપેક્ષિત નથી.

---

૨૦ *The Vālmīki-Rāmāyaṇa, the seventh book, Uttarakāṇḍa,* Critically edited by Umakant Premchand Shah, Oriental Institute, Vadodara, A. D. 1975, verses : 7.1.1-3

૨૧ नमुचिः कालनेमी च प्रह्लादो वीरसत्तमः ।
राधेयो बहुमायी च लोकपालोऽथ धार्मिकः ॥ રામાયણ, ગીતા પ્રેસ, ગોરખપુર, શ્લોકાંક : ૭.૬.૩૪

૨૨ મહાભારત (ખંડ ૧, ૪ અને ૫), ગીતા પ્રેસ, ગોરખપુર, શ્લોકાંક : ૭.૬.૩૪

શલ્યપર્વમાં અધ્યાય ૪૩ માં શ્લોક ૩૩ થી ૪૫ માં નમુચિનું ઉપાખ્યાન છે, જેમાં ઇન્દ્ર દ્વારા તેના વધ અંગેની કથા મળે છે.[૨૩] કથાના આરંભે કહેવામાં આવ્યું છે કે નમુચિને હણતી વખતે ઇન્દ્રે નમુચિ સાથે કરવામાં આવેલ પ્રતિજ્ઞાનો ભંગ કર્યો હતો. કથાનક અનુસાર નમુચિ ઇન્દ્રથી ડરીને સૂર્યનાં કિરણોમાં પ્રવેશી ગયો હતો. ઇન્દ્રે તેની સાથે મિત્રતા કરી હતી અને શરત કરી હતી કે તે સૂકા કે ભીના હથિયારથી દિવસે કે રાત્રે નમુચિને મારશે નહિ. આ પ્રમાણે પ્રતિજ્ઞા કર્યા બાદ તેણે ઝાકળ જોઈને પાણીના ફીણથી તેનું માથું કાપી નાખ્યું હતું. નમુચિનું કપાયેલું માથું ઇન્દ્રની પાછળ પડ્યું હતું અને વારંવાર તેને કહેતું હતું કે ''તું મિત્રઘ્ન છે, તું પાપી છે.''

शृणुष्वैतदुपाख्यानं यथावृत्तं जनेश्वर ।
यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा ॥ ३३
नमुचिर्वासवाद्भीतः सूर्यरश्मिं समाविशत् ।
तेनेन्द्रः सख्यमकरोत्समयं सत्येन ते शपे ॥ ३४
एवं स कृत्वा समयं सृष्ट्वा नीहारमीश्वरः ।
चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः ॥ ३५
तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वयात् ।
हे मित्रहन्पाप इति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात् ॥ ३६

મહાભારત, શલ્યપર્વ, અધ્યાય ૪૩

નમુચિના મસ્તકનાં આ પ્રકારનાં વચનોથી સંતાપ પામેલો ઇન્દ્ર પોતાના ગુરુ બૃહસ્પતિ પાસે ગયો અને મુક્તિનો માર્ગ પૂછ્યો ગુરુએ તેને પવિત્ર તીર્થમાં યજ્ઞ અને સ્નાન કરવા કહ્યું. ઇન્દ્ર ગૂઢરૂપે અરુણા નદીના તીરે આવ્યો. સરસ્વતી અને અરુણના સંગમસ્થળે યજ્ઞ, સ્નાન અને દાન કરીને તે પાપમુક્ત થયો. તેની પાછળ પડેલું નમુચિનું માથું પણ તે તીર્થભૂમિમાં અક્ષય લોકને પ્રાપ્ત થયું.

(૪) પુરાણ સાહિત્યમાં નમુચિ

બ્રહ્મપુરાણ,[૨૪] વામનપુરાણ[૨૫] અને સ્કન્દપુરાણ[૨૬] એમ ત્રણ પુરાણોમાં નમુચિ અંગેની કથા નોંધપાત્ર છે. આ ત્રણ પુરાણો વૈદિક નમુચિ કથાનકમાં કેટલાંક મૂળ તત્ત્વોને જાળવી રાખીને તેનાં કશુંક નવું ઉમેરે છે. અત્યન્ત મહત્ત્વપૂર્ણ બાબત એ છે કે આ ત્રણેય પુરાણોમાં પાણીના

---

૨૩ ભાંડારકર પ્રાચ્યવિદ્યા શોધ સંસ્થાન, પૂનાથી પ્રકાશિત સમીક્ષિત આવૃત્તિમાં આ અધ્યાયનો ક્રમ ૪૨ મળે છે.

૨૪ બ્રહ્મપુરાણ, https://sanskritdocuments.org/doc_purana/brahmapur.html

૨૫ વામનપુરાણ, પરિમલ પબ્લિશર્સ, દિલ્હી, પ્રથમ સંસ્કરણ, ૨૦૦૫

૨૬ સ્કન્દપુરાણ, નાગ પબ્લિશર્સ, દિલ્હી, દ્વિતીય સંસ્કરણ, ૧૯૯૫

ફીણથી તેનો વધ કરવાની બાબત સુરક્ષિત રહી છે. વિષ્ણુપુરાણ,[૨૭] ભાગવતપુરાણ,[૨૮] પદ્મપુરાણ[૨૯] અને શિવપુરાણમાં[૩૦] પણ નમુચિને લગતા નિર્દેશો મળે છે પણ પાણીના ફીણથી તેના વધ સાથે સંબંધિત કોઈ વિગત મળતી ન હોઈ પ્રસ્તુત લેખમાં તેનો નિર્દેશ આવશ્યક નથી.

(૪.૧) બ્રહ્મપુરાણ : બ્રહ્મપુરાણ ૩.૮૬-૮૮ માં નમુચિને વિપ્રચિતિ અને સિંહિકાના કુલ તેર પુત્રોમાંનો એક કહ્યો છે. ત્યારબાદ બે ભિન્ન સ્થળે અધ્યાય ૧૨૪ ને અધ્યાય ૧૨૯માં તેના વધની વાત મળે છે.

બ્રહ્મપુરાણ અધ્યાય ૧૨૪.૩૨માં દર્શાવ્યા મુજબ નમુચિ અને મય બન્ને ભાઈઓ હતા. નમુચિ બળવાન અને દૈત્યોનો અધિપતિ હતો. તેને ઇન્દ્ર સાથે ભીષણ વેર હતું. એક વાર યુદ્ધ સિવાય ઇન્દ્ર ક્યાંક જઈ રહ્યો હતો. નમુચિ તેની પાછળ જવા લાગ્યો. તેને પોતાની પાછળ આવતો જોઈને ઇન્દ્રને ભય લાગ્યો. તેણે પોતાના ઐરાવત હાથીનો ત્યાગ કર્યો અને ફીણમાં પ્રવેશી ગયો. પછી ઇન્દ્રે તરત ફીણથી જ તે અસુરને મારી નાખ્યો.

दैत्यानामधिपश्चासीद्बलवान्नमुचिः पुरा ।
इन्द्रेण वैरमभवद्भीषणं लोमहर्षणम् ॥ ३३
युद्धं हित्वा कदाचिद्धो गच्छन्तं तु शतक्रतुम् ।
दृष्ट्वा दैत्यपतिः शूरो नमुचिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ ३४
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य शचीभर्ता भयातुरः ।
ऐरावतं गजं त्यक्तवा इन्द्रः फेनमथाविशत् ॥ ३५
स वज्रपाणिस्तरसा फेनेनैवाहनद्रिपुम् ।
नमुचिर्नाशमगमत्तस्य भ्राता मयोऽनुजः ॥ ३६, બ્રહ્મપુરાણ, અધ્યાય ૧૨૪

બ્રહ્મપુરાણના ઉપરના કથાનકમાં ઇન્દ્રના પક્ષે કપટ સ્પષ્ટ છે. અહીં નમુચિને ઇન્દ્ર કરતાં વધારે બળવાન દર્શાવ્યો છે. બન્ને વચ્ચે ભીષણ વેર હતું. ઇન્દ્ર નમુચિ સાથેના યુદ્ધને છોડીને ઇન્દ્ર ભાગે છે. નમુચિ તેનો પીછો કરે છે. ઇન્દ્ર નમુચિના ભયથી ડરીને પોતાના વાહન ઐરાવતને પણ ત્યજી દે છે અને પાણીના ફીણમાં છુપાઈ જાય છે અને ફીણની મદદથી નમુચિને હણી નાખે છે. શ્લોક ૩૬માં પ્રયુક્ત શબ્દ वज्रपाणिः ચિન્તનીય છે. જો તેને ઇન્દ્રનું નામ લઈએ તો આ કાર્યમાં

---

૨૭ વિષ્ણુપુરાણ, અનુ, મુનિલાલ ગુપ્તા, ગીતા પ્રેસ, ગોરખપુર, ૧૯મું સંસ્કરણ, ઈ.સ. ૧૯૯૯

૨૮ ભાગવતપુરાણ (ભાગ ૧), સં. હનુમાનપ્રસાદ પોદ્દાર, ગીતા પ્રેસ, ગોરખપુર, ઈ.સ. ૧૯૮૭

૨૯ પદ્મપુરાણ (પ્રથમ ખંડ), સૃષ્ટિખંડ, ખેમરાજ શ્રીકૃષ્ણદાસ સંપાદિત અને વેંકટેશ્વર સ્ટીમ પ્રેસ પ્રકાશિત સંસ્કરણનું પુનર્મુદ્રણ, નાગ પબ્લિશર્સ, દિલ્હી, ચતુર્થ સંસ્કરણ, ઈ.સ. ૨૦૦૮, અધ્યાય ૬૭, શ્લોકાંક : ૬૫.૬૨

૩૦ શિવપુરાણ, ઉમાસંહિતા નાગ પબ્લિશર્સ, દ્વિતીય સંસ્કરણ, ઈ.સ. ૧૯૯૫, શ્લોકાંક : ૩૨.૨૬-૩૦, : ૩૩.૩૬

વજ્રની સહાયનો ઉલ્લેખ માની શકાય નહિ. પણ જો હાથમાં વજ્ર ધારણ કરેલા ઇન્દ્ર એવો લઈએ તો ફીણ અને વજ્ર બન્નેનો સ્વીકાર કરી શકાય એમ છે. અહીં ઇન્દ્રે નમુચિ સાથે કરેલી સન્ધિની રક્ષા માટે પાણીના ફીણનો આયુધ તરીકે ઉપયોગ કર્યાની મૈત્રાયણિસંહિતાથી ચાલી આવતી વાત અદશ્ય છે. ભયત્રસ્ત ઇન્દ્રે હાથમાં આવ્યું તે હથિયાર ન્યાયે ફીણનો ઉપયોગ કર્યો એવું જણાય છે. અથવા ફીણની વચ્ચે પોતાને છુપાવીને ફીણયુક્ત વજ્રથી તેને હણ્યો એવો અર્થ પણ તારવી શકાય તેમ છે.

બ્રહ્મપુરાણ અધ્યાય ૧૨૯માં પણ નમુચિ અને ઇન્દ્રના યુદ્ધનો ઉલ્લેખ થયો છે. તે મુજબ ઇન્દ્રે ફીણથી તેનું માથું કાપી નાખ્યું હતું. અહીં ફીણને વજ્રનું રૂપક આપવામાં આવ્યું છે. માથાને કાપીને તે ફીણ ગંગાના દક્ષિણ કિનારે પડ્યું અને પૃથ્વીને ભેદીને રસાતલમાં પ્રવેશ્યું હતું. ત્યારબાદ વજ્ર દ્વારા આદેશ આપવામાં આવેલા માર્ગે તે ભૂમિમણ્ડલમાં પ્રવેશ્યું અને તે પાણી 'ફીણ' નામે અને નદી 'ફેના' નામે ઓળખાયાં છે.

नमुचिर्बलवानासीदिन्द्रशत्रुर्मदोत्कटः ।
तस्येन्द्रेणाभवद्युद्धं फेनेनेद्रोऽहरच्छिरः ॥ ५
अपां च नमुचेः शत्रोस्तत्फेनवज्ररूपधृक् ।
शिरच्छित्त्वा तच्च फेनं गङ्गाया दक्षिणे तटे ॥ ६
न्यपतद्भूमिं भित्त्वा तु रसातलमथाविशत् ।
रसातलभवं गाङ्गं वारि यद्विश्वपावनम् ॥ ७
वज्रादिष्टेन मार्गेण व्यगमद्भूमिगण्डलम् ।
तज्जलं फेन नाम्ना तु नदी फेनेति गद्यते ॥ ८, બ્રહ્મપુરાણ, અધ્યાય ૧૨૯

બ્રહ્મપુરાણના ઉપરના વર્ણનમાં ફીણને વજ્રનું રૂપક આપવામાં આવ્યું છે. આગળના કથાનકની માફક અહીં ઇન્દ્રના ભય વગેરેનું આલેખન થયું નથી. કથાનકનો મૂળ હેતુ તીર્થમાહાત્મ્યનો છે. ફેના નદીના માહાત્મ્યને વર્ણવવા માટે આ કથા આપવામાં આવી છે. તેથી અહીં પણ ફીણથી મારવાની સ્થિતિ પાછળના કારણનો નિર્દેશ મળતો નથી. પરન્તુ કપાયેલા મસ્તકની ગતિ અંગે વર્ણન મળે છે. આ પ્રકારે કોઈપણ તીર્થનું માહાત્મ્ય દર્શાવવાની પરમ્પરા પુરાણોમાં પ્રસિદ્ધ છે.

(૪.૨) વામનપુરાણ : વામનપુરાણના અધ્યાય ૫૫માં નમુચિનું કથાનક પ્રાપ્ત થાય છે. તે મુજબ કશ્યપ અને દનુના ત્રણ પુત્રો શુમ્ભ, નિશુમ્ભ અને નમુચિ હતા. ઇન્દ્ર નમુચિને હણવા ઇચ્છતો હતો. ઇન્દ્રે નમુચિને હણવા ઇચ્છતો હતો. ઇન્દ્રે હાથમાં વજ્ર ધારણ કર્યું હતું. તેને જોઈને નમુચિ ડરી ગયો. તેથી તે સૂર્યમાં પ્રવેશી ગયો. ઇન્દ્ર તેને હણવા સમર્થ થઈ શક્યો નહિ. પછી ઇન્દ્રે તેની સાથે એક શરત કરી અને તેને અવધ્યત્વ આપ્યું. ઇન્દ્રે કરેલી શરત એ હતી કે તેને અસ્ત્ર કે શસ્ત્રથી મારશે નહિ. પછી નિર્ભય થયેલો નમુચિ સૂર્યને ત્યજીને પાતાળમાં ગયો. તેણે

સમુદ્રના પાણીમાં પ્રવેશ કર્યો ત્યારે સમુદ્રના પાણીમાં રહેલ ઉત્તમ ફીણને જોયું. તેણે બન્ને હાથમાં ફીણને લઈને પોતાનાં મોં, નાક, આંખ, કાન વગેરે સાથે ઘસ્યું. ઇન્દ્ર અદશ્ય રહીને ફીણમાં વજ્રને મૂક્યું. તેનાથી નમુચિના મોઢું, નાક વગેરે ભાંગી ગયાં અને તે નીચે પડ્યો અને મરી ગયો. નમુચિના વધથી ઇન્દ્રને બ્રહ્મહત્યા લાગી. તેણે તીર્થજળમાં સ્નાન કરીને પાપમુક્તિ મેળવી અને પછી નમુચિના બન્ને ભાઈઓ શુમ્ભ અને નિશુમ્ભને મારવા માટે ઇન્દ્ર ઉદ્યમ કરવા લાગ્યો.

योऽसौ नमुचिरित्येवं ख्यातो दनुसुतोऽसुरः ।
तं हन्तुमिच्छति हरिः प्रगृह्य कुलिशं करे ॥ ૩
त्रिदेवेशं समायान्तं नमुचिस्तद्भयादथ ।
प्रविवेश रथं भानोस्ततो नाशकदच्युतः ॥ ૪
शक्रस्तेनाथ समयं चक्रे सह महात्मना ।
अवध्यत्वं वरं प्रादाच्छस्त्रैरस्त्रैश्च नारद ॥ ૫
ततोऽवध्यत्वमाज्ञाय शस्त्रादस्त्राच्च नारद ।
संत्यज्य भास्कररथं पातालमुपयादथ ॥ ૬
स निमज्जनपि जले सामुद्रं फेनमुत्तमम् ।
ददृशे दानपतिस्तं प्रगृह्येदमब्रवीत् ॥ ૭
यदुक्तं देवपतिना वासवेन वचोऽस्तु तत् ।
अयं स्पृशति मां फेनः कराभ्यां गृह्य दानवः ॥ ૮
मुखनासाक्षिकर्णादीन् संममार्ज्य यथेच्छया ।
तस्मिञ्छक्रोऽसृजद् वज्रमन्तर्हितमपीश्वरः ॥ ૯
तेनासौ भग्ननासास्यः पपात च ममार च ।
समये च तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्धरिम् ॥ ૧૦
स वै तीर्थं समासाद्य स्नातः पापादमुच्यत ।
ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ૧૧

વામનપુરાણ, અધ્યાય ૫૫

વામનપુરાણમાં કેટલાંક મૂળ વૈદિક તત્ત્વો સચવાઈ રહ્યાં છે અને કથાનકની માવજત પૌરાણિક શૈલીમાં કરવામાં આવી છે. નમુચિને ઇન્દ્રથી ડરીને સૂર્યના રથમાં આશ્રય લેતો દર્શાવ્યો છે. અહીં મૈત્રાયણિસંહિતાનો પ્રભાવ જોવા મળે છે.[૩૧] ઇન્દ્ર નમુચિને શસ્ત્રાસ્ત્રોથી નહિ હણવાનું વરદાન આપે છે ત્યારે તે સૂર્યને ત્યજીને પાતાળમાં જાય છે. પાતાળમાં જતી વકતે સમુદ્રમાં પ્રવેશ કરે છે ત્યારે ઇન્દ્ર પોતાને હવે કંઈ કરી શકશે નહિ તેવું વિચારે છે અને સમુદ્રના ફીણથી પોતાનાં મુખ, નાસિકા,

---

૩૧ इन्द्रो वै नमुचिं नालभत, स रश्मीन् कुलायं कृत्वान्वारोहमुमादित्यं....॥ મૈત્રાયણી સંહિતા, ૪.૩.૪

આંખ, કાન વગેરેને તેનાથી ઘસે છે. ઇન્દ્ર આ તકનો લાભ લઈને ફીણમાં પોતાના વજ્રનું સર્જન કરે છે અને તેનાથી નમુચિનાં બધાં જ અંગો ભાંગી જાય છે અને મૃત્યુ પામે છે. મૈત્રાયણિસંહિતામાં ઇન્દ્રને શરતનો ભંગ કરીને નમુચિને હણવા બદલ તેને મિત્રદ્રોહી કહ્યો છે. તૈત્તિરીયબ્રાહ્મણ પણ તેનો નિર્દેશ કરે છે. અહીં ઇન્દ્રે તેની સાથે કરેલી પ્રતિજ્ઞાનો ભંગ કરવાથી તેને બ્રહ્મહત્યાનું પાપ અને પછી તીર્થસ્થાનમાં સ્નાનથી મુક્તિ કહી છે. વામનપુરાણમાં નમુચિનું આ કથાનક દેવી દ્વારા શુમ્ભ અને નિશુમ્ભના વધની પૂર્વે મૂકાયેલું છે અને નમુચિને તેમનો ભાઈ ગણાવ્યો છે.

(૪.૩) સ્કન્દપુરાણ : સ્કન્દપુરાણના માહેશ્વર ખણ્ડના સત્તરમા અધ્યાયમાં નમુચિકથા મળે છે. ઇન્દ્ર અને વૃત્ર વચ્ચેના યુદ્ધ પ્રસંગે નમુચિની કથા પ્રાપ્ત થાય છે. મધ્યદેશમાં આ સંગ્રામ થયો હતો. નમુચિને વૃત્રનો સહાયક કહેવાયો છે. સૌ પ્રથમ ઇન્દ્રે નમુચિ પ્રત્યે વજ્રનો પ્રહાર કર્યો, પણ વજ્રથી તેના એક રુંવાડાને પણ ઈજા કરી શકાઈ નહિ. આ જોઈને બધા દેવતાઓ વિસ્મય પામ્યા અને ઇન્દ્ર પણ લજ્જિત થયો. ઇન્દ્રે તેના પર ગદા ફેંકી, પણ તે ગદા નમુચિના અંગને લાગતાં જ ભાંગીને ભૂક્કો થઈ ગઈ. ત્યારબાદ તેણે શૂલથી પ્રહાર કર્યો તો શૂળ પણ નમુચિના શરીરને સ્પર્શીને સેંકડો કટકામાં વિખેરાઈ ગયું. આ પ્રમાણે અનેક પ્રકારનાં શસ્ત્રોથી પ્રહાર કરવા છતાં ઇન્દ્ર તેને હણી શક્યો નહિ. ઇન્દ્ર સાવ મુંઝાઈ ગયો ત્યારે ત્યાં આકાશવાણી થઈ અને તેણે જણાવ્યું કે ''તું નમુચિને પાણીના ફીણથી મારી નાખ. અન્ય શસ્ત્રથી પ્રહાર કરવાથી તેને ક્યારેય હણી શકાશે નહિ.''

जह्येनमद्याशु महेन्द्र दैत्यं दिवौकसां घोरतरं भयावहम् ।
फेनेन चैवाशु महासुरेन्द्रमपां समीपेन दुरासदेन ॥
अन्येन शस्त्रेण च आहतोऽसौ वध्यः कदाचिन्न भवत्ययं तु ।
तस्माच्च देवेश वधार्थमस्य कुरु प्रयत्नं नमुचेर्दुरात्मनः ॥ સ્કન્દપુરાણ, ૧.૧૭.૩૫-૩૬

આકાશવાણી સાંભળીને ઇન્દ્ર સમુદ્રના કિનારે ગયો. તેને જોઈને નમુચિ એકદમ ગુસ્સે થયો. તેણે ઇન્દ્ર પર શૂલથી પ્રહાર કર્યો અને પૂછ્યું ઇન્દ્રને યુદ્ધભૂમિ અને શસ્ત્ર ત્યજીને સમુદ્રના કિનારે આવી ભરાવા અંગે કટાક્ષપૂર્વક વાણીમાં, ''હે દેવોત્તમ, તું રણભૂમિ છોડીને નિઃશસ્ત્ર થઈને અહીં દરિયાકિનારે કેમ આવ્યો છે ? તારા વજ્ર કે અન્ય શસ્ત્રો પહેલાં મને કંઈ કરી શક્યાં નથી. હવે તું ક્યા શસ્ત્રથી મારી સાથે લડીશ. તું મારી સામે રણભૂમિમાં ઊભો રહીશ તો હું તને આજે જ હણી નાખીશ અને જો તું યુદ્ધ કરવા માગતો ન હોય તો તને જીવતો છોડી દઈશ. આમ, તું નિરાંતે જીવી શકીશ.''

तत्रागतं समीक्ष्याथ नमुचिः क्रोधमूर्च्छितः ।
हत्वा शूलेन देवेन्द्रं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ३८

समुद्रस्त तटः कस्मात्सेवितः सुरसत्तम् ।
विहाय रणभूमिं च त्यक्तशस्त्रोऽभवद्भवान् ॥ ३९
त्वदीयेनैव वज्रेण किं कृतं मम दुर्मते ॥ ४०
तथान्यानि च शस्त्राणि अस्त्राणि सुबहूनि च ।
गृहीतानि पुरा मन्द हन्तुं मामेव चाधुना ॥ ४१
किं करिष्यसि मां हन्तुं युद्धाय समुपस्थितः ।
केन शस्त्रेण मन्द योद्धुमिच्छसि संयुगे ॥ ४२
त्वां घातयामि चाद्यैव यदि तिष्ठसि संयुगे ।
नो चेद्गच्छ मया मुक्तश्चिरं जीव सुखी भव ॥ ४૩, સ્કન્દપુરાણ, ૧.૧૭

નમુચિનું આવું ગર્વયુક્ત વચન સાંભળીને ઇન્દ્રે ગુસ્સાથી હાથમાં ફીણને ધારણ કર્યું. તેના હાથમાં ફીણ જોઈને અસુર હસવા લાગ્યો : ''ઇન્દ્ર, લાગે છે કે તારાં બધાં અસ્ત્રો ક્ષીણ થઈ ગયાં છે એટલે તું મારી સાથે ફીણથી લડવા તૈયાર થયો છે.'' આમ કરીને નમુચિ તેને અવગણતો હોય તેમ તેની સામે ઊભો રહ્યો. ત્યારે જ ઇન્દ્રે તેને ફીણથી હણી નાખ્યો. નમુચિના વધ બાદ દેવતાઓ ખૂબ જ પ્રસન્ન થયા અને અસુરો એકદમ ગુસ્સે થઈને દેવો સાથે યુદ્ધ કરવા લાગ્યા. મહાતેજસ્વી વૃત્રાસુર પણ યુદ્ધ માટે આવી ચડ્યો.

एवं स गर्वितं तस्य वाक्यमाहवशोभिनः ।
श्रुत्वा महेन्द्रोऽपि रुषा जगृहे फेनमद्भुतम् ॥
फेनं करस्थं दृष्ट्वा तु असुरा जहसुस्तदा ॥
क्षयं गतानि चास्त्राणि फेनेनैव पुरन्दरः ।
हन्तुमिच्छति मामद्य शतक्रतुरुदारधीः ॥
एवं प्रहस्य नमुचिरवज्ञाय पुरन्दरम् ।
सावज्ञं पुरतस्तस्थौ नमुतिर्दैत्यपुङ्गवः ॥
तदैव तं स फेनेन शीघ्रमिन्द्रो जघान ह ॥
हते तु नमुचौ देवाः सर्वे चैव मुदान्विताः ।
साधुसाध्विति शब्देन ऋषयश्चाभ्यपूजयन् ॥
तदा सर्वे जयं प्राप्ता हत्वा नमुचिमाहवे ।
दैत्यास्ते कोपसंरब्धा योद्धुकामा मुदान्विताः ॥ ૫૦, સ્કન્દપુરાણ, ૧.૧૭

સ્કન્દપુરાણમાં પાણીમાં ફીણથી વધ એટલું જ મૂળ વૈદિક તત્ત્વ બચ્યું છે અને તેની આસપાસ નવી નવી વાતો વિકસી છે. અહીં ઇન્દ્ર અને નમુચિનું યુદ્ધ વૃત્રાસુર અને દેવોના યુદ્ધના એક ભાગ તરીકે સ્થાન પામ્યું છે. સમગ્ર કથાનકમાં નમુચિને ઇન્દ્ર કરતાં અનેક ગણો બળવાન આલેખ્યો છે.

અહીં નમુચિ ઇન્દ્રનાં વિવિધ શસ્ત્રાસ્ત્રોથી અવધ્ય રહે છે પણ ઇન્દ્ર અને નમુચિ વચ્ચેના કોઈ કરાર કે બ્રહ્માદિ દેવો દ્વારા તેને અવધ્યત્વના વરદાનનો ઉલ્લેખ મળતો નથી. તેને હણવા ઇન્દ્ર વજ્ર, ગદા, શૂલ વગેરે આયુધો પ્રયોજે છે પણ નિષ્ફળ જાય છે. ઇન્દ્રની સ્થિતિ લજ્જાસ્પદ બની રહે છે. તે કિંકર્તવ્યમૂઢ બની જાય છે ત્યારે આકાશવાણીની મદદથી ઇન્દ્રને પાણીના ફીણથી તેના વધનો ઉપાય દર્શાવવામાં આવ્યો છે. આકાશવાણીને અનુસરીને ઇન્દ્ર સમુદ્રના કિનારે જાય છે. ત્યાં આવી ચડેલો નમુચિ તેની તીવ્ર ભર્ત્સના કરે છે. ઇન્દ્રને ફીણ ઉપાડતો જોઈને નમુચિ ફરીથી તેની મશ્કરી કરે છે અને અન્તે ફીણના પ્રહારથી નાશ પામે છે.

આ રીતે સ્કન્દપુરાણ સાવ નવી જ દિશામાં આ કથાનકને વિકસાવે છે. ફીણ સિવાયના તમામ પ્રકારનાં આયુધોથી નમુચિને અવધ્ય દર્શાવવા છતાં આ અવધ્યત્વના કારણને સદંતર છોડી દેવામાં આવ્યું છે. કદાચ તેનું કારણ એ છે કે સ્કન્દપુરાણમાં સૂકા-ભીના, દિવસ-રાત, શસ્ત્રાસ્ત્રથી અવધ્યત્વની વાત હિરણ્યકશિપુ સાથે રૂઢ થઈ ગઈ છે. તેથી અહીં તે વાતને ટાળવામાં આવી છે અને નવા પ્રકારે કથાનકને આકાર આપ્યો છે. આ પુરાણનું કથાનક નાટ્યાત્મ પામ્યું છે. અહીં ઇન્દ્ર અને નમુચિ વચ્ચેના સંવાદ ઘણો રોચક છે. ''વજ્ર પ્રહારથી તેના શરીરનો એક રોમ પણ તૂટ્યો નહિ'' - આ શબ્દોમાં અમોઘ અસ્ત્ર ગણાતા વજ્રની નિષ્ફળતાનું કથન ઇન્દ્ર અને વજ્ર બન્નેના અપકર્ષની ચરમસીમાને પ્રગટ કરે છે.

> वज्रेण जघ्ने तरसा नमुचिं देवराट् स्वयम् ।
> न रोमैकं च त्रुटितं नमुचेरसुरस्य च ॥ સ્કન્દપુરાણ, ૧.૧૭.૨૮

આમ, વામનપુરાણ, બ્રહ્મપુરાણ અને સ્કન્દપુરાણમાં ઇન્દ્ર દ્વારા નમુચિને પાણીના ફીણથી મારવાની વાતનો ઉલ્લેખ હોવા છતાં દરેક પુરાણના કથાનકમાં ભેદ પણ છે. વામનપુરાણમાં નમુચિને અસ્ત્ર કે શસ્ત્રથી નહિ મારવાની ઇન્દ્રની પ્રતિજ્ઞા જોવા મળે છે, જ્યારે બ્રહ્મપુરાણ અને સ્કન્દપુરાણમાં આવી કોઈ પ્રતિજ્ઞા મળતી નથી.

(૫) વૈદિક નમુચિનું પૌરાણિક વૃત્રમાં રૂપાન્તર

અત્યન્ત રસપ્રદ બાબત એ છે કે નમુચિના અવધ્યત્વની આ કથા પરવર્તીકાળે વૃત્ર સાથે જોડાય જાય છે. મહાભારત ઉદ્યોગપર્વમાં નમુચિકથાના અંશો વૃત્રકથામાં જોવા મળે છે.[૩૨] મુખ્ય અઢાર પુરાણોમાં ક્યાંય તેનું અનુસરણ થયું નથી. એક માત્ર દેવીભાગવતમાં તેનું અત્યન્ત વિસ્તારથી ઉપબૃંહણ કર્યું છે. વૈદિક સાહિત્યમાં પ્રાપ્ત થતી વૃત્રની કથાનો પુરાણોમાં વિવિધ પ્રકારે વિકાસ થયો છે. વૈદિક સાહિત્યમાં ક્યાંય વૃત્રને ઇન્દ્ર દ્વારા પ્રાપ્ત અવધ્યત્વ કે તે અંગેની પ્રતિજ્ઞાનો નાનો સરખો

---

૩૨ મહાભારત, ઉદ્યોગપર્વ, ભાંડારકર પ્રાચ્યવિદ્યા શોધ શંસ્થાન, પૂના, ૧૯૭૨, અધ્યાય ૧૦

નિર્દેશ જોવા મળતો નથી. તેથી વૃત્રકથાના નિરૂપણમાં પુરાણો નમુચિકથામાં રહેલ અવધ્યત્વના રોચક અંશને વૃત્ર સાથે જોડ્યો નથી. મહાભારતમાં વૃત્ર અને ઇન્દ્રના સંઘર્ષની કથા એકથી વધુ વખત આલેખાઈ છે પણ માત્ર ઉદ્યોગપર્વમાં જ નમુચિકથાનો પ્રભાવ જોઈ શકાય છે.

(૫.૧) મહાભારત : મહાભારત ઉદ્યોગપર્વમાં ઇન્દ્ર અને વૃત્ર વચ્ચેના સંગ્રામની કથા છે. ઇન્દ્ર વૃત્રને હરાવવા અસમર્થ બની ગયો ત્યારે વિષ્ણુની સલાહને અનુસરીને તેણે વૃત્ર સાથે સન્ધિ કરી હતી. વૃત્રનો વિશ્વાસ સંપાદિત કરવા ઋષિઓ અને ગન્ધર્વોને વચ્ચે રાખ્યા. વૃત્રે ઇન્દ્રની દાનત પર શંકા વ્યક્ત કરી ત્યારે ઋષિઓએ ઇન્દ્રને સત્યવાદી, અનિન્દનીય, ધર્મજ્ઞ અને સૂક્ષ્મ નિશ્ચય બુદ્ધિવાળો જણાવીને તેના પર ભરોસો બંધાવ્યો. ઋષિઓની વાત પર વિશ્વાસ મૂકીને વૃત્ર સન્ધિ કરવા તત્પર થયો. તેણે શરત રાખી કે ઇન્દ્ર વૃત્રને સૂકાથી કે ભીનાથી, પથ્થરથી કે લાકડાથી, શસ્ત્રથી કે અસ્ત્રથી દિવસે કે રાતે તેને મારે નહિ. ઋષિઓની મધ્યસ્થીથી બન્નેએ શરતનો સ્વીકાર કર્યો. ત્યારબાદ ઇન્દ્ર મનમાં ને મનમાં વૃત્રને મારવાની તક શોધતો રહ્યો. એકવાર તેણે સમુદ્રના કિનારે વૃત્ર જોયો અને તેને મારવા માટે નિશ્ચય કરી લીધો. ત્યારે સન્ધ્યાકાળ હતો, એટલે દિવસ પણ નહોતો અને રાત્રિ પણ નહોતી. ઇન્દ્રને લાગ્યું કે જો તે આ તક જવા દેશે તો પછી ક્યારેય તેને મારી શકશે નહિ. વિષ્ણુનું સ્મરમ કરતા ઇન્દ્રની નજર સમુદ્રમાં ઊઠતા પર્વતાકાર ફીણના ઢગલા પર પડી. ફીણ સૂકું પણ નથી અને ભીનું પણ નથી એમ વિચારીને વજ્રને ફીણ સાથે રાખીને પ્રહાર કર્યો. વિષ્ણુએ ફીણમાં પ્રવેશ કર્યો હોઈ વજ્રના પ્રહારથી વૃત્રનો વધ કર્યો. સર્વત્ર હર્ષ છવાઈ ગયો.

મહાભારત ઉદ્યોગપર્વમાં વૃત્ર ઇન્દ્ર સાથે સન્ધિ કરવા તત્પર થાય છે ત્યારે તે વિવિધ પ્રકારને પોતાનું અવધ્યત્વ માગે છે. અહીં પ્રયુક્ત શબ્દો પરવર્તી પુરાણ સાહિત્યમાં વારંવાર હિરણ્યકશિપુના વરદાનમાં પુનરાવર્તિત થતા જણાય છે.

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ।
न शस्त्रेण न वज्रेण न दिवा न तथा निशि ॥
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नित्यदा ॥ મહાભારત, ઉદ્યોગપર્વ, ૧૦. ૨૮-૨૯

સમુદ્રના કિનારે સન્ધ્યાકાળે વિચરતા વૃત્રને જોઈને ઇન્દ્ર તેને હણવા સંકલ્પ કર્યો અને સાગરમાં ઊઠતા પર્વતાકાર ફીણને જોઈને તેણે નિશ્ચય કર્યો કે આ ફીણ ભીનું કે સૂકું નથી. એ શસ્ત્ર પણ નથી. પછી ઇન્દ્રે વજ્ર સહિત ફીણને ફેંકીને વૃત્રનો વધ કર્યો.

नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ।
एनं क्षेप्स्यामि वृत्रस्य क्षणादेव नशिष्यति ॥

सवज्रमथ फेनं तं क्षिप्रं वृत्रे निःसृष्टवान् ।
प्रविश्य फेनं तं विष्णुरथ वृत्रं व्यनाशयत् ॥ મહાભારત, ઉદ્યોગપર્વ, ૧૦. ૩૭-૩૮

(૫.૨) દેવીભાગવત : મહાભારત ઉદ્યોગપર્વની ઉપરની કથાનો વિસ્તાર દેવીભાગવતના છઠ્ઠા સ્કન્ધમાં મળે છે.[૩૩] તેમાં વૃત્રાસુરના વધની કથા અત્યન્ત વિસ્તારથી જોવા મળે છે. અહીં વૃત્ર દેવતાઓને પરાજિત કરીને તેમનું સર્વસ્વ પડાવી લે છે. દેવો સ્વર્ગ છોડીને પલાયન થઈ ગયા છે. ત્યારબાદ વૃત્ર સો વર્ષનું ભયંકર તપ કરીને બ્રહ્માને પ્રસન્ન કરીને વરદાનો માગે છે. આ વરદાનો આ પ્રમાણે છે. લોઢું, લાકડું, ભીનું, સૂકું, અગ્નિસમૂહ અને બીજાં કોઈ જ શસ્ત્રોથી મારું મૃત્યુ થાય નહીં. યુદ્ધમાં મારું પરાક્રમ અતિશય વધતું જ રહે, જેથી પરમ બળવાન દેવતાઓ મને યુદ્ધમાં જીતી શકે નહીં.

मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठाशुष्कार्द्रवंनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः ।
वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥ દેવીભાગવત, ૬.૪.૮

સર્વ પ્રકારે અવધ્યત્વની તેની આ માગણીથી બ્રહ્મા હસી પડ્યા અને તેને વરદાન આપતા કહ્યું કે ''સૂકાથી કે ભીનાથી, પથ્થરથી કે લાકડાથી તારું મૃત્યુ થશે નહીં. આ હું તને સત્ય વચન કહું છું.''

न शुष्केण न चार्द्रेण न पाषाणेन दारुणा ।
भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ દેવીભાગવત, ૬.૪.૧૦

વૃત્રાસુરને હણવા માટે દેવો વિષ્ણુ પાસે ગયા ત્યારે વિષ્ણુએ કહ્યું કે બ્રહ્માના વરદાનથી અજેય બની ગયેલા વૃત્રને પ્રથમ તો કપટ કરીને છેતરવો જોઈએ અને પછી તેને હણવો જોઈએ. આ માટે તેની સાથે સમાધાન કરીને મૈત્રીનું નાટક કરવા ઇન્દ્રને સમજાવ્યો. ઇન્દ્રે ઋષિઓને આગળ રાખીને વૃત્રને વિશ્વાસમાં લઈને સન્ધિ કરી. તે મુજબ વૃત્રે તેમની સમક્ષ શરત રાખી કે ''હે મહાભાગ, સૂકાં કે લીલાં અસ્ત્ર-શસ્ત્રથી, પથ્થરથી કે લાકડાથી કે વજ્રથી, દિવસે કે રાત્રે ઇન્દ્ર કે દેવતાઓ દ્વારા મને મારવામાં ન આવે - આ શરતે મને સમાધાન માન્ય છે, અન્ય કોઈ રીતે નહીં.''

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ।
न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च ॥
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः ।
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नान्यथा ॥ દેવીભાગવત, ૬.૬.૩૫-૩૬

૩૩ દેવીભાગવતપુરાણ, ખંડ ૧, ગીતા પ્રેસ ગોરખપુર, પ્રથમ સંસ્કરણ, ઈ.સ. ઈ.સ. ૨૦૧૧

પછી ઇન્દ્રે લાગ જોઈને વૃત્રને સન્ધ્યાકાળે હણી નાખ્યો. પાણીના ફીણની વચ્ચે વજ્રને સંતાડીને તેના પર પ્રહાર કર્યો. વજ્રમાં વિષ્ણુએ પ્રવેશ કર્યો હતો અને ભગવતી જગદમ્બાએ પોતાની શક્તિ મૂકી હતી. તેથી ઇન્દ્ર વૃક્ષને હણી શક્યો.

(૬) વૈદિક નમુચિનું હિરણ્યકશિપુમાં રૂપાન્તર

વૈદિક નમુચિની કથા સાથે સંબંધિત અવધ્યત્વ અને ઇન્દ્ર દ્વારા તેના વધની કથા વૃત્ર સાથે જોડાયા બાદ પરવર્તી પુરાણસાહિત્યમાં નમુચિનું હિરણ્યકશિપુમાં રૂપાન્તર થતું જોવા મળે છે. સૂકા કે ભીના અસ્ત્રથી નમુચિના અવધ્યત્વની મૂળભૂત વૈદિક વાત અહીં પણ હિરણ્યકશિપુ સાથે જોડાઈ જાય છે. 'ઇન્દ્ર'નું સ્થાન 'નરસિંહ' લે છે અને આયુધ તરીકે 'પાણીના ફીણ'નું સ્થાન 'નરસિંહ ભગવાનના નખ' લે છે.

(૬.૧) રામાયણ : રામાયણમાં નરસિંહ દ્વારા હિરણ્યકશિપુના વધનો ઉલ્લેખ મળતો નથી. મહાભારતમાં નરસિંહ અને હિરણ્યકશિપુનો ઉલ્લેખ મળે છે. પણ નખોથી તેના વધની કથાનું વર્ણન પ્રાપ્ત થતું નથી. વિવિધ પુરાણોમાં આ કથાનક ખૂબ વિસ્તાર પામ્યું છે.

(૬.૨) વાયુપુરાણ : વાયુપુરાણમાં હિરણ્યકશિપુને બ્રહ્માના વરદાનની કથા મળે છે.[૩૪] હિરણ્યકશિપુ અમરત્વનું વરદાન મેળવે છે અને તેને હણવા માટે ભગવાન વિષ્ણુ નરસિંહ સ્વરૂપ ધારણ કરીને નખથી તેનો વધ કરે છે. હિરણ્યકશિપુએ બ્રહ્મા પાસેથી મેળવેલ વરદાનની વિગતોમાં સૂકાથી કે ભીની વસ્તુથી નહિ મરવાનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ નથી. વાયુપુરાણમાં હિરણ્યકશિપુએ મેળવેલા વરદાનનું વર્ણન આ પ્રમાણે થયું છે.

तं ब्रह्मा छन्दयामास दैत्यं तुष्टो वरेण तु ।
सर्वामरत्वं विप्रेशाः सर्वभूतेभ्य एव च ।
योगादेवान्विनिर्जित्य सर्वदेवत्वमास्थितः ॥ ६२
दानवाश्चासुराश्चैव देवाः समा भवन्तु वै ।
मारुतेर्यन्महैश्वर्यमेष मे दीयतां वरः ॥ ६३
एवमुक्तोऽथ ब्रह्मा तु तस्मै दत्त्वा यथेप्सितम् ।
दत्त्वा तस्मै वरान्दिव्यान् तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६४, વાયુપુરાણ અધ્યાય ૬૭

વાયુપુરાણ હિરણ્યકશિપુને લગતા પ્રાચીન શ્લોકને ટાંકે છે. તેમાં કહ્યું છે કે "તે જે દિશાઓમાં જતો હતો તે દિશાને મહર્ષિઓ નમન કરતા હતા. આવા પ્રભાવશાળી દૈત્યને વિષ્ણુએ નરસિંહનું

---

૩૪ વાયુપુરાણ, અનુ. રામપ્રતાપ ત્રિપાઠી શાસ્ત્રી, હિન્દી સાહિત્ય સંમેલન, પ્રયાગ, ઈ.સ. ૧૯૮૭, શ્લોકાંક ૬૭.૪૯ થી ૭૧

શરીર ધારણ કરીને માર્યો હતો. તેને નખથી ચીરી નાખ્યો હતો કેમ કે નખ ભીના કે સૂકા હોતા નથી.''

हिरण्यकशिपुर्दैत्यः श्लोकैर्गीतः पुरातनैः ।
राजा हि हिरण्यकशिपुर्यामाशां निषेवते ।
तस्यै तस्यै दिशे देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभिः ॥ ६५
एवं प्रभावो दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुर्द्विजाः ।
तस्यासीन्नरसिंहः स विष्णुर्मृत्युः परा किल ।
नखैस्तु तेन निर्भिन्नो नार्द्रशुष्का नखाः स्मृताः ॥ ६६, વાયુપુરાણ, અધ્યાય ૬૭

બ્રહ્માણ્ડપુરાણમાં હિરણ્યકશિપુના વરદાન અને તેને જાળવવા માટે વિષ્ણુના નરસિંહ અવતાર લઈને પોતાના નખોથી તેનો વધ કરવાની વાત મહદંશે વાયુપુરાણને મળતી આવે છે.[૩૫]

(૬.૩) મત્સ્યપુરાણ : મત્સ્યપુરાણમાં હિરણ્યકશિપુએ માગેલા વરદાનનું પાંચ શ્લોકોમાં અતિ વિસ્તૃત વર્ણન છે.[૩૬] તેમાં તે દેવ, અસુર, ગન્ધર્વ, યક્ષ, નાગ, રાક્ષસ, મનુષ્ય, પિશાચ કોઈ તેને હણી શકે નહિ તેવું માગે છે. ઋષિઓ શાપથી પણ ન હણે. ત્યારબાદ તે અવધ્યત્વ અંગે કહે છે. નીચેના શ્લોકમાં અસ્ત્ર, શસ્ત્ર, પર્વત, વૃક્ષ, સૂકી કે ભીની કોઈ વસ્તુ, દિવસ કે રાતના સમયે અવધ્યત્વની માગણી કરવામાં આવી છે. અહીં નોંધપાત્ર છે નીચેનો શ્લોક પદ્મપુરાણમાં અક્ષરશઃ સમાન મળે છે.[૩૭]

न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाथ वा ॥ મત્સ્યપુરાણ, ૧૬૧.૧૩

(૬.૪) ભાગવતપુરાણ : ભાગવતપુરાણમાં સાતમા સ્કન્ધમાં નરસિંહાવતારની કથા આઠ અધ્યાયોમાં અત્યન્ત વિસ્તાર પામી છે. ત્યાં હિરણ્યકશિપુએ માગેલા વરદાનમાં અનેક પ્રકારે અવધ્યત્વ માગવામાં આવ્યું છે. જેમકે, બ્રહ્મા દ્વારા ઉત્પન્ન કોઈ પ્રાણીથી મૃત્યુ ન થાય, અંદર નહિ અને બહાર પણ નહિ, દિવસે નહિ રાતે નહિ, કોઈ પ્રકારના આયુધથી નહિ, ભૂમિ પર નહિ અને આકાશમાં પણ નહિ, માણસથી નહિ અને પશુથી નહિ, જડથી નહિ અને ચેતનથી નહિ, સુર-અસુર કે નાગથી નહિ.

---

૩૫ બ્રહ્માણ્ડપુરાણ, સં. જે. એલ. શાસ્ત્રી, મોતીલાલ બનારસીદાસ, દિલ્હી, પુનર્મુદ્રણ, ઈ.સ. ૧૯૮૩, શ્લોકાંક : ૧૬૧.૧૧-૫

૩૬ મત્સ્યપુરાણ, કલ્યાણવિશેષાંક (ઉત્તરાર્ધ), ગીતા પ્રેસ, ગોરખપુર, ઈ.સ. ૧૯૮૪, શ્લોકાંક : ૧૬૧.૧૧-૫

૩૭ પદ્મપુરાણમાં સૃષ્ટિખણ્ડ, અધ્યાય ૪૫, શ્લોક ૧૩

भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥ ૩૫
नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ।
न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥ ૩૬
व्यसुभिर्वासुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः । ૩૭(કખ)

ભાગવતપુરાણ, ૭.૩

(૭) નિષ્કર્ષ

વૈદિક સાહિત્યમાં પ્રાપ્ત થતી નમુચિકથા પુરાણસાહિત્યમાં વિવિધ પ્રકારે વિસ્તાર પ્રામીને ઉપબૃંહણ પામી છે. કેટલાંક પુરાણોમાં નમુચિકથામાં રહેલ અવધ્યત્વને વૃત્ર સાથે સાંકળવાનો પ્રયત્ન જોવા મળે છે. પછીથી નમુચિ કથામાં રહેલ આ રસપ્રદ તત્ત્વ હિરણ્યકશિપુની કથા સાથે સ્થિર બન્યું છે. બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો હિરણ્યકશિપુએ વૈદિક અસુર નમુચિનું એક સાવ નવું રૂપાન્તરણ છે.

ઋગ્વેદમાં ઇન્દ્ર દ્વારા પાણીના ફીણથી નમુચિના વધનો નિર્દેશમાત્ર છે. ત્યારબાદ મૈત્રાયણિસંહિતા પાણીના ફીણથી વધ કરવા માટેના કારણને દર્શાવે છે કે ઇન્દ્રે નમુચિ સાથે તેને સૂકા કે ભીના આયુધથી દિવસે કે રાત્રે મારવો નહિ એવી ઇન્દ્રે પ્રતિજ્ઞા લીધી હતી. પોતાની આ પ્રતિજ્ઞાના પાલન માટે ઇન્દ્રે સન્ધ્યાકાળે નમુચિને મારવા પાણીના ફીણનો ઉપયોગ કર્યો હતો. તૈત્તિરીયબ્રાહ્મણ પણ આ વાતને નોંધે છે. અહીં નમુચિના વધનો સમય રાત્રિની સમાપ્તિ અને દિવસના ઉદયની મધ્યનો બતાવ્યો છે. શતપથબ્રાહ્મણમાં નમુચિને અવધ્યત્વ અંગે ઇન્દ્ર કરેલી પ્રતિજ્ઞાને કંઈક વિસ્તાર પ્રાપ્ત થયો છે. ઇન્દ્ર અશ્વિનદેવતાઓ અને સરસ્વતીને પોતે નમુચિ સમક્ષ લીધેલા શપથ આ રીતે જણાવે છે કે "હું તને દિવસે કે રાત્રે હણીશ નહિ, દણ્ડ કે બાણથી હણીશ નહિ, હાથની હથેળી કે મુઠ્ઠીથી મારીશ નહિ, સૂકી કે ભીની વસ્તુથી પણ નહિ." બન્ને અશ્વિનો અને સરસ્વતીએ "આ સૂકું કે ભીનું નથી" એમ કહીને વજ્ર તરીકે પાણીના ફીણને છાંટ્યું. રાત્રિ જ્યારે સ્વચ્છ બની રહી હતી અને સૂર્ય ઊગ્યો ન હતો ત્યારે "આ દિવસ પણ નથી અને રાત પણ નથી" એમ વિચારીને ઇન્દ્રે ફીણથી તેનું માથું ભાંગી નાખ્યું હતું. વૈદિક સાહિત્યમાં નમુચિના અવધ્યત્વ માટેની શરતો અને તેના વધ અંગે આવી વિગતો પ્રાપ્ત થાય છે.

રામાયણમાં નમુચિ કથામાં કોઈ વિશેષ વિગતો મળતી નથી. મહાભારત શલ્યપર્વમાં વૈદિક નમુચિ કથાના મૂળ સ્વરૂપને જાળવી રાખીને તેનું નિરૂપણ થયું છે. બ્રહ્મપુરાણમાં પાણીના ફીણથી તેનો વધ દર્શાવ્યો છે પણ અવધ્યત્વ અંગેની શરતોનો કોઈ નિર્દેશ નથી. વામનપુરાણ આ કથાને થોડું નવું સ્વરૂપ આપે છે. તદનુસાર શસ્ત્ર કે અસ્ત્રથી નહિ મારવાની ઇન્દ્રની શરતથી નિર્ભય થયેલો નમુચિ સૂર્યને ત્યજીને પાતાળમાં ગયો. તેણે સમુદ્રના પાણીમાં પ્રવેશ કર્યો ત્યારે સમુદ્રના પાણીમાં રહેલા ઉત્તમ ફીણને જોયું. તેણે બન્ને હાથમાં ફીણને લઈને પોતાનાં મુખ, નાક, આંખ,

કાન વગેરે સાથે ઘસ્યું. ઇન્દ્રે અદશ્ય રહીને ફીણમાં વજ્રને મૂક્યું. તેનાથી નમુચિનું મુખ, નાક વગેરે ભાંગી ગયાં અને તે મરી ગયો. સ્કન્દપુરાણમાં ઇન્દ્રે વૃત્ર સાથે કોઈ શરત કર્યાનો ઉલ્લેખ નથી. તેને હણવા ઇન્દ્રે વજ્ર, ગદા, શૂળ એમ અનેક શસ્ત્રાસ્ત્રોનો પ્રયોગ કર્યો પણ વૃત્ર અવધ્ય બની રહ્યો હતો. પછીથી આકાશવાણીના કહ્યા પ્રમાણે ઇન્દ્રે પાણીના ફીણથી તેને હણ્યો હતો.

મહાભારત ઉદ્યોગપર્વમાં નમુચિના અવધ્યત્વ અને પાણીના ફીણથી તેના વધની ઉપર્યુક્ત વૈદિક અને પૌરાણિક કથા એક નક્ષ જ સ્વરૂપમાં વિકાસ પામી છે. તેમાં નમુચિના સ્થાને વૃત્ર આવી જાય છે અર્થાત્ નમુચિનું વૃત્રમાં રૂપાન્તરણ થાય છે. વૃત્રને હણવા ઇન્દ્ર તેની સાથે સન્ધિ કરે છે અને પછી કપટ કરીને તેને હણી નાખે છે. અહીં વજ્રમાં વિષ્ણુના પ્રવેશનું નવું તત્ત્વ દાખલ થાય છે. વૈદિક સાહિત્યમાં નમુચિની કથામાં ક્યાંય વિષ્ણુ ઇન્દ્રના સહાયક નથી, પણ અહીં નમુચિનું વૃત્રમાં રૂપાન્તરણ કરતી આ ઉદ્યોગપર્વની કથામાં તેઓ ઇન્દ્રના સહાયક બને છે. દેવીભાગવતમાં ઉદ્યોગપર્વમાં આ કથાનો વિસ્તાર કરવામાં આવ્યો છે. અહીં ઇન્દ્ર સાથે સન્ધિ કરીને વૃત્રે પ્રાપ્ત કરેલ અવધ્યત્વ ઉપરાંત બ્રહ્માના વરદાનને પણ દર્શાવવામાં આવ્યું છે. વૃત્રાસુરે કરેલી સો વર્ષની તપસ્યાથી બ્રહ્માને તેને આપેલું અવધ્યત્વનું વરદાન એ દેવીભાગવતમાં જોવા મળતી નવી બાબત છે. બ્રહ્માનું વરદાન અને ઇન્દ્રે કરેલી સન્ધિને કારણે પાણીના ફીણથી ઢાંકીને વજ્રનો પ્રહાર કરીને તેનો વધ કરવામાં આવ્યો છે. દેવીભાગવતમાં એક વિશેષ વાત એ ઉમેરાઈ છે કે વૃત્રવધમાં દેવી મહામાયા જ સર્વસ્વ છે.

નમુચિ કથાના ઉપબૃંહણનો ત્રીજા તબક્કામાં નમુચિનું હિરણ્યકશિપુ અને ઇન્દ્રનું નરસિંહ તરીકે રૂપાન્તરણ થાય છે. પાણીના ફીણનું સ્થાન નરસિંહના નખ લે છે. વાયુપુરાણ અને બ્રહ્માણ્ડપુરાણમાં કહ્યું છે કે નખ સૂકા કે ભીના હોતા નથી. તેથી નરસિંહે નખથી હિરણ્યકશિપુને ચીરી નાખ્યો. મત્સ્યપુરાણમાં હિરણ્યકશિપુને અવધ્યત્વના વરદાનમાં દેવ, અસુર, ગન્ધર્વ, યક્ષ, નાગ, રાક્ષસ, ઋષિઓ, મનુષ્ય સિવાય કોઈ તેને અસ્ત્ર, શસ્ત્ર, પર્વત, વૃક્ષ, સૂકી કે ભીની કોઈ વસ્તુ, દિવસ કે રાતના સમય - એમ ઘણી બાબતો જોવા મળે છે. ભાગવતપુરાણમાં હિરણ્યકશિપુને પ્રાપ્ત વરદાનમાં વધારાની કેટલીક નવી વિગતો ઉમેરાઈ છે. જેમ કે, બ્રહ્મા દ્વારા ઉત્પન્ન કોઈ પ્રાણીથી નહિ, અંદર નહિ અને બહાર પણ નહિ, દિવસે નહિ રાતે નહિ, કોઈ પ્રકારના આયુધથી નહિ, ભૂમિ પર નહિ અને આકાશમાં પણ નહિ, માણસથી નહિ અને પશુથી નહિ, જડથી નહિ અને ચેતનથી નહિ, સુરાસુર કે નાગથી નહિ. આ વરદાનની રક્ષા કરવા માટે વિષ્ણુએ નરસિંહ ભગવાનની જાંઘો પર હોઈ જમીન કે આકાશમાં નહિ વગેરે શરતોનું પાલન થયું છે.

પૌરાણિક નરસિંહ અવતારનાં મૂળ ઋગ્વેદ ૮.૧૪.૧૩માં જોઈ શકાય છે, જેમાં ઇન્દ્રે પાણીના ફીણથી કરેલા નમુચિવધનો ઉલ્લેખ છે. ઋગ્વેદમાં પ્રાપ્ત આ સાવ નાનો નિર્દેશ પરવર્તી વૈદિક અને પૌરાણિક સાહિત્યમાં કેવાં વિલક્ષણ સ્વરૂપો ધારણ કરે છે તે આ લેખમાં દર્શાવ્યું છે. પ્રાસંગિક

તબક્કામાં નમુચિના સ્થાને વૃત્ર ગોઠવાય છે પણ પછી તેના સ્થાને દાનવ હિરણ્યકશિપુ આવી જાય છે. નમુચિને હણવા ઇન્દ્રે પાણીના ફીણને આયુધ બનાવ્યું હતું. નરસિંહ ભગવાનના નખ હિરણ્યકશિપુને હણવાનું આયુધ બને છે અને તેનો વધ કરવા માટે નરસિંહ ભગવાન વિલક્ષણ પ્રકારનું સ્વરૂપ ધારણ કરે છે. અત્યન્ત રસપ્રદ બાબત એ છે કે નરસિંહ અને હિરણ્યકશિપુની આ કથાના વિકાસથી ભારતીય સંસ્કૃતિમાં એક અમર પાત્રનો આવિર્ભાવ થયો છે અને તે છે પરમભક્ત પ્રહ્લાદ. આ લેખનો વિષય વૈદિક અસુર નમુચિનું કથાનક પુરાણ સાહિત્યમાં કયા પ્રકારે ઉપબૃંહણ પામ્યું છે તે પૂરતો સીમિત હોઈ નરસિંહાવતાર અને ભક્ત પ્રહ્લાદ અંગેની વિગતો અહીં સમાવવામાં આવી નથી.

શ્રી ગરીબદાસ કૃત 'યોગપાવડી' (ટબા સાથે)

રસીલા કડીઆ*

ટબા સાથેની 'યોગ પાવડી' નામની યોગ વિષયક કૃતિ મને 'ઓરિએન્ટલ ઈન્સ્ટિટ્યૂટ, બરોડા' સંસ્થા પાસેથી ઉપલબ્ધ થઈ છે તેનો હું ઋણ સ્વીકાર કરું છું, અને અભ્યાસ અર્થે પ્રાપ્ત આ કૃતિનો તેના ટબા સાથેના લિપ્યંતર સાથે પરિચય કરાવવા ઇચ્છું છું.

સૌ પ્રથમ કૃતિનો બાહ્યપરિચય આપું તો, મને આ કૃતિની ઝેરોક્ષ મળી હતી અને તેના પ્રારંભે આપેલ પરિચય કરાવું તો તેમાં Acc. No. 20006/sub. જૈન/નામ ઉપર દર્શાવ્યા પ્રમાણે/ Author - કવીશ્વર/Extent Fols.10/grs.225/Language હિન્દી-ગુજરાતી/Script - દેવનગરી અને Sourceમાં યતિશ્રી હેમચંદ્રજી, વડોદરા તરફથી gift એવો પરિચય મળે છે.

કૃતિના કદ માટે સંસ્થાને પૂછાવડાવેલું જેના જવાબમાં મને Alphabatic list of Manuscripts in the Oriental Institute માંના Vol. IV પરની આ કૃતિની detail મોકલી હતી. આમાં તેનો Sr. No. 928 અને Accession No. 20006 જણાવાયો છે. અન્ય વિગતો ઉપર પ્રમાણે છે. વધારામાં તેની Size (Sms) - 25 x 11 જણાવેલ છે. Remarksમાં ધર્મશાસ્ત્ર જણાવેલ છે. વોલ્યૂમ ૪ના પૃ.૮૬૪ પર આ વિગત છે.

આ બધી વિગતો પરિચય માટે જરૂરી છે પણ સાથે સાથે કૃતિનો અભ્યાસ કરતાં એક-બે અન્ય વિગતો પરત્વે ધ્યાન દોરવું જરૂરી સમજું છું.

કૃતિનો વિષય યોગ બાબતનો છે. સાચો યોગી કોને કહેવાય, કેવી રીતે તેને ઓળખવો, યોગમાર્ગમાં આવતા પ્રલોભનોથી દૂર રહેવું પડે તે કયા છે તેની વિગત આપી સમજાવવું, કેવી રીતે બોલવું, ચાલવું, રહેવું-ફરવું તેની સમજ સાથે સાચા આહાર, વિહાર, નિહારને સમજાવતા મન, વચન અને કાયા એકરૂપ હોય અર્થાત્ જેવો વિચાર, તેવી વાણી અને તેવું વર્તન જરૂરી એ ભારપૂર્વક સમજાવેલ છે. સૌથી મોટી વાત તો એ કરી કે યોગ અંગીકાર કરવાનું લક્ષ્ય માત્ર ને માત્ર મોક્ષપ્રાપ્તિનું જ હોય, પ્રલોભનવશ થનાર જોગી કેવું આચરણ કરે છે તેની વાત પણ કરી છે. યોગદીક્ષા જેની પાસે લો છે, તે ગુરુની પસંદગીમાં માપદંડ પણ દર્શાવ્યા છે. સાચો ગુરુ જ

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૬૦, વર્ષ ૨૦૨૩, પૃ. ૧૧૧-૧૩૬. ISSN 2250-0391

* ૮, જયમા સોસાયટી, સેટેલાઈટ માનસી ક્રોસ રોડ, પાણીની ટાંકીની બાજુમાં, સેટેલાઈટ કોમ્પલેક્ષની બાજુમાં, અમદાવાદ-૩૮૦૦૧૫, M:07926765442

મુક્તિમાર્ગ દેખાડશે. તેવી રીતે સાચો શિષ્ય કોને કહેવાય તે પણ દર્શાવ્યું છે. માર્ગચ્યુત સાધક માટે નરકનાં દ્વાર ખૂલે છે.

આમ યોગમાર્ગની પગદંડી દર્શાવનારી આ કૃતિ અવારનવાર ગોરખનાથનું નામ કહે છે. માર્ગચ્યુત થયેલા ગુરુને પણ (મત્સ્યેન્દ્રનાથને) 'ચેત મછંદર, ગોરખ આયા' કહી ચેતવે છે તેવા આ યોગીશ્વર ગોરખનાથે પ્રબોધેલા યોગમાર્ગને આ કૃતિના સર્જક શ્રી ગરીબદાસ કવીશ્વરે તત્કાલીન લોકોની સમજમાં આવે તેવી બોલચાલની ભાષામાં સમજાવેલ છે, અર્થાત્ તે અગાઉ પ્રરૂપેલા માર્ગને જ દર્શાવે છે.

આ સર્વ વિગતો કર્તાએ ૬૯ કડીઓમાં કરી છે. કૃતિ સંપૂર્ણ થયે છૂટાછવાયાં અક્ષરો થકી જે લખાણ છે તે આ કૃતિનો અભ્યાસ કરનાર મુનિઓની વાત હોય તેમ જણાય છે. ૬૭ જેટલા સાધુઓનાં ઠાણાં છે જેઓમાંથી બે મુનિવરો પરમુ ભુદરના ઘેર નગરે આવ્યા છે. બાકીનાં વન, જંગલમાં રહે છે. ધર્મજ્ઞાન આપવા કાજે, સાધુઓ શહેરમાં વસવાટ કરતા પણ ખરા. દિગંબર જૈન સાધુઓ નગર, ગામમાં વિહરે છે અને ચાર્તુમાસમાં એક સ્થાને સ્થિર બનતા હોય છે. જંગલમાં રહેવાની વાત આમ ઘણી જૂની છે. કદાચ કૃતિ પણ ઘણી જૂની હોઈ શકે છે અહીં રચનાસંવત આપવામાં આવી નથી.

કર્તા ગરીબદાસે પોતાને કવીશ્વર કહ્યા છે એ સૂચવે છે કે તેમની એકથી વધુ કૃતિઓ હોવી જોઈએ. અંતે બહુ સ્પષ્ટ છે કે કર્તાનું વિશેષણ કવીશ્વર છે. નામ ગરીબદાસ છે. (જુઓ કડી-૬૯માં ''ગુરુનો દાસાનદાસ ગરીબદાસ કવીશ્વર એમ કહઈછઈ છે.'')નામ ઉપરથી આ કૃતિ જૈન મુનિની જણાતી નથી જૈનોમાં વચ્ચે યતિપરંપરા ચાલી તે વખતે આવાં નામ હોય તો મારી જાણમાં નથી નામને છેવાડે 'દાસ' કે 'ગિરિ' ના લટકણ જૈન મુનિઓની પાછળ લાગતાં નથી તેથી આ જૈન કૃતિ નથી તે નક્કી. હા, તે ધર્મશાસ્ત્ર કહેવાય કારણ એમાં યોગના શાસ્ત્રની વાત છે. કૃતિ યતિશ્રી પાસેથી ભેટ મળી છે. તેથી તેને 'જૈન' કૃતિ ગણવામાં આવી હોય તેમ બને.

દેવનાગરી લિપિમાં લખાયેલી આ કૃતિના ચરણની ઉપર ટબો આપવામાં આવેલો છે. તેની ભાષામાં હિન્દી ગુજરાતીનું મિશ્રણ મારવાડી ભાષા જેવું જણાય છે. તત્કાલીન સમયની લોકબોલી કહેવી એ વધુ યોગ્ય છે. પ્રાસયુક્ત રચના હોવાથી કંઠસ્થ કરવામાં સરળતા રહે તેવી છે. ટબામાં ક્યારેક જૈન પરિભાષાનો ઉપયોગ થયો જણાયો છે તેથી આ ટબો જૈન મુનિવરો માટે લખાયેલો હોઈ શકે. ટબો લખનારનું નામ અહીં ન હોવાથી તે ગરીબદાસે જ લખ્યો હોઈ શકે.

બોલચાલની ભાષા હોવાથી અહીં અનુસ્વાર તથા જોડણીની અરાજકતા એટલે કે તેમાં એકવિધતા જોવા મળતી નથી. એક જ ચરણમાં એ જ શબ્દ અનુસ્વાર સાથે અને અનુસ્વાર વિનાનો મળે. જો કે, અહીં વર્ણ્યવિષય ભાષા શુદ્ધિની અપેક્ષાવાળો ન હોય તે સ્વાભાવિક છે.

આવી રીતે સ-શ/ત-ટ/ડ-દ/ન-ણ એમ તાલવ્યને સ્થાને મૂર્ધન્ય અને મૂર્ધન્યને સ્થાને તાલવ્ય વ્યંજન પ્રયોજાયેલ છે. દા.ત. દેસ-વિદેસ/એતલે/ડંડાસન વગેરે.

લિપ્યંતર કરતી વખતે જ્યાં શબ્દ કે અક્ષર સુધારવા જેવો લાગ્યો છે. તેને ગોળ કૌંસમાં, જ્યાં શબ્દ કે અક્ષર ઉમેર્યો છે તેને ચોરસ કૌંસમાં, કેટલીકવાર શબ્દ કે અક્ષર પુનરાવર્તિત થયો હોય તેવો અક્ષર શબ્દ રદ કરવા છગડિયા કૌંસનો પ્રયોગ કરેલો છે. વળી અહીં જ્યાં જ્યાં 'ખ'ના અર્થમાં 'ષ' છે ત્યાં સુધારો સૂચવ્યા વિના 'ષ'નો ખ કર્યો છે. પ્રાચીન લિપિમાં 'ષ' ખ માટે પણ વપરાતો હતો.

કડીઓને નંબર આપવામાં આવ્યા છે ત્યાં '૫૨' મી કડીને '૫૩' મો નંબર આપેલ છે. '૫૩'મો નંબર તો છે જ. આથી, પ્રથમ '૫૩' છે ત્યાં '૫૨' એમ સુધારીને લખેલ છે. વળી, ૧૮મી કડીમાં બીજું પદ લખાયું નથી, માત્ર ત્રણ પદો આપેલા છે. સંદર્ભને આધારે તે બીજું પદ લાગવાથી તે સ્થાને પદ ન હોવાની સૂચના આપી છે. ૩૬મી કડીમાં ત્રીજા ચરણમાં આગળ પછીના બે અક્ષરો ચહેરાયા હોઈ ઉકેલી શકાયા નથી તેને બે ડેશથી દર્શાવ્યા છે.

૭મી કડીમાંના ટબામાં અંતિમ ચરણોમાં 'અર્થ દષ્ટાંત' લખીને ૮મી કડી બાદ, ઉપર નિર્દેશિત દષ્ટાંત પાદટીપમાં આપેલ છે જેમાં જીવનાં લક્ષણો જણાવવામાં આવ્યા છે. આ દષ્ટાંત લિપ્યંતરમાં ૭મી કડીના ટબા પછી તરત જ લેવામાં આવેલ છે.

શ્રી ગોરખનાથના યોગને સમજાવતી, ટબા સાથેની આ કૃતિ ખરે જ, યોગમાર્ગે ચાલનાર પ્રત્યેક સાધકને ઘણી ઉપયોગી માહિતી આપે છે એ તો ખરું પણ તે લોકબોલીમાં તેની લિખાવટ હોઈને તે ખરે જ, તત્કાલીન સમયના સૌ કોઈ જ્ઞાની કે આ માર્ગે પ્રથમ પગલું માંડનાર તમામને ઘણી લાભદાઈ બની હશે જ.

॥ શ્રી ગરીબદાસ રચિત 'યોગપાવડી'નો મૂળપાઠ ॥
(ટબા સાથે)

ક્રોધ, લોભ, દૂરિ પરિહરિવા, પરિહરિ મમતા માયા ।
ગોરખનાથ ઈસી ઉપદેસી, કણમારીયા બુઝવાયા ॥૧॥

ટબોઃ ॥र्द०॥ અથ શ્રી યોગપાવડીનો ટબો લિખિઇ છે.

ક્રો૦ ક્રોધ અને લોભ એ બે વેગલા તજવા, ક્રોધ, લોભ ન કરવા.

પ૦ અહો યોગીશ્વર શિષ્ય, મમતા મૂછા શરીરાદિક નીધ ને માયાકપટ એ છૈ તજિ.

ગો૦ શ્રી ગોરખનાથ એહવો ઉપદેશ આપૈ છંઈ

ક૦ કણૈરીષાય યોગીનૈ સમજાવવાનૈ અર્થૈ ઉપદેશ દ્યૈ છૈ. (૧)

ધબક ન બોલણા, ધબક ન ચલણાં, જોઈ મુકવા પાયા ।
દેસ વિદેસ એણી પરિભમણા, ભણે તે ગોરખરાયા ।।૨।।

ટબોઃ

ધ૦ અહો યોગીશ્વર, ઉતાવલો, અણ વિમાસ્યો વચન ન બોલિયૈ અનૈ પગનૌ ધબકો ધાયૌ તિમ હીડીયૈ નહિ, જતનાયૈ હીડિયૈ.

જો૦ માર્ગે હીડતાં જીવજંતુ જોઈનઈ પગ મૂકિયૈ.

દે૦ દેશૈ અથવા પરદેસૈ એણી પરૈ જતનાયૈ વિચરવૌ

ભ૦ કહે છે શ્રી ગોરખરાય (૨)

કોપીનં ઉપર, વસ્ત્ર ન રખણા, હરિણા (રહિણા)વનિ સમસાણાં ।
મુગતિ કે કાજિ જોગી હોસી, તો રહિના એકિ ધ્યાન્યા ।।૩।।

ટબોઃ

કો૦ એક પહિરનવાનૈ કોપીન રાખવા, પિણ બીજો વસ્ત્ર ન રાખવો.

હ૦ હા, રહિયૈ તો વનમાંહિ અથવા સમસાંન માંહૈ એકાંતે રહિયૈ.

મુ૦ જો મુગતિ પાંમવાનૈ અર્થૈ યોગમાર્ગ અંગીકાર કરસ્યૈ

તો૦ તો એકાંગ્ર ચિત્તપણૈ ધ્યાંન માંહૈ રહિવઉં (૩)

માનેપૂતા મ ધરિસિ માન, અપ્યમાને નહીં ખેદં ।
ગીતગાંન સું કાંન ન દિણાં, મુગતિ મારગ એ વેદં ।।૪।।

ટબોઃ

મ૦ અહો પુત્ર વત્સ, માંન પૂજા પાંમીનૈ મનમાં અહંકાર માંન ધરીસ માં

અ૦ અને કોઈકે અપમાન અનાદ(ર) કીધો તો પિણ ખેદ દ(દિ)લગા(ગી)રી ન ધરી.

ગી૦ કોઈ ગીત ગ્યાંન રાગરંગ કરતો હોઈ તો તિહાંકાન ન દેઈસ.

મુ૦ એતલે કાનનૈ વસિ પોહોચીસમાં એ મુગતિ પામવાનો માર્ગ જાણવો. (૪)

મીઠા મધુરા આહાર ન લેણા, સબરસ તિ પરિહરવા ।
ઈંદ્રીપોષ કહે ન કરવા, એ મારગ તુઝ તરવા ।।૫।।

ટબો:

મી૦ મીઠો અને મધુરો એહવો આહાર લેવો નહી, જીભનો સ્વાદ ન કરવો.

સ૦ સરવ જે ભલા એક રસની જાતિ છૈ તે ખાટા, ખારા, તીખા પ્રમુખ સ્વાદ તજવા.

ઈ૦ જે વાતૈ ઈંદ્રીનૈ પોષ ઉપજે તે વાત ન કરવી

એ૦ અહો પુત્ર, એ માર્ગ મુઝનૈ તરવાનૈ અર્થૈ કહિયૈ છૈ (૫)

મીટી ઉપરિ પાઉ ન ધરણા, જોગી કૌઉ ન કરેણી ।
ગંગનમંડળ ઊપરિ પાગરણાં, સેજ બીછાઈ ધરણી ।।૬।।

ટબો:

મી૦ અહો પુત્ર, માટી પૃથવીકાય ઉપરૈ પગ દીજિયૈ નહીં

જો૦ અને યોગીશ્વરને કો. અગ્નિ તાપચીનૈં કરવી નહીં

ગ૦ અહો પુત્ર, સોવાંની વેલાયૈ ગગન આકાસ ઉપરિ ઉઢવૌ એતલૈ વસ્ત્ર ઉઢવો નહીં.

સે૦ અને તલે પિણ કાંઈ ધરતી વિના પાથરવૌ નહી, ભૂમિ સૂવૌ (૬)

ના(ની)લી સુકા(કી) હરિ મત ખુટિ, બહુ મત પીજે આપ ।
બહુ અપરાધે કસ(રા)થી પુત્રા, મનમાં મ ધરિસિ તાપ ।।૭।।

ટબો:

ના(ની)૦ નીલા તથા સુકા હરીકાય વનસ(પ)તી ચૂંટીસ મા.

બ૦ ઘણો પાણી પીઈસ મા.

બ૦ ઘણો અપરાધ પુનહ કોઈ કરે તો પણિ તેહથી અહો પુત્ર,

મ૦ મન માંહે સંતોં(તા)પ દુખ મ ધરીસ=અથ દષ્ટાંત આગમ ચંતાનાય, વસ્તમીન

(પાદટીપમાં આપેલ દ્દષ્ટાંત નીચે મુજબ છે.)

ગઈ વસ્ત્ત સોચે નહિ, આગમ ચંતાનાય ।
વરતમીન વરતે સદા સોં જ્ઞાની જુગસાય ।।૧।।
જ્ઞાની ધ્યાનમાં મગન રહેં, રાગાદિક મલ ખોય ।
ચીત ઉદાસકર ની કરે, સો કર્મબંધ નહી હોય ।।૨।।
સમતા, રમતા૨. ઉર્ધતા ૩. વ્યાયકતા ૪. સુખ ૫ ભાસઃ
વેધકતાઃ ચેતન {ન}તાએ સર્વ જીવ વાલાંસ ।।૩।। જીવલક્ષણ દ્દષ્ટાંત

અમર ભણી દેવી મત તાકે, પવન રોધ કરિ પૂતા ।
અજરાંમર હોણકી આસા, એ મારગ અવધૂતકા ।।૮।।

ટબોઃ

અ૦ અમર દેવતાની દેવી દેવાંગનાની પણિ વાંછા ન કરીવી

પ૦ પવનનો રોધ કરવો એતલૈ પવનાસ્યાસ વાવો હે પુત્ર

અ૦ જોઉઝ જરા મરણ રહિત થાવાની આસ્યા છૈ તો

એ૦ એસું તુઝ આગલિ કહું છું તે માર્ગ અવધૂતની છૈ. (૮)

પરિનિંજ્ઝા તું મ કરિસિ બાવા, મા કરિસિ આપવખાણં
ઇચ્છારોધ કરે તુ પુત્રા, યોગ હેં એહ પરિમાણં ।।૯।।

ટબોઃ

પ૦ પર બીજી કોઈનૂં નિંદ્યા ભૂડાઈ ન કરીસ હે બાબા શિષ્ય.

મ૦ અનૈ પોતાનૌ વખાણ વડાઈ ન કરીસ

ઈ૦ અને ઇચ્છારોધ કરજ્યે પિણ મન મૌકલો મ મૂકીસ પુત્ર.

યો૦ યોગ લીધો એ વાતે પ્રમાણ ચઢૈ છંઈ. (૯)

અખાલ પખાલાતા ઊનહ કરણા, ધોઈવા હાથ મત પાય ।
માઈ સબ નિજ માઈ સરિખી, ચિત્ત રાખણા એકકઠાય ।।૧૦।।

ટબો:

ઉ૦ ઉખાલ વમન જાણી ન કરવો. પખાલ રેચ પિણ ન લેવો. એતલૈ અતિ માત્રામાં આહાર ન લેવો. પછંઈ

ધો૦ વમન વિરેચ કરવા પડૈ. હાથ પગ ધોવા નહીં

મા૦ અનૈ જેતલી સ્ત્રીમાત્ર છે તે સર્વ માતા સરીખી જાણવી.

ચિ૦ મન પોતાનો વસિ કરી એકાગ્ર રાખવો. (૧૦)

છાંની વાત ન કરણી પૂતા, કિસકે કાનું લાગી ।
વાટિ ચલતા વાત ન કરણી, જત હોવઈ વઈરાગી ।।૧૧।।

ટબો:

છાં૦ છાની વાત કરવી નહિ અહો પુત્ર

કિ૦ કોઈનૈ કાને લાગીનૈ છાની વાત ન કરવી.

વા૦ માર્ગ માંહિ ચાલતા વાત કરવી નહી.

જો૦ જો પુત્ર તૂં વૈરાગી છે તૌ એ ક્રિયા આદરિ (૧૧)

કથા કલ્લૌલ વાત પરિહરજે, હાસુ મ કરિસિ બાપા ।
યોગ ધરિનઈ એ તું કરિસી, તુ વિગોવાઈસ આપા ।।૧૨।।

ટબો:

ક૦ કથા, સ્ત્રીકથા, પ્રમુખ તથા કલ્લોલ મસ કરી પ્રમુખ વાર્તા ત્યજઈ.

હા૦ હાસ્ય(મ) કરીસ એ બાબા

યો૦ યોગ લેઈનેઈ પૂત્ર એ પ્રકારે કરીસ તો

તુ૦ તુ પોતાનો આત્મ વિગોવીસ પિણ કોઈ આત્માર્થ નહિ સરે (૧૨)

પીપલ વડ હેઠે નહુ રહણા, ન કરણા તીહાં વાસા ।
તસકે બીજ ચંપાવે પુત્રા, સબકી સરખી આસા ।।૧૩।।

ટબો:

પી૦ પીપલ તથા વડ હેઠલિ યોગીશ્વરને રહેવો નહી.

ન૦ તે ચામૈં વાસો રહવો નહીં

ત૦ તિહાં રહતાં તેહના બીજ પગ તલૈ આવે, ચંપાયૈ

સ૦ બીજ તો જીવા છૈ અને સર્વ જીવમાત્રને આસા જીવવાની એક સરીખી (૧૩)

દેખી યોગી ઇંદ્રી બલવંતી, તુઝકુ નરગિ પાડસિ ।
યોગ લેઈને મન તો ન રૂંધીસ, તુ પેછિ પસતાસા ।।૧૪।।

ટબો:

દે૦ હે યોગીશ્વર, પાંચ ઈંદ્રી બલવંત છંઈ જોરાવર તે ઇંદ્રી

તુ૦ તુઝને નરહનૈ વિષે પાડસ્યૈ તે માટે ઇંદ્રીઉનો વિશ્વાસ ન કરીસ

યો૦ જો યોગ લીધા કેડૈ મન રુધીસ્ય નહી વસ્ય નહીં કરે તો

તુ૦ પછે પછિતાવવો પડસ્યઈ (૧૪)

પુત પારવતી આસન રહણા, ગુરુડાસણિ ધરિ ધ્યાન ।
પદમાસણ ડંડાસણા કરણા, ઈસા બ્રહ્મજ્ઞાન ।।૧૫।।

ટબો:

પુ૦ અહો પુત્ર, બૈસવૌં તે પાર્વતી આસનેં એતલૈ ભગાસનૈ બૈસવો.

ગુ૦ અને ધ્યાન ધરવોં ગરુડાસ(ન) કરી ધ્યાન ધરવો

પ૦ અથવા પદમાસન અને દંડાસનૈ બૈસવો તથા ધ્યાન કરવો

ઈ૦ એહવોં બ્રહ્મજ્ઞાન છંઈ, આસન જ યોગાસન હઠપ્રદીપિકા પ્રમુખ યોગાભ્યાસ{સ}ના શાસ્ત્ર છૈ તેહમાં કસા છૈ તે શાસ્ત્રથી જાણીયૈ (૧૫)

વીરાસણ ભદ્રાસન રહિણા, ધરવી જોગહમુદ્રા ।
લેઈ લાઈ તાલી ઉપજાવી, પુત્ર પરહરવી નિદ્રા ।।૧૬।।

ટબો:

વી૦ વીરાસનૈ તથા ભદ્રાસનૈ બેસવો તથા ધ્યાન ધરવો.

ધ૦ અહો પુત્ર, યોગની મુદ્રા ધરવી

લે૦ પછી લયલીન થઈ, ધ્યાન ધરીનૈં તાલી ઉપજાવવી

પુ૦ અહો પુત્ર, નિદ્રા કિવારૈ કરવી નહી (૧૬)

જુ ડુમ કારસી, તુહિ મરસી, ડુમો કૂર ગતી હોસી ।
એક જ પડ પોસેવા કારણિ, કાહો જોગ વગોસી ।।૧૭।।

ટબો:

જુ૦ જો પુત્ર, દંભ કપટ કરૈ તો પિણ મરણનો સમૈ ન ટલૈ અને

ડુ૦ {કપટ} કપટથી પ્રાણી દુર્ગતિગામી થાયૈ

એ૦ અહો પુત્ર, તે મારૈં એક પિંડ પોતાનૈં પોષવાનંઈ અર્થે

કા૦ એહવા કપટ પ્રપંચ કરી પોતાના યોગસ્થાનૈં વિગોવવો પડે. (૧૭)

પુત્ર પીઆરા સુખ દુખ દેખી, મ મુકીસ ઈહ જોગી(ગ)
ધ્યાન ધરણાં, આસનહુ કરણા, દેસી બંછિત ભોગા(ગ) ।।૧૮।।

ટબો:

પુ૦ અહો પુત્ર, બીજી કોઈનઈ સુખ તથા દુખ ઉપનો દેખીનઈ

મ૦ પોતાનો યોગ ધ્યાન મ મૂકીસ, હર્ષશોક ન કરીસ.

ધ્યાં૦ અહો ! યોગીશ્વર ધ્યાનનોં ધરવો અને આસનોન(ને) કરવો.

દે૦ તેહ જ તુઝનઈ વાંછિત સુખ દેસઈ (૧૮)

દેખિ પુત્ર દિ(ન) કરકી કર્ણા, (અહીં બીજું પદ લખાયું નથી)
યોગ લેઈ કછુ સાધન ન કીયા, તુઆલિ ભવભી ગમીઉ

ટબો:

દે૦ અહો પુત્ર, તું જોઈ જે દિનકર સૂર્ય સરિખા પ્રતાપી પણ (અહીં આ પંક્તિનો ટબો નથી, કારણ પંક્તિ લખવી ભુલાઈ છે.)

યો૦ એ સૂર્યને દૃષ્ટાંતે યોગમાર્ગ લેઈનઈ જો કોઈ સાધન કરણી ન કીધી તો

તુઆ૦ તો આલે સ્વાર્થ વિના પોતાને જન્મ ખોયો

પરવ મહોચ્છવ આસન કરણી, તહુ ખાણી મીઠાઈ ।
આસહથી મન વિકલ હોઈસી, જાસિ જોગ ઠકુરાઈ ॥૨૦॥

ટબો:

પ૦ પરબ લોકીક દીવાલી પ્રમુખ આવ્યાં તથા મહોછવ દસરા વો પ્રમુખ આવ્યો, આસ્યા ન કરવી

ન૦ અહો પુત્ર, મીઠાઈ મીઠી સુખડી ન ખાવી

આ૦ અહો પુત્ર, જો આસ્થા કરીસ તો તાહરુ મન વિકલ ફિકર ચંત રહસ્યર

જા૦ તે વિકલ્પપણે કરી, યોગની સાહિબી જાસ્યઈ (૨૦)

અરસ વિરસનો અકલ સમ કલસ, પેટ ભરી નહુ ખાણા ।
દેઉ ભાડા કાયા કેતાઈ, જું એ નો હિ અપમાણા ॥૨૧॥

ટબો:

અ૦ અહો પુત્ર, યોગીશ્વરને આહાર કરવો અરસ-વિરસ, લૂખો સૂખો દેહને ભાડા માત્ર કરવો પિણ અલક સમ કલસ ચોપડો મીઠો આહાર કરવો નહીં

પે૦ પેટ ભરી ખાવું નહીં

દે૦ કાયાને ભાડો દેવો, ભાડે દીધા પાખે શરીર ચાલે નહી

જું૦ જિમ જિહાં યોગીશ્વર માંહિ પુત્ર, તાહારો અપમાન ન હોઈ (૨૧)

અમરી વજરી રોધન કીતા, પવન પિંડ નવિ ધોઈ,
જિહવા ઇદ્રી વસિ નહુ કીત્રી, તે અજરામર કયુ હોઈ ॥૨૨॥

ટબો:

અ૦ અમરી કહીયેં લઘુનીતિ અને વજરી કહીયે વડી નીતિ રુધી નહી

પ૦ અને હે પુત્ર, પવન કરી નૈ પોતાની દેહ ધોઈને નિર્મલ કીધો નહીં, પવન સાધના કીધી નહી.

જિ૦ અને જીભ વસિ નથી એતલે જીભનો સ્વાદ ન જીત્યો.

તે૦ તે યોગ લીધો તો સ્યૂ થયો પિણ અજરામર પદ ન પામઈ (૨૨)

સનાંન દાંન તેહુ જ કરણી, જ્ઞાન, ધ્યાન, મનિ ધરણા ।
અઈસા યોગ ધાર તુ યોગી, જ્યું નુ હુંઈ આવાગમ{૨}ણા ।।૨૩।।

ટબો:

સ૦ સ્નાન અને દાન એ બે તેહુ જ નિત્યૈ કરવા તેહ કેહા.

જ્ઞા૦ જ્ઞાન અને ધ્યાન એ બેરૂ, સ્નાન અને દાન એ બે મનમાં નિત્યે ધરવા.

અ૦ એહવો યોગનો માર્ગ તૂ મનમાં ધરજે, હે યોગીશ્વર

જ્યુ૦ જિમ તુઝને ન હોઈ આવાગમન.

મન મેલચ્છડૈ સાહુ સનાનં, જીવ રાખઈ સો દાનં ।
જ્ઞાન તચ્ચં અસિંતર ધરણા, અઈસા બ્રહ્મજ્ઞાનં ।।૨૪।।

ટબો:

મ૦ મનનો મૈલ, કપટ, દ્રોહ ઇત્યાદિક છાંડવો તે સ્નાન કહીયે

જી૦ અનઈ જીવની રક્ષા કરિ જે દયા પાલીંઈ તેહ દાન.

જ્ઞા૦ અને જ્ઞાન તે કહીયૈ જે અસંતર તરત્વ (તત્ત્વ?) જ્ઞાન સમઝીયૈ.

અ૦ હે પુત્ર, એહવો બ્રહ્મજ્ઞાનનો સ્વરૂપ છંઈ (૨૪)

વઈરાગી તુ યોગ લેઈનઈ, અઈસી કરણી મનિ ધરજે ।
માંકડ કૂકડ સબહિ યોગિની, પહિલું એ પરિહરિજે ।।૨૫।।

ટબો:

વ૦ અહો પુત્ર, જો તેં વઈરાગ્યે કરી યોગમાર્ગ કીધો છંઈ તો હવે યોગ લેઈનિ

અ૦ એહવી કરવી નિય(ય)ય(મ) મનમી રાજ્યે (રાખ્યે)

માં૦ માંકડો પાપહારીયો મન અને કૂકડો ક્રોધ

પ૦ એ છૈ પ્રથમ પહિલૂં ત્યાંગ કરીનેઈ પછે કરણી કરજ્યે. (૨૫)

બ્રહ્મજ્ઞાન પુતા નિતિકા પઢણા, જોગ અઈસા લહીંઈ ।
શ્રી ભાગવત ગીતા શ્રવણે સુણીઈ, ગુરૂડે બોલે રહીંઈ ।।૨૬।।

ટબો:

બ્ર૦ હે પુત્ર, બ્રહ્મજ્ઞાન ભગવદ્‌ગીતા પ્રમુખ હવે સાંભણ(લ)વા ગુણવા

જો૦ યોગમાર્ગ એહ બોલે શ્રી૦ તે પ્રકટ પણઈ દેખાડઈ છઈ ભગવતગીતા કાને પડી પણિ સાંભલીનઈ ગુ૦ ગુરુનો વચન ઉથાપીઈ નહી. (૨૬)

કરણી કથણી એક જો હોસી તવ પામાસિ કેઈલાસં ।
કરણી કથણી જુદી પડેસી, એ તુ જોગ વિનાસં ।।૨૭।।

ટબો:

ક૦ હે પુત્ર જિવારૈ તાહરી હરણી અને કથણી-કહણી એ બૈ એક સ્યે એ તલે મનનો શલ્ય ટલસ્યે.

ત૦ તિવારૈ તૂ કૈલાસ કહતાં મુક્તિપદ પામીસઈ

ક૦ અને કરણી કહણી એ બે જુદી પડસ્યૈ એતલૈં મનનો કપરશીલ નહીં ટલે તો

એ૦ એહ તો યોગનો વિનાશ જાણજયો (૨૭)

જોગી હોઈ સો રાત ન ખાવેઈ, દીસે નીદ નહુ કરણી(ણા),
એક પિંડ માહોકધી ઊન ધરણા, એઈસી જોગ આચરણા ।।૨૮।।

ટબો:

જો૦ હે પુત્ર, યોગીશ્વર હોઈ તે રાત્રે જિમંઈ નહીં

દી૦ અને દિવસઈ નિદ્રા ન કરંઈ

એ૦ એક પિંડ જે ગ્રાસ માત્ર તે માંહિ કપડાહિ આહાર લેવો નહી.

અ૦ એહવા અતિ કઠિન યોગમાર્ગની આચરણી કમાઈ છંઈ (૨૮)

મુરગાની પરિ એક રીતિ, જોગી એણિ પરિ સોવિ ।
એકૈ આખેં નીદ્રુ જ કરણી, દુજિ કાલઉ જોવિ ।।૨૯।।

ટબો:

મુ૦ જિન સૂવાની વેલાયૈ કૂકડો પગ સંકોચીને સૂયૈ તિમ યોગીશ્વર પગ સંકોચીને સૂવૈઈ

જો૦ પિણ પગ લાંબા કરીનઈ સોવઈ નહી.

એ૦ એંકૈ આંખે નીદ્રા કરંઈ પણિ બૈ આંખ્યો મીચીને આધાર નિદ્રા ન કરઈ

દુ૦ બીજી આંખિ ઉઘાડી રાખિ કાલનિદ્રાથી જાગી ઊઠીને ધ્યાનાદિક કરવાનો કાલ જોતા રહૈ એહવી અતિ અજય નિદ્રા કરઈ (૨૯)

જતી જોગીકું તબ હી ચલણા જબ રાહ હોઈ ચાલતા ।
સુરજ કેરણે સબ કછૂ દીસંઈ, યોગી ભલા સૌ ફિરતા ।।૩૦।।

ટબો:

જ૦ અહો પુત્ર, જતી તથા યોગીને પણિ ત્યારે જ ચાલવો,

જ૦ જ્યારે માર્ગ ચાલતો થાઈ

સુ૦ સૂરજને કિરણે કરીનૈં સર્વ જીવજંતૂ નજરે આવે.

યો૦ યોગીશ્વરને ફીરતાં રહવઉં તે જ ગુણનો કારણ છઇં પણિ એક ઠામિં રહવોં ભલું નહી. (૩૦)

પુતા ક(કિ)સકી આસ નહુ કરણી, આસ ઘરણી જગદીસાએ ।
આસા છોડી ભયા ઉદાસા, સબ જુ(જ)ગ ઉ(સ)કા દાસા ।।૩૧।।

ટબો:

પુ૦ અહો પુત્ર, યોગીશ્વર નઈ કોઈ ગૃહસ્થાદિકની આસ્યા ન કરવી

આ૦ આસ્યા તો એક પરમેશ્વરની ધરવી

આ૦ એમ જે આસ્યા લાલચિ મૂકીને જગતથી ઉદાસ થયો એતલે વિરક્ત થયે

સ૦ સર્વ જગ તેહ મહાપુરુષનો દાસ છઇં (૩૧)

દામ દુનીઆકુ દુઃખ દેખલાવે, જોગી સોઈ ન રાખે ।
બાલે બૂઢેકું સુખ ઉપજાવિ, જોગી તઈસા ભાખઈ ।।૩૨।।

ટબોઃ

દા૦ દામ માલ ધન તેહ સંસારને દુખ દેખાડે. ધન એકઠોં કરવા નઈ પ્રાણી અનેક અનર્થ કરે છંઈ.

જો૦ જોગેશ્વર હોઈ તે તેહ ધનનઈ ન રાખઈ.

બા૦ બાલકને તથા ગરઢાને સાંભલીને સુખ ઉપજાવે પણિ અસાતા ન ઉપજાવે.

જો૦ જોગીશ્વર એહવો એહવો પ્રિય પથ્ય વચન બોલે. (૩૨)

કાહેકુ પુતા જટા વધાવે, કાહેકુ ભસમે લગાવિ ।
તબ તાંઈ તુઝ મુગતિ ન પાવે, જબ સમતા ભાવ ન આવિ ।।૩૩।।

ટબોઃ

કા૦ સ્યાને કાજે અહો પુત્ર જટા વધારઈ છંઈ?

કા૦ સ્યાને કાજે શરીરનઈ ભસ્મ ચોલઈ છંઈ?

ત૦ તિવાર લગે તૂ મુગતિ નહી પામે.

જબ૦ જિવાર લગઈ સમતા ભાવ નહીં આવે. શત્રૂ મિત્ર, નૃણમણિ એ સરખા નહી જણાઈ (૩૩)

વૈરા(રી) વલ્લભ જબ સમ લેખવીસિ, સોવર્ણ ત્રણા સમાન ।
દીનાનાથે ઈસા દેખલાયા, અઈસા બ્રહ્મજ્ઞાનં ।।૩૪।।

ટબોઃ

વૈ૦ અહો પુત્ર, પોતો(તે) વૈરી તથા વલ્લભ જે મિત્ર એ બે સમાન કરી લેખવસી નહીં,

સો૦ અને સોનોં તથા તૃણો એ બે સમાન કરી લેખવસી નહી,

દી૦ દીનાનાથ શ્રી ભગવાને એહવો માર્ગ દેખાડ્યો છંઈ.

અ૦ એહવોં બ્રહ્મજ્ઞાન જાણપણાનો સાર છંઈ. (૩૪)

સર્પની પરે સમુદા(ય)થી નાસઈ, નરગિ પાડિ સજનાં ।
ડાકણની પરિ સુંદરીથી અલગુ, જોગી એ ધનધનાં ।।૩૫।।

ટબો:

સ૦ જિમ કોઈક સર્પની દેખીનઈ વેગલો નાસે તિમ પોતાની નાતિ, જાતિ, કુટુંબથી વેગલો નાસ્યઈ,

ન૦ સજન તે નરગે પડવાની સામગ્રી છઈ

ડા૦ અનિ જિમ ડાકણિથી અલગા રહવાનાં કરે તિમ સ્ત્રીથી અલગા રહઈ.

જો૦ એહવો યોગીશ્વર હોઈ તે ધન છે. (૩૫)

યોગી હોય સો જુગતુ બોલઈ, પુઠિ મસ મહુ દૂખાવિ ।
આગલે...બહુત ગુણ દેખી, આપિ ઉચ્છા ભાવિ ।।૩૬।।

ટબો:

યો૦ યોગીશ્વર હોય તે જુગતૂં એતલે સાચૂ અનંઈ મીઠો, ગમતો, થોડો બોલઈ

પુ૦ પિણ માંસ જે પૂઠિ પાછલિ ભૂડોં બોલવો એતલે કોઈનો ભૂડો અવગુણ મર્મ ન કહઈ

અ૦ બીજાના ગુણ ઘણા દેખે. અવગુણ ત્યજી નંઈ ગુણ ગ્રહઈ,

આ૦ પોતે પોતાને ઉછો(ઓછો) ચિંતવે, પોતાના અવગુણ દેખે. (૩૬)

બડે તખત પંચ દિન રહિણા એક દિન રહિણા ગામિ ।
હજાર હાથ વસતીથી દુરિ રહિણા, ગિરિ આરામિ ।।૩૭।।

ટબો:

બ૦ મોટો તખત હોઈ સહર તિહાં યોગીશ્વરને પાંચ રાત્રિ રહવો.

એ૦ અને એક રાત્રિ છોટો ગામ હોય તિહાં રહવો.

હ૦ ગામની વસતી હોય તિહાંથી એક હજાર હાથ એતલે પાંચ ગાઉ વેગલા રહેવો.

૨૦ તે પણિ જિહાં પર્વતે તથા વનખડે એકાંતસ્થલ હોઈ તિહાં રહેવો. (૩૭)

મંત્ર, તંત્ર, ના જડીબુટી, અઘોરમંત્ર નહુ જવણા ।
ક(કિ)સહે ઉપરિ રોસ ન ઘરણા, જિમ તુહિ આવાગમણા ।।૩૮।।

ટબો:

મં૦ મંત્ર તથા તંત્ર તથા જડીબૂટી એ ઉષધ વૈદક ન કરવા.

અ૦ અને આઘોર મંત્ર કોઈ મૈલો મંત્ર તે જપવો નહી જેહથી હિંસ્યા ઊપજે.

ક૦ કોઈ ઊપરિ ક્રોધ કરવો નહીં.

જિ૦ જિમ સંસાર માહિ આવાગમન હોઈ. (૩૮)

અતિ ઉત્તમ આસનિ નહુ રહિણા, જિહાં રહિ મન મોહ મન પાવિ ।
રામા રામા રંગિ ગાવિ, જોગ અનુથી જાવિં ॥૩૯॥

ટબોઃ

અ૦ ઘણો બહુમૂલ્ય આસન જે થાનક તિહાં

જિ૦ જે થાનક માંહિ રહતાં મનમાંહિ (મોહ) પ્રકટ થાઈ

રા૦ રામા રામા અસ્ત્રી જે થાનકૈ રહતી હોય, ગાવતી બજાવતી હોઈ તિહાં ન રહવો.

જો૦ યોગમાર્ગ તેથી જાઈ. (૩૯)

ધોઈ ધ્યાઈ ચપલ ગતિ પાવિ, એમ જલ પઠાવિ ।
માયા મમતા દયા જુ નથી, સો સો(સા) ધક કહાવઈ ॥૪૦॥

ટબોઃ

ધો૦ શરીરનઈ જિમજિમ ઘણૂ ધોઈઈ થાઈ યે તિમ તિમ ચપલતા પૈ દાખાયે.

એ૦ (અહીં ટબો લખવાનું રહી ગયું છે. જો કે ઉપરમાં તે આવી જાય છે.)

મા૦ માયા, મમતા, કપટ જો તબ છૂટા નથી અને ચિત્ત માંહિ દયા વસી નથી

સો૦ તો કાંઈ ન્હાયે ધોયૈ સુધ થાઈ નહીં (૪૦)

સોઈ નાથ જસ દેસિ રહિવિં, દુખ સબ જીવિ દુરિ ।
મરકી અમર દુકાલ ન હોઈ, લોક સુખી ભરિપૂર ॥૪૧॥

ટબોઃ

સો૦ અહો પુત્ર, એહવો અનાથનો નાથ તેહ પુરુષ જે દેશને વિષઈ રહઈ.

દુ૦ તે દેશથી સર્વ દુખ દૂરે ટલે.

મ૦ તે દેસને વિષે મરકી ન થાયેં, સંગ્રામ, યુદ્ધ, દુકાલ દુર્ભિક્ષ ઇત્યાદિક ન થાઈ.

લો૦ તે દેસના લોક ઘણૂં સુખીયા થાઈ.

પુત્ર પઢ્યા સોઈ ગુણ જાણિ, મુરખ કચ્છૂઅ ન બૂઝિ ।
અંધે કુયા દેસ દિખલાવે, લાંબા ભલા ભ(ભૂ)ડ(ડા) ના સુઝઈ ।।૪૨।।

ટબોઃ

પુ૦ અહો પુત્ર, જે ભણ્યો હોઈ તે સર્વગુણ જાણે. અકાર્ય કાર્ય જાણઈ

મુ૦ પિણ મૂર્ખ પ્રાણી કાંઈ વિવેક ન જાણઈ.

અં૦ જિમ અંધિળાને આરસી દેખાડીયે વલિ

લાં૦ પિણ આંધલાને કાંઈ ભૂડો ભલો દીસંઈ નહી (૪૨)

દોઈ ધરમ દૂનીઆ મઈ પુતા, આસી એક નરાસી ।
સોઈ નિરાકીની નિજ મન રંજિ, નિતિ પાવઈ અભ્યાસી ।।૪૩।।

ટબોઃ

દો૦ અહો પુત્ર, બે ધર્મ સંસાર માંહિ છઈ.

આ૦ એક ધર્મ આસી છઈ અને બીજો ધર્મ નિરાસી છે.

સો૦ નિરાસી તે ધર્મ કહીઈ તે પોતાનો મનરંજન પોતાને મન નઈ જે સમજાવે.

નિ૦ લોકને રાજી કરવા બહુ વાદ ન કરે હંમેશાં શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરઈ. (૪૩)

દુજા ધર્મ આસીક {હિ}કહાવે, આપણા ગુણ દેખલાવિ ।
દુજેકા સબ ગુણ ચ્છિપાવી, સોઈ વિરૂઈ ગતિ જાવઈ ।।૪૪।।

ટબોઃ

દુ૦ અને બીજો ધર્મ આસીતે કહીયે.

આ૦ પોતાના ગુણ લોકને દેખાડે, લોકને રાજી કરઈ

દુ૦ બીજા પ્રાણીનાં ગુણ છઈપાવૈ, કોઈનો ગુણ ગ્રહે નહી.

સો૦ એહવો હોઈ તે માઠી ગતિ જાઈ (૪૪)

સુંદરી સોનિ વિ(ચિ)ત્ત ન દેવિ, સરખા આપ પીઆરા ।
ઠ(વ)સ્યા બીસમ્યા સબ દિન રહિવિ, સોઈ ગુરૂ હમારા ।।૪૫।।

ટબો:

સુ૦ સ્ત્રી તથા સોનામાં ચિત્ત દ્યે નહી. એતલઈ કનક કામિનીથી વેગલો.

સ૦ જેહને પોતાના અનઈ પિયારા બે સરીખા

વ૦ અનઈ સદા સર્વદા વસ્યા વીસમ્યા સાનદાન રહઈ પિણ ક્રોધ ન કરે.

સો૦ એહવા જો મહાપુરુષ યોગીશ્વર તે માહરો ગુરુ છઈ (૪૫)

મન સરીખા મિત્ર કો ન મલ્યા, અનિ ચિત સરીખા ચેલા ।
જ્ઞાન ગોષ્ટિ સરખા ગુરુ ન મલ્યા, તેણઈ ગોરખ ફરઈ એકલા ।।૪૬।।

ટબો:

મ૦ જે મનને કેડે ચાલઈ એહવો કોઈ મિત્ર મિલ્યો નહી.

અ૦ અને ચિત્તતો ચિંતવ્યો જાણેંઈ ગાયાગાર સપન્નં ચેલો ના મે(ગ)લ્યો

જ્ઞા૦ અને જ્ઞાન ગોષ્ટિ કીજે અહેવો કોઈ ગુરુ પિણ મિલ્યો નહી

તે૦ તે માટઈ શ્રી ગોરખનાથ એકલા જ ફિર્યા. (૪૬)

જે ઘરિ રહેઈ, કોઈ દુખ પાવેઈ, જોગી તિહા ન રહિવિ ।
પ્રાણ જાતા જુઠ ન બોલઈ, સાચા હોઈ સો કહિવિ ।।૪૭।।

ટબો:

જે૦ જે ઘર રહતાં કોઈ પ્રાણી દુખ પામઈ,

જો૦ યોગીશ્વર તિહાં રહઈ નહીં

પ્રા૦ કદાચે પ્રાણ જાઈ તો પિણ મિથ્યા ન બોલઈ

સા૦ સાચો જિમ હોઈ તિત કહઈ (૪૭)

ભાગિ અફીમ અમલ નહુ ખાવિ, રહિવિ એકિ ધ્યાંનિ ।
આહાર નીહાર અલપ કરિનિ રમઈ સો બ્રહ્મજ્ઞાનિ ।।૪૮।।

ટબોઃ

ભા૦ ભાગિ અફીમ જૈથી અમલ ચટાવ થાઈ તે વસત ન ખાઈ.

ર૦ એક ધ્યાનને વિષઈ સ્થિર રહઈ.

આ૦ આહાર અલ્પ કરઈ અને નીહાર મલ માત્ર તે પણિ અલ્પ કરઈ

ર૦ રમી રહે બ્રહ્મજ્ઞાનને વિષૈ (૪૮)

ચેલા સોઈ ચિતિ ચાલઈ મનિ ચાલઈ સો મિત ।
કહિણી રહિણી સરખી ગુરુ જે, હોસી-સુખ અનતો ।।૪૯।।

ટબોઃ

ચે૦ ચેલો તો કહીયે જે ગુરુને ચિંતે ચાલઈ એહવો ચેલો ચાલઈ તે ચેલો.

મ૦ મનગમતો ચાલે તે મિત્ર કહીએ.

ક૦ અને કહિણી રયણી બૈ સરીખી હોઈ તે ગુરુ કહીયૈ

હો૦ જે ગુરુ સેવ્યાથી અનંત સુખ હોઈ (૪૯)

અઈસો જોગીકે પાય પખાલુ, આદેસ અનુકા કરણા ।
ગ્રાસ એક અનુકુ દીજે, તબ સ(સં)સાર ન ફરણા ।।૫૦।।

ટબોઃ

અ૦ એહવા યોગીશ્વરના પગ ધોવવા

આ૦ તેહનો કરણ(?) પણ કરવો

ગ્રા૦ એક ગ્રાસ માત્ર પણિ તેહને દીજીક

ત૦ તો સંસાર માંહિં ફિરવો ટલેઈ (૫૦)

નરનારીકે સંગ ભયા તબ દુજા ચિત્ત ન કીતા ।
અલપ સરીખા સુખ સબ દેખ્યા, જાણિ સંસાર સબ જીતા ।।૫૧।।

ટબોઃ

ન૦ પુરુષ સ્ત્રીનો સંજોગ થયો તિ વારઈ

દુ૦ બીજો ચિંતન વિચાર કીધો

અ૦ સર્વ બીજા તે અલ્પ કરી જાણ્યા અથ એ કામસુખ અલ્પ થોડા કાલનો

જા૦ પિણ અજ્ઞાંની પ્રાણી જાણેં મઈ સર્વ જગ જીત્યો એહવો સુખ વિલસ્યો. (૫૧)

નરનારી દોઈ પ્રીતિ ભઈ, જબ કોઈ કોણિ સેહલાયા ।
જઈસા કરમ કીઆ હુઈ બાબૂ, લઈસા પિંડ બંધાયા ।।૫૨।।

(અહીં કડી નં. ૫૨ને બદલે ૫૩ લખેલ છે પણ મેં અહીંથી સુધારીને લખેલ છે.)

ટબોઃ

ન૦ પુરુષ અનઈ સ્ત્રીનઈ પ્રીતિ થઈ.

જ૦ વિચરઈ કોઈ કોઈ નઈ કર્મથી મુકાવી ન સકઈ તે માટઈ

જ૦ જેહવાં કર્મ કીધાં હોઈ તે પ્રાણીનઈ હે પુત્ર,

ત૦ તેહવો પિંડ સરીર બંધાણો. નર નારી નપુંસકપણું પામ્યો. (૫૨)

હતુએ હલુએ જ બંધણિ જ લાગા, અનકી પુગી આસા ।
ઊંધિ મસ્તકે એ દુખ સહિવિ, ભોગવિઉ ગરભાવાસા ।।૫૩।।

ટબોઃ

હ૦ થોડે થોડેઈ ગર્ભમાં વધવા માંડ્યો.

અ૦ માતપિતાની આસ્યા પૂરણ થઈ એતલઈ માતપિતા તો રાજી થયા.

ઊં૦ પિણ ઉધૈ મસ્તકેં ઊપનેં પ્રાણી દુખ સહઈ

ભો૦ ગર્ભાવાસ ભોગવે. (૫૩)

માય, બાપ, બહિનેં, ભાઈ, એહ મલ્યા સહુ મેલા ।
આપ આપણિ કામિ લાગા, એહિ રહ્યા એકોલા ।।૫૪।।

ટબોઃ

મા૦ માતપિતા તથા બહિન તથા ભાઈ.

એ૦ એહ સહુ મેલો મિલ્યો છઈ.

આ૦ સહુ પોતા પોતાને કામૈ સ્વાર્થે વિલગા છઈ.

એ૦ પિણ આખરિં પ્રાણી એકલો રહ્યો, પૂર્વકૃત ભોગવઈ (૫૪)

ભલા કીઆ તે બહુ સુખ પાવિ, દુખ પાવિ બહુ પાપી ।
ભોગવિ કરણી આપ આપસકી, કાહે ચલઈ માય બાપિ ।।૫૫।।

ટબો:

ભ૦ જે પ્રાણી પૂર્વે ભલા પુણ્ય કરીને અવતર્યા છઈ તે ઘણો સુખ પામે.

દુ૦ દુખ પામે તે જેણે ઘણા પાપ કીંધૂ હોઈ.

ભો૦ પોતે પોતાના કીધી કમાઈ ભોગવઈ

કા૦ સ્થાને કાજે માબાપને દોસ દીજઈ.

એહી ઠોરઅ તુહીકું પ્યારા, જિસ ઠોરથી આયા ।
નાથ નિરંજન અઈસા દેખલાયા, ગોરખનાથે બુઝવાયા ।।૫૬।।

ટબો:

એ૦ તે જે ઠોર તેહનેં પ્યારી લાગે લે છઈ.

જિ૦ જિસ ઠોરથી આવ્યો, પેદા થયો, તે જ ઠોર વાલો લાગઈ છઈ.

ના૦ નાથ નિરંજનનઈ ઐસા એહવો દેખાડ્યો.

ગો૦ શ્રી ગોરખનાથે એ માર્ગ સમજાવ્યો છઈ (૫૬)

અઈસા દેખિ કરિ જોગી, જોગ રહિણા એકિ ધ્યાનિ ।
ભરથરી ઊજલ ફદ્ધૂક તણી પરિ, રમણાન્ન મગનાનિ ।।૫૭।।

ટબો:

અ૦ એહવો સંસારનો સ્વરૂપ દેખીને કરી યોગી તથા યોગિણી.

ર૦ રહે એક ધ્યાનેં નિશ્ચલ ચિત્તપણે પ્રવર્તે.

ભ૦ જિમ રાજા ભરથરી રાજ મુકીને યોગી થયા પછે ફિક પાષાણના પપૈરઈ ઉજલ નિર્મલ વિચર્યા પણિ આત્માનૈં પાપપંકઈ કરી લેપન કીધો.

૨૦ તિમ ભરથરી યોગીની પરેં બ્રહ્મગ્યાનને વિષઈ રમી રહ્યો. (૫૭)

જોગ મારગ દેખલાયા બાબા, જો તુમ જાણો સાચા ।
તુમ્હો ચલાવઉં તિમ હુ ચાલુ, એહ માહરી બા(વા)ચા ।।૫૮।।

ટબોઃ હવે શિષ્ય ગુરુ પ્રતિ કહઈ છઈ :-

જો૦ અહો બાબાજી, તુમો યોગમાર્ગ મુઝને દેખાડ્યો.

જો૦ જો યોગમાર્ગ સત્ય કરી જાણો છો.

તુ૦ આજથી તુમે ચલાવો તે માર્ગે હું ચાલું.

તિ(એ૦) એહવા તરો વચન છે (૫૮)

મનમોહનિ ઈંદ્રી જિહવા, એહ ચ્યાર ઠોરિ હિવિ ।
પાકે દિલ પકડનિ રાખિ, સોઈ પરમ પદ પાવિ ।।૫૯।।

ટબોઃ

મ૦ મન, મુખર, અનઈ ઇંદ્રી જે લઘુનીતિના ચોડ અમે જીભ ૪

એ૦ એહ ચ્યાર ઠામિ રાખઈ વસિ કરઈ.

પા૦ પાકદિલ યોગી છે તે પોતાનુ દિલ પકડનઈ રાખઈ

સો૦ જે દિલ જે મન વશિ કરઈ તે પરમ પદ મુક્તિ પામઈ. (૫૯)

માસ પાખે કોઈ મુડ મુંડાવેં, કોઈ બાલ ઉચાવિ ।
તબહી તાઈ નહિ શિવપદ પાવિ, જબ મન દહો દીસ ધાવિ ।। (૬૦)

ટબોઃ

મા૦ કોઈકનો મહી પાખૈ નઘૈ ઉતાવલો ઉતાવલો માથો મૂંડાવર.

કો૦ વલી કોઈક માથાના કેશ ઉપાડી નાંખાંઈ છઈં.

તબ૦ પિણ ત્યાર લગઈ શિવપદ મુક્તિપદ નહી પામેં

જ૦ જિવાર લગઈ મન દશ દિશાપે દોડે છે, વશિ કીધા નથી. (૬૦)

પઢેકી પરતીત ન આવિ, અગલેકુ સમઝાવિ ।
ઉરનકુ વઈકુંઠ દેખલાવિ, આપિ જમપુરી જાવિ ।।૬૧।।

ટબો:

પ૦ કેટલાઈક શાસ્ત્ર ભણે છે પિણ તે શાસ્ત્રની પ્રતિતી મનમાંહૈ ન આપઈ.

અ૦ બીજાને ધર્મમાર્ગ સમઝા,

ઉ૦ તેથી જાને તૌ વૈકુંઠમાર્ગ દેખાડે,

આ૦ અને પોતે યમલોક દુર્ગતિ જાય પામઈ (૬૧)

ગાણા બાણા લોક બુઝાણા, એ સબ પેટ ભરાઈ ।
એ તો કરતે મૂએ બપડે કૂનિ મુગતિ ન પાઈ ।।૬૨।।

ટબો:

ગા૦ ગાવવો ને બજાવવો અને શ્લોક ભણીને, શાસ્ત્ર ભણીને બીજાને સમઝાવવો.

એ૦ એ સર્વ પેટ ભરાઈ છે પિણ કોઈ મુગતિનો ખામુ નથી

એ૦ એહવી વિટંબના કરતાં કરતાં કેટલાએક બાપડા મરી ગયા પણિ અરથ સરયા નહિ.

કૂ૦ પિણ તે મુગતિ ન પામી

મુગતિ પાવિ તો આપથી પાવિ, કસકી દીઈ ન આવિ ।
મહિર ખઈરિ બહુત વડ કથી પાવે તો અનથી પાવિ ।।૬૩।।

ટબો:

મુ૦ જો મુગલિ પામે તો પોતાની કમાઈથી પામઈ.

ક૦ કોઈ બીજાની આપી ન આવઈ

મ૦ મહર ને દયા અને ખેરતે દાન એ બૈને સર્વ કરણીથી મોટી કરણી છે.

પા૦ મુગતિ પામ તો દયાદાનથી પામઈ (૬૩)

જોગી જોગ જુગતિ ચલાવિ, રખે રોસ થઈ આવિ ।
સુંદરી સોનિ ચિંતન દેવી, જોગ દેખતા ગમાવે ।।૬૪।।

ટબો:

જો૦ જે યોગીશ્વર હોઈ તે પોતાના યોગ યુગતિ ચલાવિ.

ર૦ જાણે જે રખે મુઝને રોસ ક્રોધ થઈ આવઈ.

સું૦ સ્ત્રી અને સોના ઊપરિ ચિત્ત ન ધૈ,

જો૦ જો ચિત્ત ધે તો યોગમાર્ગ દેખતાં દેખતાં ખોઈ બેસશે. (૬૪)

જોગી જોગ ગમાવિ પુત્રા, તો ક્યું સદ્‌ગતિ પાવિ ।
મુંડ મુંડાવિ ફિરિ સો ફોકટ, જડ્યા ધામ સોહાવિ ।।૬૫।।

ટબો:

જો૦ જે યોગીશ્વર પોતાનો યોગમાર્ગ ખોવે અહો પુત્ર

તો૦ તે કિમ સદગતિ પામઈ

મું૦ માથો મુંડાવીનઈ ફોકટ ફિરે છે એ કારે કોઈ આત્મકાર્ય થાવો નથી.

જ૦ જડ્યો ધામ જે ઘર તે સુહામ. (૬૫)

જડે ધામ સો લોક પતીત જાણઈ, ઉસ થૈ મિલૈ મીઠાઈ ।
મુરખ મનસુ સોઈ ન બૂઝઈ, ઉ મુઝ દોજક દોઈ ।।૬૬।।

ટબો:

જ૦ જે થાનક જડી કમાડ દેઈ માહે પોતે બેસી રહે લોકને પઈસદાન દે તે પિણ લોકે પ્રતીતિ ઉપજાવવા કરે

ઉ૦ તે લોકને પ્રતીતિ ઊપજે જે એ ભલો અતીત છે તેથી મીઠો ખાવાને મિલઈ.

મુ૦ મૂર્ખ અજ્ઞાની મનથી કોઈ ઈમ ન જાણતો.

ઉ૦ એકટ કરીને મીઠો ખાવો તે મુઝને દુર્ગતિનો સાધન છે. (૬૬)

પ્યાત્ર (૨) કરિ કોઈ ભિખ્યા દેવિ, જોગી બહુત ન લેવિ ।
ઘોસાઘુસી સોઈ ન પઈસઈ, યોગી જંગલ સેવિ ।।૬૭।।

ટબો:

પ્પા(ઘા?)૦ જે કોઈ ગૃહસ્થ ઘણે હેતે કરી ભિક્ષા આપે તો

જો૦ યોગીશ્વર હોઈ તે ઘણો ન લ્યે

ઘો૦ પિણ ઘુસાઘુસી ઘણા ગૃહસ્થાદિ કને ભેલો સૂયૈ રહઈ નહીં

યો૦ યોગીશ્વર હોય તો જંગલ વનખંડ સેવઈ (૬૭)

દામ દુનીઆ જાણી મેરી, સોઈ કહાંકા જોગી ।
પેટ કે તાઈ મુડ મુડાવિ, કરિ કુતા જિમ રોગી ।।૬૮।।

ટબો:

દા૦ ધન તથા કુટુંબ મિત્રાદિકને પોતાના કરી જાણે.

સો૦ તે સ્યાનો યોગી કહીયે ?

પે૦ પેટ ભરવાને અર્થે માથો મુંડાવઈ

ક૦ પછે જિમ રોગી કો સા કાનનો કુતરો ફિરે તિમ ઘરિ છરિ ફિરઈ (૬૮)

યતી જોગી, કાપડી, સંન્યાસી, ઉહ રાહો જેય વ(ચ) લાવિ ।
ગુરુકા દાસ ગરીબા બોલઈ, સોઈ પરમપદ પાવિ ।।૬૯।।

ઈતી શ્રી યોગપાવડી સંપૂર્ણઃ ।।

ટબો:

ય૦ યતિ, યોગી તથા કાપડી તથા સંન્યાસી

ઉ૦ એહવો માર્ગ જેહ ચલાવે.

ગુ૦ ગુરુનો દાસાનદાસ ગરીબદાસ કવીશ્વર એમ કહઈ છઈ.

સો૦ તેમહા પુરુષ યોગી યતિ કોઈકોને પરમ પદ પામઈ.

ઈતી શ્રી યોગપાવડી સંપૂર્ણઃ ।।

(આની નીચે આપેલું લખાણ):-

(આ લખાણ નાના-મોટા અક્ષરોમાં તથા છૂટા છૂટા અક્ષરોમાં અને પાંચ લીટી પછી જાણે બે ભાગમાં વહેંચાયેલું હોય તેવું અવાચ્ય જેવું લખાણ છે જેને ઉકેલવાની તથા તેના અર્થબોધ માટેની મારી સમજ પ્રમાણેની કોશિશ કરી છે તે નીચે પ્રમાણે છે:)

૧ શ્રીરિ વિતરાગા નમઃ/જંબુદિપમો જસએ વેજ્ઞી મુનીવર આર્યસુહસ્તીકુણ એક અવસરીઉ જે-

૨ ણિ સમોસરાએ ચરણ કરણમધાર ગુણમણિઆગર બહુપરઈ પરિવરુએ વન, વાડી, વિશ્રામ

૩ (આ લીટીના હાંસિયામાં 'શ્રી રવિ' લખેલ છે. પછીનું લખાણ હાંસિયા બહારનું છે.) લેઈ તિહા રહા દોઈ મુનીવર નગર પછ ઠ ઠ ઠ ચ ગણમણિઆર બહુ પરમુ

૪ ભદરને ઘર અ વસ કથ ધરુ દટ જસ કબ મહ પયઝ

૫ દખ સવ પહ જય મછો(હો?) દયશ્રી

૬ કપ જમબુ સહ માછાબોઈ સોપમ ગુથ

૭ કઝ ૬૭ સસુ વચ ભત તમ મસજ
(અહીં વચ્ચે જગ્યા છોડીને જે લીટી મળે છે તે) રુકમ પદ હઠ પર

૮ વ પસ છટ ત

(પ્રસ્તુત લખાણ બોડિયા અક્ષરોવાળું અને ક્રમબદ્ધ લખાયું નથી. પણ જે ઉકેલ્યું છે તેને આધારે જંબુદ્વીપમાં જ્ઞાની આર્યસુહસ્તિજી જંગલમાં વિશ્રામ કરી, તે જંગલમાં બે મુનિવરો રહ્યા અને અન્ય ૬૭ શિષ્યો સાથે શ્રી રવિ નગરમાં પરમુ ભદરને ઘેર રહ્યા છે. અન્ય લખાણ સમજાયું નથી.)

નાકરકૃત રામાયણની શ્રવણકથા

રાજેશ પંડ્યા*

શ્રી रामरक्षास्तोत्रનો પહેલો શ્લોક છે :

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

चरितं रघुनाथस्य એટલે રામચરિત્ર. રામની કથા. રામાયણ. રામકથા शत कोटि છે. शतकोटिप्रविस्तरम् દ્વારા રામકથાની વ્યાપકતા અને વિવિધતા સૂચવાય છે.

ભારતની લગભગ બધી જ બોલાતી અને લખાતી ભાષામાં રામકથાની સમૃદ્ધ પરંપરા છે. મધ્યકાલીન ગુજરાતી ભાષામાં પણ ભાલણથી ગિરધર સુધીના કવિઓએ રામકથા આધારિત વિધવિધ કૃતિઓની રચના કરી છે. એમાંના એક કવિ નાકર [ઈ૦ ૧૬મી સદી] છે.

કવિ નાકર ગુજરાતી આખ્યાનકવિતાના એક વિલક્ષણ સર્જક છે. પ્રેમાનંદ કરતાં લગભગ દોઢસો વરસ પહેલાં, વડોદરાના જ આ કવિએ આખ્યાનની સ્વરૂપ સંરચના અને આખ્યાનની કથા સામગ્રી બંનેમાં વિશિષ્ટ પ્રદાન કર્યું છે.

નાકરનાં આખ્યાનોની કથા સામંગ્રી ત્રિવિધ છે.

૧. પૌરાણિક આખ્યાન કૃતિઓ : હરિશ્ચન્દ્રાખ્યાન, ધ્રુવાખ્યાન, લવકુશ આખ્યાન, મોરધ્વજ આખ્યાન, વીરવર્માનું આખ્યાન, સુધન્વા આખ્યાન, ચન્દ્રહાસ આખ્યાન, અભિમન્યુ આખ્યાન, કર્ણ આખ્યાન, નળાખ્યાન, ઓખાહરણ, શિવવિવાહ વગેરે.

૨. મહાભારતનાં પર્વો : આદિપર્વ, સભાપર્વ, આરણ્યકપર્વ, વિરાટપર્વ, ભીષ્મપર્વ, શલ્યપર્વ, ગદાપર્વ, સૌપ્તિકપર્વ અને સ્ત્રીપર્વ.

૩. રામાયણ.

નાકરનું 'રામાયણ' [રચના : સં૦ ૧૬૨૪/ઈ૦ ૧૫૬૮] લગભગ સવાસો કડવાં અને પાંચેક હજાર કડીઓનો વિસ્તાર ધરાવે છે. આ રામાયણ હજી અપ્રગટ છે. તેની બે હસ્તપ્રત મળે છે.

'સ્વાધ્યાય' – પુ. ૬૦, વર્ષ ૨૦૨૩, પૃ. ૧૩૭–૧૫૧. ISSN 2250-0391

* ગુજરાતી વિભાગ, ફેકલ્ટી ઓફ આર્ટ્સ, મ. સ. વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, M: 9664733710

૧. ગુજરાત વિદ્યાસભા, અમદાવાદની હસ્તપ્રત [ક્રમાંક:૧૫૯૪]

૨. ડાહીલક્ષ્મી લાઇબ્રેરી, નડીઆદની હસ્તપ્રત [ક્રમાંક:૯/૧, ગુ.૧૨૫/૧,૬૪૫/૧,૧૬૦૦૪૪૬-૧]

આ બંને હસ્તપ્રત તૂટક છે. ગુજરાત વિદ્યાસભાવાળી હસ્તપ્રતની સરખામણીમાં ડાહીલક્ષ્મી લાઇબ્રેરીની હસ્તપ્રત જૂની જણાય છે. જોકે તેનાં આરંભનાં (વચ્ચે-વચ્ચેનાં અને અંતનાં) પાનાં મળતાં નથી.

ડાહીલક્ષ્મી લાઈબ્રેરીવાળી હસ્તપ્રત પંદરમા પાને (બાલકાંડના) છઠ્ઠા કડવાથી શરૂ થાય છે. એ કડવાથી જ આ ગુજરાતી રામાયણના કથાકથનની વિશિષ્ટતા જણાઈ આવે છે. એકવાર અંજનીમાતા હનુમાનને પૂછે છે : 'કોહો પુત્ર તમો સિ દૂબલા, સી ચંતા તમ વીર...' ત્યારે હનુમાન કહે છે : 'એક ક્ષણ મુજનિ રામવિયોગ તેણ દૂબલું હું આઈ.' આવો ઉત્તર સાંભળીને અંજની, હનુમાનના જીવને શાતા વળે તે માટે રામકથા સંભળાવવા કહે છે. રામકથાના વક્તા અને શ્રોતા તરીકે, પુત્ર અને માતાની આ કથનપ્રયુક્તિ ઘણી આકર્ષક છે. શ્રીમદ્ ભાગવતમાં પણ એ યોજાઈ છે. શ્રીમદ્ ભાગવતના તૃતીય સ્કંધમાં કપિલમુનિ, માતા દેવહૂતિને ભક્તિયોગનું જ્ઞાન આપે છે.

વર્તમાન સમયમાં રામકથાના વક્તાઓ 'આઈએ હનુમંત બિરાજીએ, કથા કહુ મતિ અનુસાર...' એ સાખીથી હનુમાનજીને કથાશ્રવણનું નિમંત્રણ આપે છે. હનુમાનજીને જેમ રામકથાનું ગાન તેમ રામકથાનું શ્રવણેય અતિ પ્રિય છે. જ્યાં જ્યાં રામકથા થાય છે ત્યાં ત્યાં હનુમાનજી કોઈને કોઈ સ્વરૂપે અચૂક ઉપસ્થિત હોય જ છે એમ શ્રદ્ધાપૂર્વક માનવામાં આવે છે.

ગોસ્વામી તુલસીદાસના શ્રીરામચરિતમાનસ પ્રમાણે ભગવાન શિવ રામકથાના આદિ રચયિતા છે [रची महेस निज मानस राखा] એ પછી શિવ, ઉમાદેવીને રામકથા ગાઈ સંભળાવે છે. ત્યારે તે રામકથાના વક્તા છે. આ જ ઉમામહેશ્વરને કુંભજ ઋષિ રામકથા સંભળાવે છે ત્યારે તે શ્રોતા છે. આમ ભગવાન શિવ રામકથાના વક્તા અને શ્રોતા બંને છે. હનુમાન પણ રુદ્રાવતાર છે. એ ન્યાયે, શિવની જેમ જ, હનુમાનજીમાં રામકથાના વક્તા અને શ્રોતા તરીકેની વિશેષતા ઊતરી આવી હશે. પરંપરામાં રામચરિત્રના ગાયક તરીકે હનુમાનજીનો વિશેષ મહિમા છે. આ પ્રણાલિકાનો નાકરકૃત રામાયણમાં કળાત્મક વિનિયોગ થયો છે.

કવિ નાકર, રામાયણના કેટલાય કથાપ્રસંગોમાં પણ રસકીય ફેરફાર કરે છે. વાલ્મીકિ 'રામાયણ'ના કથા પ્રસંગોની સાથે સાથે નાકર, ગુજરાતના જનસમૂહમાં પ્રચલિત પ્રાદેશિક લોક રામાયણનાં કથાનકોએ પણ સાંકળે છે. નાકરકૃત રામાયણની પ્રાદેશિક વિશિષ્ટતાના ઉદાહરણરૂપે અહીં શ્રવણકથા [કડવું:૬ , કડી:૧૩ થી કડવું:૯]નો પાઠ ડાહીલક્ષ્મી લાઇબ્રેરીની હસ્તપ્રતને આધારે પ્રસ્તુત છે.

કડવું : ૬

સરયો તીર નગર અજોધ્યા દશરથ રાય ઉદારિ;
પ્રજાપાલ[ક] પવિત્રી પણ ન સુખિઆ વર્ણ અઢારિ. ॥૧૩॥

ગજ, રથ, અશ્વ નિ છે સબિકા, પાયક દલ નહીં પારિ;
કર આઉધ કિરિ કર્મ ક્ષત્રી શીલવંત સર્વ આચારિ. ॥૧૪॥

બ્રાહ્મીણ, ક્ષત્રી[ય], વૈ[શ્ય], ક્ષુદ્ર કહીએ, ચાલ કુલ આચારિ;
બાંધ્ય નામ્ય પુરુષ જાણી (?), માર સોગઠી સારિ. ॥૧૫॥

બહુ પ્રધાન પુરા પનુતા ભલા તેહનાં ગ્નાન;
વશિષ્ટ ગુરુ ભલી વિધિ જેહના પ્રભુરાય જજમાન. ॥૧૬॥

સુખ લીલા, કીર[તિ] અતિ સુંદર, ઘણી ઘેર પટરાણી;
ત્રણ શત માંહ ત્રણ્ય અતિ વલભિ પ્રસિધ્યંત કહવ રાણી. ॥૧૭॥

કૌશલ્યા, કિઈકૈ, સુમિત્રા, માહા રૂપ અપારિ;
સતીમાંહ તે અતિ શિરોમણિ જાણ, પુન્ય વિચારિ. ॥૧૮॥

અનેક રિધ્યસિધ્ય દેખીન દશરથ ચંતાતુર હોય;
સકલ સુખ અધિક જાણવું પુત્ર નહીં માહારિ કોય. ॥૧૯॥

એક વારનિ સમિ તે ભૂપત્ય ઘોડિ થઆ અસવારિ;
સે[ન્ય], સેવક કોઅ નહીં રે સાથે, આવ્યા વંન મઝારિ. ॥૨૦॥

થઈ નિશા પડા વંન્ય ભૂલા સ્થ્યિર(?) રહા ભુપાલ;
પંપાસર દેખી નીર નિરમલ, પોયેણ્ય પુષ્પ વિશાલ. ॥૨૧॥

નાનાવિધિનાં સાવ્યજ બોલ ફલાં વૃક્ષ સેહકારિ;
ચતુર ચકિત ચિત્ય ધરીન રક્ષા કરિ તેણી વારિ. ॥૨૨॥

કહ કપિ સુણિયે, તાં સ્વામી રાય આવ્યા વંન મુઝારિ;
જલ અર્થ આવિ જે પ્રાણી ન કર કહીની કનવારિ. ||૨૩||

શાંતા નામિ એક જ નર નારી ચક્ષુ રહિત તંન્ય તેહ;
પ્રીત્ય ભલી પુરષોતમ ઉપિર, સદા નિર્વતી નેહ. ||૨૪||

ક્રૌંચ પક્ષીનું શોક જાણીન આણી મન્ય અતિ રંગ;
પર વેદ[ના] વ્યલાપ ન જાણ્યું રુત્યે મ્યલિઆં તે રંગ. ||૨૫||

તેહન સુત હવો એક સુંદર, સરવણ ઘરીઉં નામ;
પાંચ વરસ લિગ[લાડ] લડાવ્યું, અતિ વિદ્યા ભણાવ્યું ધામ્યિ. ||૨૬||

કડવું : ૭

માતપિતાય વિહિવા કરું, સાવ્યત્રી પરણી ઘિર આવ્યું;
રૂડાના કુલની વહુઅર પામિઓ રે... ||૧||

સકલીણી પરણી ઘર ઘરુણી કહ સરવણ તેણી વારિ;
મુજ માતપિતાની ભગત્ય કરે તું, એ ફલ સ્વપન સંસારિ. ||૨||

અહેવાં વચન શ્રવણે સાંભલીન બોલ મધુરી વાણી;
તમારિ માયેબાપે હું વાહી અણાવી, અંધ દુષ્ટ એ પ્રાણી. ||૩||

વ્યતાં કરું એ મનમાં નાણ, વાંક કાઢી દ્દિ ગાલ;
એ જીભારાની જીભ ઉપડી, માહારિ પિહર મુન વાલ. ||૪||

જે જે [જોઈ]અ તે ત્યાંહાં આપશ, આપણ આંહાં શું કાજ;
લોકરિહતે સંગત્ય રહતાં સાંહાની નિગમું લાજ. ||૫||

કામ્યની વચન સુણી કિહ શ્રવણ, એમ કહતાં હોયે પાપિ;
સુખી સાસરિ સુ કીજ રે, દુલભ છ માયબાપ. ||૬||

મુજ તણી આશાય બઠાં, એહનિ છેહ કયમ દીજ;
આપણાં માતપિતા દુઃખિ પામ તેહ કામ શું કીજ. ॥૭॥

સાવ્યત્રી કિહ સુણિયે સ્વામી હું તાં જન્મ જ હારિ;
મુજપિ સેવા હવડાં કરાવિ, કંમ ચાલ તું ત્યારિ. ॥૮॥

નાંખ કુઅ એ માતપિતાનિ, ચાલ મુજ મહિયેર જૈયે;
કરું ભગત્ય ભલી પિરિ તાહારી, સંસારનાં સુખ લહીયે. ॥૯॥

શામાવચન સુણી કિહ શ્રવણ, શું બોલાં મુખિ આલ;
અબલા માટિ રહું છું સાંખી, હવડાં આણેશ કાલ. ॥૧૦॥

આવી મહિયેર સુંપું તાહારિ, તુજથી ..... ન હોયે;
મન સંઘાત્ય જોઉં વિમાસી નહીં આભ્યંતર કોયે. ॥૧૧॥

ચાલું સાસર તેડી સુંદરી આ પુત્રી તમ લીજ;
મુજ માતપિતાન કૂઆમાં નાંખ તે સ્ત્રીન શું કીજ. ॥૧૨॥

પછ શ્રવણે ભગત્ય આદરી જાણું તીર્થ કરાવું;
દશ મસવાડા ઉદર જ વૂહા, જન્મવેદના વામું. ॥૧૩॥

ભલા વાંસ તા સુધ જ આણી, બરડકને ઘર જાયે;
ભલી કાવડિ કરે તું ભાઈ બિસ તાતિ ન માયે ॥૧૪॥

પ્રથવી પરદક્ષણા તેણ માંડી, નિત્ય ભજન હરિ ધાંન;
તેણ સરોવર આવી ચઢિઆ જાંહાં રાખિ છ રાજાંન. ॥૧૫॥

અધં નિશાયે થયાં તે તરસ્યાં, કિહ અંધ મુખ વાણી;
માહાવનમાં જુઉ રે કુંઅર લ્યાવું કયહીંથું પાણી. ॥૧૬॥

હા, સ્વામી જોઉં સનમુખ પંખી શબદ તણી વારિ;
અનેક વૃક્ષ, પુષ્પ તે પ્રેમલ, હોય નીરનું ઠારિ ॥૧૭॥

વટવૃક્ષિ કાવડ વડ વલગાડી, કુશલ રક્ષા તાત;
ચાલું નીર લેવાન કુંઅર ગ્રહી કમંડલ હાથ. ||૧૮||

કડવું : ૮. રામગ્રી

એણીપિર બોલ શ્રીહનુમાનજી
જેહની વાણી નિરમલ જ્ઞાનજી ||૧||

વાણી નિરમલ જ્ઞાન જેહનું, કેહેવા ઉપિર મંન;
સંસાર પાર ઉતારવાન, રામચંદ્ર રતંન. ||૨||

કુંઅર ચાલું નીર ભરવા, દશરથ જાહા રાજાંન;
શબદવેધીએ શબદ સુણીઉં થઆ તવ સાવધાંન. ||૩||

ભાથિથી બાણ કાઢિઉં પાણ ગ્રહીન ત્યાંહ;
માતંગ જાણી મુકીઉં, ક્રોધ ધરીન જાંહ. ||૪||

વાગુ રુદિ ત્યાર વદિ વાણી ત્રાહ ત્રાહિ ત્રિંકંમ;
મુજ માયબાપ તરસાં રહાં કોણ કીધું એ કર્મ. ||૫||

રાજાન દાઝ ઉપની પાછું બિ આવ્યું બાણ,
રાય આવી જોઈઉં , પડું પુત્ર જાયે પ્રાણ. ||૬||

રાયે પૂછું કોણ તું, અપરાધ કીધું નાથિ;
વ્યરાસે વ્યપરીત્ય થઉં, ધિક્ય બિલું મુજ હાથ. ||૭||

કિહ શ્રવણ ઉદક લેઈ જાઓ, જાંહાં માત ન તાત;
મુજન મારું રખે કહતા, તે કરશ ઉપઘાત. ||૮||

શ્રવણ પ્રાણ જ છુટીઆં, રાય ભરી ચાલા નીર,
કાવડિ પાસિ જૈ રહા તે ધનુરવિદ્યાધીર. ||૯||

શાંતા કહ તમો સુણો કંથજી એ ચાલ પુત્રની ન હોયે;
પુછા પાખિ કંથજી તમો રખે પીતા તોયે. ||૧૦||

રાય જૈઈ પાત્ર ઓડવ્યું, તમો પિયો પાણી માયે;
સાદ શ્રવણ નુહ કુઅર, તે વ્યના કયમ પિવાયે. ||૧૧||

બોલું સાચું ક્યમ મારું, કોણ લીધાં પ્રાણ;
લ્યાવિ મુઆ મુખ જોઈય, કાંઈ કહ જો વાણ. ||૧૨||

વદ દશરથ નુહ શ્રવણ, મિય મારો તાત;
પીઉં પાણી, દુઃખ ન આણી, કહુ સુધી વાત. ||૧૩||

કડવું : ૯. દેશી ફેરિ

માત તાતિ વિલાપ જ માંડીઉં ક્યંમ કીજ તોય;
એ દુષ્ટ પ્રાણ જાય નહીં, અમો પાપી સોય. ||૧||

રાય, કુંઅર ક્યાંહાં મારીઉં પોઢો કિહ ઠારિ રે;
અમો મંદભાગી કિહન, ભાલવ્યાં કોણ અમ આધારિ. ||૨||

રાય સુત તાં સુંપીઉં ખોલ લીધું શીશ રે;
મુખ ઉપર કર ફેરવ્યું હવિ અમ શી રીસ. ||૩||

નચિત થૈન પુઢીઆ, ચંતા ન કરું અંધ;
કોણ પ્રેમી લડાવશે, કાવડ લેઈ ખંધ. ||૪||

હું દાસનિ આધાર કિહ તણું, કોણ કહશ બાપિ;
અંત્રીઆલ્ય નાંખી ચાલિઆં, અમારાં પ્રોઢાં પાપિ. ||૫||

હસ્તવદન સોહામણું, નરતન કુંડલ કાન;
હવિ મુખ ક્યારિ દેખ[શું] શુભ જ તું ભીનિવાન. ||૬||

કોમલ દેહ સુત તાહરું, પ્રૌઢ રાતું બાણ;
તે આવતું તિ કંમ સહુ, ક્યમ ગઆં રે પ્રાણ. ।।૭।।

દુઃખ વાત કહો રે બાલકડા, બાહુ[વા] આદો બોલ;
ઈમ થઈન કાં રહા, અમો મેહેલ્યા નટોલ. ।।૮।।

એહવા પુત્ર તાં કો નહીં, કોણ પાલિ લાડિ;
પાપી પંડ પડી નહીં, અંમ તંન નિતાડિ. ।।૯।।

હવે કોણ કિહસ અમારડાં તમારાં મીઠાં બોલ;
અમ માટિ ત્ય સ્ત્રી ત્યજી, નથી કો સમતોલ. ।।૧૦।।

છેટું અમન પડી સહી, રાયજી અવિધાર;
હવિ અવસર માહારો સાચવો, વેગિ દો... ।।૧૧।।

દશરથ કિહ દેહ ક્યાં થકું તિજો, સેવા કરું થૈ દાસ;
શ્રવણની પિર માહાલજો, દુઃખી કીજ નાશ. ।।૧૨।।

સત્યવાદી રાયે સત્ય કહુ વ્યના સુત શું હોયે;
બિ દિવસ વાહાલા લાગિયે પછ સિધ્ય પૂછ કોયે. ।।૧૩।।

અગર, ચંદન મલિ આ ગરાંબ્રંદ કાઠી અપાર;
ત્યાંહાં ચતા રાય કરી, મધ્ય પુહ્ઢુ કુમારિ. ।।૧૪।।

શાંતાય તાં શીશ ગ્રહુ, પિતા ખોલ પાગ;
રાય હુતાશન મુકીઉં, આ શું થઉં ઉતપાત. ।।૧૫।।

ગદગદ કંઠિ તે રાયના સાંભલું કહુ બાપ;
શાપ દો તે હું ગ્રહુ જે થાઉં હું નિઃપાપિ. ।।૧૬।।

તવ રાજા તે શાપીઉં, અમ વ્યજોગ[થઓ જા]ણ
પુત્ર વ્યજોગ તમનિ હજો અન જાજો પ્રાણ. ।।૧૭।।

શીશ નામી ઊભા રહા, વારું, કોહો છો વચંન;
વ્યજોગ્ય મ્રત્ય પામશું, પણ હજો માહારિ તંન. ||૧૮||

શાંતા કહછ કંથન, જેહ ક્રૌંચ વિલાપિ;
તેહન દુઃખ ન જાણિ, તેહ લાગું પાપિ. ||૧૯||

ત્રણ્ય જણાં તે એકઠાં, બાલાં રાયે હાથ;
તે હત્યા માથિ ચઢી, ઉતારશ રઘુનાથ. ||૨૦||



શ્રવણકથા વિશે :

શ્રવણકથાનું રામકથા સાથે સંયોજન અનેક દૃષ્ટિએ મહત્ત્વનું છે.

૧. રામાયણ અને મહાભારત આદિકાવ્ય તરીકે સુપ્રસિદ્ધ છે. મહાભારતમાં નાટ્યાત્મક તત્ત્વ અને રામાયણમાં કાવ્યાત્મક તત્ત્વ વિશેષ છે. એટલે મહાભારત જીવનના વાસ્તવ સાથે અને રામાયણ જીવનના આદર્શ સાથે સવિશેષ સંકળાયેલ છે. રામાયણના ચરિત્રનાયક રામ એક આદર્શ પુત્ર-પતિ-ભાઈ-મિત્ર-શત્રુ-સ્વામી છે. શ્રીરામના આદર્શપુત્ર તરીકેના વ્યક્તિત્વનું સમર્થન કરવા રામાયણની મુખ્યકથા સાથે શ્રવણકથા જોડવામાં આવી હશે, કદાચ.

૨. વાલ્મીકીય રામાયણની શ્રવણકથા અયોધ્યાકાંડ [સર્ગ : ૬૩-૬૪૦ ગીતાપ્રેસ આવૃત્તિ]માં આવે છે. ત્યાં રામવનવાસ પછી અને દશરથના મૃત્યુ વચ્ચે શ્રવણકથા ગોઠવાઈ છે. દશરથનું મૃત્યુ પુત્રવિરહમાં થશે એ શાપ પ્રયોજન સિદ્ધ કરવા શ્રવણકથાનું અયોધ્યાકાંડમાં હોવું કથાસંકલનાની દૃષ્ટિએ યોગ્ય જણાય છે.

૩. નાકરકૃત રામાયણમાં શ્રવણકથા, કૃતિના આરંભમાં જ, બાલકાંડમાં રજૂ થઈ છે. આ સ્થાનભેદ પ્રયોજનભેદ માટે નિર્ણાયક ઠરે છે. અહીં શ્રવણકથા પુત્રવિરહમાં દશરથના પ્રાણત્યાગ પાછળ કારણભૂત શાપના ઘટકને પાછળ હડસેલી, પુત્રપ્રાપ્તિના પ્રયોજનને આગળ લઈ આવે છે. '... વ્યજોગ મ્રત્ય પામશું પણ હજો માહારિ તંન'[ક.૯/૧૮]. એ પંક્તિમાં તો પુત્રપ્રાપ્તિ અને મૃત્યુ એ બંનેનો સાથલગા ઉલ્લેખ થયો છે. આમ, એકના એક કથાઘટક દ્વારા બેવડી કાર્યસિદ્ધિ સૂચવાઈ છે.

૪. નાકર, માત્ર કથા સંકલના માટે શ્રવણ કથાનું સ્થાનાંતર કરે છે એવું નથી. વાલ્મીકીય રામાયણમાં ન હોય તેવા બીજા કથાંશોને પણ તેઓ ઉમેરે છે. નાકર લોકપરંપરાની શ્રવણકથાને અનુસરી શ્રવણના લગ્નનો ઉલ્લેખ કરે છે. શ્રવણકથામાં માતૃપિતૃભક્તિનું પરિમાણ ઉપસાવવા એ જરૂરી પણ

છે. શ્રવણની પત્ની સાવિત્રી, સત્યવાનની સાવિત્રી જેવી નથી, તે લોકકથાની અવળચંડી કુભારજા જેવી છે, જે શ્રવણના આંધળા માબાપની સેવા કરવાને બદલે કૂવે નાંખવાનું કહે છે. શ્રવણ પ્રતિવાદ કરી પત્નીને પિયરે મૂકી આવે છે. એમાં તત્કાલીન કુટુંબ સંસારનું ચિત્ર ઝિલાયું છે. આવા આલેખન દ્વારા નાકર માતપિતાની સેવાનો આદર્શ રજૂ કરે છે. જે રામાયણના ચરિત્રનાયક રામ દ્વારા વધુ દૃઢ થાય છે. શ્રવણની કથા એક રીતે તો માતૃદેવો ભવ । અને પિતૃદેવો ભવ । એ ભારતીય સૂત્રવચનોનું કથારૂપ જ ગણી શકાય.

૫. શ્રવણકથાની પરંપરા કેટલી જૂની હશે તેની તપાસ રસપ્રદ થઈ શકે. એક કથા આવી છે : કોઈ-પોપટ-પોપટી સંસારને અસાર જાણી, તીર્થયાત્રા પર નીકળે છે. રસ્તામાં દાવાનળ જોઈ અગ્નિમાં ઝંપલાવે છે. એક દાદુર પણ સાથે બળી મરે છે. બીજા જન્મમાં પોપટ બ્રાહ્મણને ઘેર અવતરે છે. તપ કરી સંતનુઋષિ બને છે. તે અંધ હોય છે. પોપટી દશરથ રાજાની બહેન સરૂપા તરીકે જન્મે છે. બંનેનાં લગ્ન થાય છે. પતિવ્રતા સરૂપા પણ પોતાની આંખ ફોડી નાંખે છે. પૂર્વજન્મમાં સાથે બળી મરેલો દાદુર એમના દીકરા તરીકે જન્મ લે છે. એનું નામ શ્રવણ. એ માતાપિતાની સેવા કરે છે. કાવડમાં બેસાડી તીર્થયાત્રા કરાવે છે. એક રાત્રિએ માતપિતા તરસ્યાં થાય છે. તેમની માટે પાણી લેવા જાય છે. દશરથના શબ્દવેધી બાણથી હણાય છે. શ્રવણને બદલે પાણી લઈ આવનાર દશરથને સંતનુઋષિ 'પુત્રવિરહમાં મૃત્યુ પામીશ' એવો શાપ આપે છે. આ કથામાં શ્રવણ એ દશરથની બહેનનો દીકરો-ભાણેજ હતો તેવો નિર્દેશ છે. એટલે મામા-ભાણેજ(ના વેર)ને લગતી લોકકથાઓ સાથે તેનો સંબંધ હોઈ શકે. કેટલાંક લોકગીતમાં પણ દશરથ-શ્રવણ વચ્ચે મામા-ભાણેજના સંબંધનો નિર્દેશ છે. જેમકે, 'નથી હું રાયકો, નથી રાય;/કને આવે તો સગો ભાણેજ થાય...' • 'ફટ રે પાપી પાપ કિયો, સગા ભાણેજને માર લિયો...' • 'સાવજ વરાંહે બાણ મારિયં રે, માર્યો સરવણ ભાણે ભાણેજ... અરર મામલિયા મને મારી નાંખ્યો રે' વગેરે.

૬. 'સામ જાતક' નામની એક બૌદ્ધ જાતકકથા શ્રવણકથાને ઘણી મળતી આવે છે. આ જાતકકથા પ્રમાણે : કોઈ નદીના સામસામા કાંઠે બે નિષાદગ્રામ હતાં. બંનેના મુખીઓએ પોતાને ત્યાં થનાર સંતાનોનાં લગ્ન કરવાનું નક્કી કર્યું. એક સંતાનનું નામ દુકુલક અને બીજાના સંતાનનું નામ પારિકા. એ બંને દિવ્યલોકના હોવાથી બ્રહ્મચર્યના આગ્રહી. લગ્ન પછી પ્રવ્રજ્યા લે. ઇન્દ્ર તેમને પુત્રમહિમા સમજાવી યુક્તિ બતાવે. તે પ્રમાણે દુકુલક પારિકાનો નાભિ સ્પર્શ કરે એટલે પારિકાના ઉદરમાં બોધિસત્ત્વ પ્રવેશે, પછી જન્મ લે. એનું નામ સ્વર્ણસોમ. સ્વર્ણસોમ સોળ વર્ષનો થતા માતાપિતાને આશ્રમમાં મૂકી ફળ લેવા જાય છે. ત્યારે પૂર્વજન્મના કર્મ અનુસાર ઝેરીલા સાપના દંશથી તેનાં માતાપિતા અંધ થઈ જાય છે. સામ એની સેવાચાકરી કરે છે. એક વાર કાશીના રાજા મૃગયા કરવા નદીપ્રદેશે આવે છે. પાણી લેવા આવેલા સામને એમનું તીર વાગે છે. છતાં ક્રોધે ભરાયા વિના તે અંધ માતપિતાની સંભાળ લેવાનું કહે છે. કાશીરાજ વચન આપે છે. પાણી લઈ તેના આશ્રમે જાય છે... આ જાતકકથામાં એક દેવકન્યા (જે પૂર્વજન્મમાં બોધિસત્ત્વની માતા હતી)ને કારણે સ્વર્ણસામ જીવિત રહે છે. અંધ માતાપિતાને પણ અંતે દૃષ્ટિ પાછી મળે છે.

૭. પ્રાદેશિક રામાયણોમાં કવિ કૃત્તિવાસનું બંગાળી રામાયણ ઘણું પ્રચલિત છે. તેમાં શ્રવણનું કથાનક દશરથના પૂર્વભવ સાથે સંકળાયેલું છે. તદનુસાર સિન્ધુ રાજાને પૂર્વજન્મમાં [illegible] એથી [illegible] શાપ આપેલો કે આવતા જન્મે તારું પુત્રવિયોગમાં મૃત્યુ થશે. ભારતીય ભાષાઓનાં બીજાં રામાયણમાં પણ શ્રવણકથાનાં જુદાં જુદાં રૂપાંતર મળતાં હશે. તેનો તુલનાત્મક અભ્યાસ ઘણો રસપ્રદ બની રહે.

૮. ઇન્ડોનેશિયાની કૃતિ 'સેરિરામ'માં શ્રવણકથાનું રૂપાંતર આવું છે : [illegible] ([illegible]) નામના એક વૃદ્ધ તાપસે દશરથ રાજાને વરદાન આપ્યું હતું કે એક હજાર હાથીનો વધ કર્યા પછી તમને ચાર પુત્ર (અને એક પુત્રી)ની પ્રાપ્તિ થશે. રોજ રાતે દશરથ એક હાથીને મારે છે. એક રાતે અજાણતાં હાથીને બદલે અંધ બ્રાહ્મણપુત્રનો વધ કરે છે અને શાપનો ભોગ બને છે.

૯. સિયામની એક પ્રાણીકથામાં પણ શ્રવણકથાનું વિભિન્ન રૂપાંતર પ્રાપ્ત થાય છે. '[illegible] કામ કરવા સિરો'ની વારતા પ્રમાણે એકવાર દશરથ રાજા, શિકાર કરતા કરતા, અંધ માતાપિતાની સેવા કરનાર પુત્રના આશ્રમે પહોંચે છે. ત્યાં દશરથને જંગલી હાથીઓથી આશ્રમનું રક્ષણ કરવાની વિનંતી કરવામાં આવે છે. એક રાતે પુત્ર પાણી લેવા ગયો હોય છે. દશરથ એને હાથી સમજી બાણથી વિંધી નાંખે છે. પુત્રશોકમાં વૃદ્ધ માતાપિતા પણ મરણ પામે છે.

૧૦. મધ્યકાલીન ગુજરાતી સાહિત્યમાં રામાયણ વિષયક કૃતિઓમાં, કોઈ ને કોઈ રૂપમાં શ્રવણકથા મળે છે. ભાલણથી ગિરધર સુધીના મધ્યકાલીન કવિઓએ તેમનાં રામાયણમાં શ્રવણકથાનું યથાવસર સંક્ષિપ્ત કે વિસ્તૃત આલેખન કર્યું છે. શ્રવણાખ્યાન નામે સ્વતંત્ર આખ્યાનકૃતિઓની પરંપરા પણ મધ્યકાળમાં હશે. જોકે 'મધ્યકાલીન કૃતિસૂચિ'માં એવી વિગત મળતી નથી. મધ્યકાળની [illegible] કે ચંદ્રાવળા જેવી પરંપરા અંતર્ગત સુર સ્વામી રચિત શ્રવણના [illegible] અને [illegible] રામાયણમાં શ્રવણના ચંદ્રાવળા મળે છે.

૧૧. એક કાળે, ગુજરાતની ગ્રામપ્રજામાં શ્રવણ વિશેનાં અનેક કથાગીત અને ઢોળ પ્રચલિત હતાં. 'સરવણ સરીખા દીકરા રે, સરવણ તીરથ કરવા જાય...' એવી પંક્તિથી શરૂ થતું 'સરવણ[illegible]' નામનું એક ઢોળ ખોડીદાસ પરમાર સંપાદિત 'ગુજરાતનાં લોકગીતો'માં સમાવાયું છે. ગુજરાત લોકસાહિત્યમાળાના મણકા ૧ થી ૧૪ ને આધારે [illegible] 'લોકગીતોમાં [illegible] અને [illegible]' નામે વિશિષ્ટ સંપાદન આપ્યું છે. તેમાં શ્રવણને [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

૧૨. ગુજરાતના ગ્રામપ્રદેશમાં વસતા લોકસમુદાયની જેમ પહાડ અને જંગલના આદિવાસીઓમાં પણ રામકથાની કંઠપરંપરા કંઈક જળવાઈ રહી છે. ડૉ. ભગવાનદાસ પટેલે 'રામ સીતમાની વારતા' એવા શીર્ષકથી ઉત્તર ગુજરાતનું આદિવાસી રામાયણ સંપાદિત કર્યું છે. તેમાં પજનવારતારૂપે ગેય અને પાઠ્ય શ્રવણકથા આવે છે. તેનો વિસ્તૃત ગદ્યસાર પણ તેમણે આપ્યો છે. આદિવાસી શ્રવણકથાનો કિંચિત્ પરિચય મળે એ હેતુથી, એ ગદ્યસારનો સંક્ષેપ પણ રજૂ કર્યો છે.

પૂર્તિ :

૧. શ્રવણનું લોકગીત

માછલી વિયાણી કાંઈ દરિયાને બેટ
સરવણ રિયો એની માને પેટ. -સમરો રામને.

કાળી પછેડી ને ભમરિયાળી ભાત,
સરવણ જલમ્યા માઝમ રાત. -સમરો રામને.

અડી કડી ને નવઘણ કૂવો,
ત્યાં સરવણનો જુલમ હુવો. -સમરો રામને.

લાંબી પીપળ ટૂંકાં પાન
સરવણ ધાવે એની માને થાન. -સમરો રામને.

ચાર પાંચ વરસનો સરવણ થયો.
લઈ પાટી ને ભણવા ગિયો. -સમરો રામને.

ભણી ગણી બાજંદો થિયો
સુઘરી નારને પરણી આવ્યો. -સમરો રામને.

સુઘરી નાર, મારું વચન સુણો !
(મારાં) આંધળાં માબાપની સેવા કરો. -સમરો રામને.

આંધળાં માબાપને કૂવામાં નાખ !
મને મારે મૈયરીએ વોળાવ. -સમરો રામને.

મોર્ય સરવણ ને વાંસે નાર
સરવણ ચાલ્યો સસરાને દુવાર. –સમરો રામને.

સસરાજી, મારાં વચન સુણો
ને તમારી ધીડીને ઘરમાં પૂરો. –સમરો રામને.

રો'! રો'! જમાઈ, જમતા જાવ
મારી દીકરીના અવગુણ ગાતા જાવ. –સમરો રામને.

ઈ રે અભાગણીનાં મોં કોણ જુએ
(મારાં) આંધળાં માબાપને નાખે કૂવે. –સમરો રામને.

ત્યાંથી રે સરવણ ચાલતા થાય
સુતારીનાં ઘર પૂછતા જાય. –સમરો રામને.

ભાઈ રે સુતાર, મારાં વચન સુણો,
આંધળા માબાપની કાવડ ઘડો. –સમરો રામને.

કાવડ ઘડજો ઘાટ સઘાટ
સોયલાં બેસે મારાં મા ને બાપ. –સમરો રામને.

ત્યાંથી તે સરવણ ચાલતા થાય
દરજીનાં ઘર પૂછતા જાય –સમરો રામને.

ભાઈ રે દરજી, મારાં વચન સુણો
આંધળાં માબાપનાં લૂગડાં સીવો. –સમરો રામને.

લૂગડાં સીવજો ઘાટ સઘાટ
સોયલાં પે'રે મારાં મા ને બાપ. –સમરો રામને.

ત્યાંથી તે સરવણ ચાલતા થાય
મોચીડાનાં ઘર પૂછતા જાય. –સમરો રામને.

ભાઈ રે મોચીડા, મારાં વચન સુણો
આંધળાં માબાપની મોજડી સીવો. -સમરો રામને.

મોજડી સીવજો ઘાટ સઘાટ
સોયલી પેરે મારાં મા ને બાપ. -સમરો રામને.

ખંભે કાવડ હાથમાં તીર
સરવણ ચાલ્યો જમનાનાં નીર. -સમરો રામને.

ભરિયા લોટા ખખડ્યાં નીર
સરવણ વીંધ્યો પેલે તીર. -સમરો રામને.

આ લ્યો, બેન-બાઈ પાણી પીવો
ને તમારો સરવણ ગામ જ ગિયો. -સમરો રામને.

મારો સરવણ નથી ગામ ગિયો
ને મારે ને સરવણને વસવસો રિયો. -સમરો રામને.

૨. શ્રવણની આદિવાસી કથા

હરવણ કુવોર [શ્રવણકુમાર]

શ્રવણ પત્નીને કહે છે : 'મારાં માતા-પિતા આંખે આંધળા ને પગે લંગડાં થયા છે, તું સેવા કર. પત્ની કહે છે : 'તારાં માતપિતાને ઊંડાં કૂવામાં નાંખ. હું સેવા નહીં કરું. શ્રવણને પત્નીનાં વેણ કડવાં લાગે છે. તે કહે છે : 'તું નહીં કરે તો હું સેવા કરીશ.'

શ્રવણ વાણિયાની હાટે જઈ લીલુંપીળું કપડું લાવે છે. દરજીની પાસે જઈ ઝોળી સિવડાવે છે. ઝોળી પર માબાપનું ચિત્ર મંડાવે છે. એક ઝોળીમાં મા ને બીજીમાં બાપને બેસાડે છે. પાણીનો ઘડો ને ખાવાનું સાથે લે છે. ઝોળી ખભે ઊંચકી એક વનથી બીજે વન જાય છે. હરતોફરતો કદળીવનમાં આવે છે. માબાપને તરસ લાગે છે. એને ઝાડને છાંયે બેસાડી સમદરજળ લેવા જાય છે. પંખીએ ચાંચ બોળી એઠું ન કર્યું હોય એવું નિર્મળ જળ ભરે છે.

દશરથ રાજા જળની ચોકી કરતા હોય છે. ખળળ અવાજ કાને પડતા વિચારે છે કે કોઈ જાનવર જળ બોટવા આવ્યું લાગે છે. એણે નિર્મળ નીર વટલાવ્યું લાગે છે. રાજા તો અવાજની દિશાએ

બાણ છોડે છે. રામનામ લેતાંક શ્રવણ ધરણી ઢળે છે. મારા પુત્રનું નામ લેનાર આ કોઈ સગોવ્હાલો હશે એમ માની રાજા દોડતાંક કાંઠે આવે છે. શ્રવણ કુંવર નજરે પડે છે. તીર તો આરપાર નીકળી ગયું છે. રાજા ઊભો ઊભો વિચાર કરે છે : જેમ જીભથી બોલ તેમ પણછથી છૂટેલું તીર પાછું વળતું નથી. [હા રે પણસાંનાં સૂટાં... કે'દિ નેં વળેં... હા ને ઝીપાંનાં સૂટાં નેં વળે !]

શ્રવણનો જીવ જાય છે ને આવે છે. તે દશરથને કહે છે : તેં તારું પાપકર્મ કર્યું. હવે હું તારી સાથે લોઢાંલાકડાંથી લડી શકવાનો નથી. મારાં માતાપિતા આંખે આંધળાં ને પગે લંગડાં છે. આ વનમાં કયાં જશે. એનો તરસે જીવ જતો હશે. તું જઈને પાણી પા. આટલું કહેતા શ્રવણના પ્રાણ છૂટે છે.

દશરથ ઘડો લઈને ઝાડ પાસે આવે છે. એનો પગરવ સાંભલી શ્રવણનાં માતાપિતા પૂછે છેઃ 'જંગલી જાનવર છે કે પછી માણસ ?' દશરથ પાસે આવીને બોલે છેઃ 'મા બાપ, જાનવર નથી. તમારો દીકરો છું. પાણી લઈને આવ્યો છું.' તેઓ દશરથની બોલાશ ઓળખી જાય છે. દશરથ ભૂલ કબૂલે છે. માતાપિતા વિલાપ કરવા લાગે છે. રડતાં રડતાં બોલે છે : 'તે અમને વનની વચ્ચે રાખ્યાં અમે ક્યાંયનાય ના રહ્યાં. જા, એ તીરથી જ તારું મરણ થશે.'

ભગવાનને વારતા રાખવાની હશે. બંને ભગવાનનું સમરણ કરે છે. વૈકુંઠપુરીમાં ભગવાનને ખબર પડે છે. આકાશમારગે અમરપાલખી આવે છે. બંને પાલખીમાં બેસી ઊડી (સ્વર્ગે) જાય છે. દુઃખી હૃદયે દશરથ શ્રવણના શબ પાસે આવે છે. ચંદનચિતા ગોઠવે છે. ચિતા પર શ્રવણને સુવાડી આગ દે છે. અને સતયુંગની વારતા કળિયુગમાં આગળ ચાલે છે.

વારતા આગળ ચાલે છે તેમાં દશરથ બાણના ફળાને ઘસીઘસી નાનું કરે છે. વધુ ઘસતાં હાથમાંથી છટકી દરિયામાં પડે છે. માછલું ગળી જાય છે. એ મછ માછીમારની જાળમાં સપડાય છે. એનું પેટ ચીરતાં ફળું નીકળે છે. જે લુહાર રાખી લે છે. એની નરેણી બનાવે છે. નરેણીને દશરથનો નાઈ ખરીદી લે છે. નવી નરેણીથી દશરથના નખ કાપે છે. નખ કાપતાં રાજાની જમણી આંગળી વઢાય છે. પાટો બંધાય છે. પાકે છે ને બહુ દુઃખે છે ત્યારે કૈકેયા-કૌશલ્યા એને વારાફરતી મોંમાં રાખે છે. કૌશલ્યાના વારા વખતે રાજા મુગતિ પામે છે. 'તમે જ રાજાને ખઈ ગઈ છો' એમ આળ ચડાવી ઝગડે છે. આમ શ્રવણના માતાપિતાના શાપને લીધે રાજા દશરથ મૃત્યુ પામ્યા. વિધિના લેખ પૂરા થયા. હા...રો એ ખાંમદાંન વારતા રાખવી... ઓં આવી ન લેખ પૂરા થતા... હા... રો મરાઝ અવેં...

શ્રીસયાજી સાહિત્યમાળા

		રૂા. પૈ.
૩૫૧	ગુજરાતનો પૉટરી ઉદ્યોગ – શ્રી શાંતિલાલ પી. પુરોહિત (૧૯૭૫)	૯.૦૦
૩૫૨	ઊંડાણનો તાગ – શ્રી છોટુભાઈ સુથાર (૧૯૭૫)	૧૫.૦૦
૩૫૩	ભારતીય વીણા – (સ્વ.) પ્રો. રસિકલાલ એમ. પંડ્યા (૧૯૭૮)	૩૧.૦૦
૩૫૪	ચરકનો સ્વાધ્યાય, ભાગ ૨ – (સ્વ.) બાપાલાલ ગ. વૈદ્ય (૧૯૭૯)	૯૬.૦૦
૩૫૫	ચાંપાનેર : એક અધ્યયન – પ્રો. રમણલાલ ના. મહેતા (૧૯૭૯)	૩૬.૦૦
૩૫૬	દ્વારકાના પ્રદેશનો સાંસ્કૃતિક ઇતિહાસ – (સ્વ.) શ્રી ક. ન. જોષી (૧૯૭૯)	૪૪.૦૦
૩૫૭	આધુનિક ગુજરાતના સંતો, ભાગ ૨ – ડૉ. કેશવલાલ ઠક્કર (૧૯૭૯)	૪૫.૦૦
૩૫૮	સૂર્યશક્તિ – શ્રી પદ્મકાન્ત ૨. શાહ (૧૯૮૧)	૫૩.૦૦
૩૫૯	કવિ ગિરધર : જીવન અને કવન – ડૉ. દેવદત્ત જોશી (૧૯૮૨)	૫૧.૦૦
૩૬૦	વનૌષધિ-કોશ – અધ્યા. કે. કા. શાસ્ત્રી (૧૯૮૨)	૩૬.૦૦
૩૬૧	સહસ્રલિંગ અને રુદ્રમહાલય – (સ્વ.) શ્રી કનૈયાલાલ ભા. દવે (૧૯૮૩)	૭૯.૦૦
૩૬૨	વૈષ્ણવતીર્થ ડાકોર – (સ્વ.) ડૉ. મંજુલાલ ૨. મજમુદાર (૧૯૮૪)	૪૮.૦૦
૩૬૧	વૃદ્ધત્રયી અને લઘુત્રયી – (સ્વ.) બાપાલાલ ગ. શાહ (૧૯૮૪)	૩૩.૦૦
૩૬૩	વડોદરા : એક અધ્યયન – પ્રો. રમણલાલ નાગરજી મહેતા (૧૯૮૭)	૪૪.૦૦
૩૬૪	મહારાજા સયાજીરાવ ત્રીજા – (સ્વ.) પ્રો. હસિત હ. બૂચ (૧૯૮૮)	૪૯.૦૦
૩૬૫	નાભાજીકૃત ભક્તમાલના ઐતિહાસિક ભક્તો – એક અધ્યયન – શ્રી મૂલશંકર હી. કેવલિયા (૧૯૮૮)	૪૪.૦૦
૩૬૬	લેસર (પરમતેજ) – શ્રી પદ્મકાન્ત ૨. શાહ (૧૯૯૦)	૪૮.૦૦
૩૬૮	અર્વાચીન સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસ – (અનુ.) એ. જે. રાવલ અને વી. એસ. લેલે	૧૮૮.૦૦
૩૬૯	મંજુલવિમર્શ – શ્રી જે. પી. ઠાકર (૧૯૯૨)	૨૩૬.૦૦
૩૭૦	પ્રાણવહસ્રોતોના રોગો : શ્વાસ-દમ – વૈદ્ય મણિભાઈ બ્રહ્મભટ્ટ (૧૯૯૫)	૧૭૬.૦૦
૩૭૧	વડોદરાનાં મંદિરો – કુ. મંજુલા એમ. સોની (૧૯૯૫)	૬૮.૦૦
૩૧૭	આહારવિજ્ઞાન – (પુનઃમુદ્રણ) ડૉ. જયશંકર ધ. પાઠક અને (સ્વ.) અનંતરાય મ. રાવળ (૧૯૯૦)	૬૦.૦૦
૩૭૨	ભવાઈ : સ્વરૂપ અને લક્ષણો – કૃષ્ણકાંત ઓ. કડકિયા (૧૯૯૬)	૧૯૩.૦૦
૩૭૩	શ્રીમદ્ ઉપેન્દ્રાચાર્યજી – ડો. લવકુમાર મ. દેસાઈ (૧૯૯૬)	૧૯૫.૦૦
૩૭૪	નાભાજીકૃત ભક્તમાલના ઐતિહાસિક ભક્તો – એક અધ્યયન, ભાગ ૨ – શ્રી મૂલશંકર હી. કેવલિયા (૧૯૯૮)	૧૦૬.૦૦
૩૭૫	ભવાઈ : ભક્તિ, રસ અને આહાર્ય – કૃષ્ણકાંત ઓ. કડકિયા (૨૦૦૩)	૧૩૫.૦૦
૩૭૬	પ્લેટોના કેટલાક સંવાદો – હરસિદ્ધ એમ. જોશી (૨૦૦૪)	૧૯૦.૦૦
૩૭૭	કૈવલજ્ઞાન સંપ્રદાય : સિદ્ધાંત અને સાહિત્ય – બહેચરભાઈ પટેલ (૨૦૦૫)	૨૨૫.૦૦
૩૭૮	વિદુરનીતિનું વિષયપરિશીલન – ડૉ. અંબાલાલ દ. ઠાકર (૨૦૦૭)	૧૧૫.૦૦
૩૭૯	સ્વાધ્યાય-સૂચિ (પુસ્તક ૧-૨૫) – જયંત ઉમરેઠિયા (૨૦૦૭)	૨૧૫.૦૦
૩૮૦	મહાભારતનો યુદ્ધકાળ, – વસંત અ. ગોડબોલે (૨૦૧૧)	૧૪૦.૦૦
૨૮૩ / ૨૮૪	વડોદરા નરેશ શ્રીમંત સયાજીરાવ ગાયકવાડ (ત્રીજા) – ચિમનલાલ મગનલાલ ડોકટર, બીજી આવૃત્તિ (૨૦૧૪)	૫૮૫.૦૦
૩૮૧	મહાભારતનાં ગૂઢ રહસ્યો – અનુ. વિજયા લેલે (૨૦૧૬)	૪૩૦.૦૦
૩૮૨	સ્વાધ્યાય-સૂચિ (પુસ્તક ૨૬-૫૦) – જયંત ઉમરેઠિયા (૨૦૧૮)	૧૯૦.૦૦
૩૮૩	દેવર્ષિ નારદ – અનુ. વિજયા લેલે (૨૦૨૧)	૩૬૫.૦૦
૩૮૪	સોરઠ અને બરડા પ્રદેશનો ઇતિહાસ (૨૦૨૩) – પ્રદ્યુમ્ન ભ. ખાચર	૮૪૪.૦૦

પ્રાપ્તિસ્થાન : યુનિવર્સિટી પુસ્તકવેચાણ વિભાગ

પ્રો. સી.સી. મહેતા ઓડિટોરિયમ નજીક, જનરલ એજ્યુકેશન સેન્ટર સામે

ડી.એન. હોલ ક્રિકેટ ગ્રાઉન્ડ સામે, પ્રતાપગંજ, વડોદરા – ૩૯૦ ૦૦૨; ફોન નં. : ૦૨૬૫-૨૭૮૧૭૦૦

વ્યાયોગપત્રિકા – વિજ્ઞપ્તિપત્ર કે નાટક ?

વંદના લેલે*

સંસ્કૃત હસ્તલિખિતોના અનેક વિદ્યમાન પ્રકારોમાં વિજ્ઞપ્તિપત્ર એક આગવું સ્થાન ધરાવે છે. જૈન મુનિઓનો સંઘ ચાતુર્માસ દરમ્યાન વિહાર અટકાવી કોઈ એક સ્થળે વિરામ કરે છે પરંતુ ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓની અખંડતા વિરામના સ્થળે જળવાઈ રહે છે. શ્વેતાંબર જૈન સમાજમાં જૈન આચાર્યોને આ સમય દરમ્યાન માનપૂર્વક પોતાના સ્થળે આમંત્રિત કરી તેમના દ્વારા થતી ધાર્મિક પ્રવૃત્તિઓનો લાભ લેવા માટેનો વિનંતીપત્ર જે તે સ્થળના મોભીઓ દ્વારા લખાયેલ હોય છે તે પત્રોને વિજ્ઞપ્તિપત્ર કહેવાય છે. આવા પત્રો મોકલવાની પરંપરા ઘણા પ્રાચીન સમયથી અને એકમાત્ર જૈનસમાજમાં પ્રચલિત હતી. જેનો તબક્કો ઈ.સ.૧૪ના ઉત્તરાર્ધથી ઈ.સ. ૧૭-૧૮ સુધી મળી આવે છે.[1] અન્ય હસ્તલિખિતની સરખામણીમાં વિજ્ઞપ્તિપત્રનું સ્વરૂપ અનોખું છે. ટૂંકમાં તેનું વિવરણ કરીએ તો, તેના લખાણ માટે લાંબા કાગળનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. જેને લેખપટ (Scroll) કહેવાય છે. લખાણનો મુખ્ય વિષય વિજ્ઞપ્તિ હોવા ઉપરાંત, ત્યાં પહોંચવાના માર્ગનો નકશો અને તે સ્થળ વિષે અન્ય માહિતી વિવિધ રંગોનો ઉપયોગ કરી ચિત્રાંકિત કરી દર્શાવવામાં આવે છે. કાગળ પર બંને બાજુ લગભગ ૧.૫ ઈંચની જગ્યા છોડી સુશોભિત લીટીઓ દોરેલી હોય છે અથવા તો ફૂલોની વેલનું ચિત્રણ કરવામાં આવે છે. આ વિજ્ઞપ્તિપત્ર મોટાભાગે દેવનાગરી લિપિમાં લખાયાં છે અને કોઈકમાં મારવાડી અને ગુજરાતીનો પણ ઉપયોગ થયો છે. તે સંસ્કૃત ભાષામાં અથવા તો સંસ્કૃત અને સ્થાનિક ભાષામાં લખાયાં છે. જેનું સ્વરૂપ ગદ્ય અને પદ્ય મિશ્રિત અથવા તો કાવ્યાત્મક હોઈ શકે છે અને તેને ઉત્તમ કોટિનાં સંસ્કૃત કાવ્યોમાં ગણી શકાય.[2]

આ સંશોધનલેખમાં ઉપયોગમાં લેવાયેલ વ્યાયોગપત્રિકાનું લખાણ આવા જ એક લેખપટ ઉપર મળી આવે છે. તે જૈનમુનિ માટે લખાયેલ વિજ્ઞપ્તિપત્ર કરતાં જુદા જ પ્રકારની વિજ્ઞપ્તિ જણાઈ આવે છે.

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૬૦, વર્ષ ૨૦૨૩, પૃ. ૧૫૩-૧૭૪. ISSN 2250-0391

* ૨૦૧, કેશવ, ગુરુપ્રસાદ સોસાયટી, અકોટા, વડોદરા-૩૯૦ ૦૦૭, Email : vandana.lelel@gmail.com

1. *'Thai Prajñā, International Journal of Indology and Culture, Vol.I'*, "Citrapatas: A Scrolled Literary Heritage of India (with special reference to Oriental Institute, Baroda)." Sanskrit Studies Centre, in collaboration with the Department of Oriental Languages and the Faculty of Archaeology, Silpakorn University, Bangkok, Thailand, 2017, pp.190-191

2. Hiranand Sastri, *Ancient Vijñaptipatras*, World Public Library Edition, Classic Literature Collection, World Public Library. org (Sri Pratapsimha Maharaj Rajyabhisheka Granthmala, Memoir No. 1. Baroda State Press, 1942, p.2)

નાટકની પટકથાનું પ્રકટીકરણ કરવા માટે લખાયેલ વિજ્ઞપ્તિ અથવા તો વિનંતિને નાટકના સ્વરૂપમાં રજૂ કરાઈ છે. તેથી તેના બાહ્ય સ્વરૂપ અને આંતરિક સ્વરૂપને ધ્યાનમાં લઈને આ હસ્તપ્રતને વિજ્ઞપ્તિપત્રના પ્રકારમાં મૂકવી કે નાટકના પ્રકારમાં તે શંકાનું નિરાકરણ કરવાનો પ્રયત્ન આ સંશોધનલેખમાં કરવામાં આવ્યો છે. આ હસ્તલિખિતની એક જ પ્રત ઉપલબ્ધ હોઈ તેનો સંસ્કૃત પાઠ તેના આધારે સંપાદિત કર્યો છે.

વ્યાયોગપત્રિકાની હસ્તપ્રત પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, વડોદરામાં સુસંગ્રહીત છે. તેનું વિવરણ નીચે મુજબ છે.

અનુક્રમ નં.	: ૨૮૩૮૧	વિષય :	નાટક
સ્વરૂપ	: લેખપટ[3]	લિપિ :	દેવનાગરી
પરિમાણ	: ૯૫.૫ x ૨૦.૫ સે.મી.	ભાષા :	સંસ્કૃત
ગ્રંથસંખ્યા	: ૧૭૦	લેખક :	શ્રીનિવાસ

આ હસ્તપ્રતની પુષ્પિકા અનુષ્ટુપ છંદમાં છે જે ફક્ત લેખકનાં નામ અને કૃતિનો નિર્દેશ કરે છે.

इति श्रीश्रीनिवासेन पण्डितेन विनिर्मितः
व्यायोगः पत्रिकाख्योऽयं बोभवीतु सदां मुदे ।। व्यायोगपत्रिका ।।१७।।

લખાણમાં લેખકે કૃતિના રચનાકાળનો નિર્દેશ કર્યો ન હોવાથી તેનું અનુમાન વ્યાયોગપત્રિકામાં આવેલ સંદર્ભો અને અન્ય પુરાવાઓના આધારે શક ૧૭૯૧ (ઈ.સ. ૧૮૬૯) કરવામાં આવ્યું છે જેની વિસ્તારથી ચર્ચા લેખકપરિચયના શીર્ષક હેઠળ કરી છે. તદુપરાંત, હસ્તપ્રતના લખાણની ભાષા, અક્ષરો અને કાગળની સ્થિતિના નિરીક્ષણ પરથી પણ તે ૧૮મી સદીના ઉત્તરાર્ધમાં અથવા ૧૯મી સદીની શરૂઆતમાં લખાઈ હોવી જોઈએ.

શ્રીનિવાસ પંડિત કરવીરક્ષેત્ર – સાંપ્રતનું કોલ્હાપુર, મહારાષ્ટ્રનાં નિવાસી હોઈ તેમનું ઉપનામ રાવજી પંડિત હતું જે નીચે દર્શાવેલ નાટકના ગદ્યાંશમાં ઉદ્ધૃત થયું છે.

पत्रिकाव्यायोगः श्रीमद्वाराणसीक्षेत्रे तत्सविधे प्रकटयितव्य इति तत्प्रेमाभिलाषिभिः श्रीमत्करवीरक्षेत्रनिवासिभिः श्रीरावजीमहाराजापरनामभिः श्रीनिवासपण्डितैरस्मत्प्रभुभिरादिष्टोऽस्मि । (व्यायोगपत्रिका भाग १)

---

3. આ હસ્તપ્રત લેખપટના સ્વરૂપમાં હોવાથી, તેની લંબાઈને ધ્યાનમાં લેતાં તેના ફોટોગ્રાફ ૬ વિભાગમાં લેવામાં આવ્યા છે. તેનો જ આધાર લઈ, હસ્તપ્રતના વિષયવસ્તુના અહીં સંદર્ભ ટાંકવામાં આવ્યા છે.

આ હસ્તપ્રતનો ઉલ્લેખ New Catalogus Catalogorum (N.C.C.) અને સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસનું આલેખન કરનારા વિવિધ પ્રકારના અન્ય સંદર્ભગ્રંથોમાં મળી આવતો નથી. તદુપરાંત, પુષ્પિકામાં પણ લહિયા વિષે કોઈ ઉલ્લેખ ન હોવાથી આ હસ્તલિખિત લેખકની મૂળપ્રત અને એકમાત્ર પ્રત હોઈ શકે છે એવું અનુમાન કરી શકાય.

વ્યાયોગપત્રિકા હસ્તપ્રતની લાક્ષણિકતાઓ : વિજ્ઞપ્તિપત્રનાં સામાન્ય લક્ષણો ધરાવતી આ હસ્તપ્રત આછા વાદળી કાગળ પર કાળા રંગની શાહીનો ઉપયોગ કરી સુંદર હસ્તાક્ષરોમાં લખાયેલી છે. કાગળની બંને બાજુએ કાળી શાહીથી હાથથી જ ઊભી પોલી લીટીઓ દોરી તેમાં પીળો રંગ ભરીને હાંસિયા બનાવ્યા છે. લખાણની વચ્ચે વચ્ચે ઘણી જગ્યાએ કાળી શાહીથી નાના નાના ચોરસ અને લંબચોરસ આકૃતિઓ નજરે પડે છે જેની ખાલી જગ્યામાં પીળો રંગ ભરેલો છે અને કાળા રંગમાં આડી તથા ઊભી લીટીઓ દોરી છે. પ્રથમ નજરે તેનો ઉપયોગ હસ્તપ્રતને સુશોભિત કરવા માટે કર્યો હશે તેમ જણાયું. પરંતુ તેમની વચ્ચે ચોક્કસ અંતર, હેતુનો અભાવ જણાયો અને વધુ બારીકાઈથી જોતાં જણાયું કે લેખકની અથવા લહિયાની લખવામાં થયેલી ભૂલોને ભૂંસીને આવી આકૃતિઓનો ઉપયોગ કરી વધારે સુંદર બનાવવામાં આવી છે. પ્રથમ પાના પર પહેલા શ્લોકની પહેલી પંક્તિના એક એક અક્ષરને આંતરે લાલ રંગનો છંટકાવ છે. ત્યારપછી પણ લાલ રંગનો ઉપયોગ હાઈલાઈટર તરીકે કરવામાં આવ્યો છે. જેમાં અમુક પવિત્ર અક્ષરો દા.ત. स्वस्ति, શ્લોકના આંકડા, નાટકનાં પાત્રો વગેરેનો સમાવેશ થાય છે. લાલ રંગના ઉપયોગથી એવું અનુમાન કરી શકાય કે હસ્તપ્રતના કર્તા માટે આ હસ્તપ્રત અતિશય પવિત્ર હશે અથવા તો તેની સુંદરતા વધારવા માટે પણ તેનો ઉપયોગ કર્યો હશે. લેખક અથવા લહિયાથી લખાણમાં રહી ગયેલ કોઈ કોઈ અક્ષરો અને વાક્યો કાકપાદનાં ચિહ્નોનો ઉપયોગ કરીને હાંસિયામાં દર્શાવ્યાં છે.

લેખકનો પરિચય : શ્રીનિવાસ પંડિતનો કાળ, સ્થળ, વિવિધ રચનાઓ, કુળ તેમજ તેમના પૂર્વજો વિષેની સંપૂર્ણ માહિતી સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસ વર્ણિત કરનાર વિવિધ પ્રકારના સંદર્ભગ્રંથોમાં ઉપલબ્ધ નથી. પરંતુ વ્યાયોગપત્રિકામાં લેખકનું નામ, ઉપનામ, સ્થળ, અમુક રચનાઓ અને પૂર્વજો વિષેની થોડી પણ મહત્ત્વની માહિતી અનાયાસે નાટકના સંવાદો થકી ઉપલબ્ધ કરાઈ છે અને ખૂટતી કડીઓ અન્ય ગ્રંથોના આધારે એકત્રિત કરી તેમનો પરિચય આપવાનો એક પ્રામાણિક પ્રયત્ન અહીં કર્યો છે.

૧) **શ્રીનિવાસ પંડિતનો સમય :** સૌ પ્રથમ, લેખકના કાળ વિષે વિચાર કરીએ તો તેની માહિતી તેમની અન્ય રચનાઓના સંદર્ભોના આધારે જ પ્રાપ્ત થાય છે. શ્રીનિવાસ પંડિતે વ્યાયોગપત્રિકામાં નીચે મુજબની રચનાઓનો ઉલ્લેખ આ નાટકના એક ગદ્યાંશમાં કર્યો છે.

श्रीमल्लक्ष्मीसाहस्रयुपरि तैर्व्याख्या कृता । सा पुण्यनगरे शिलायामङ्किता । तस्याः प्रतिः१ । अथ च द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिति श्रीमद्भागवतस्थश्लोके प्रसङ्गवशाद्विरोधोद्भावनमुद्भाव्य तत्परिहारकर्त्री

तदुपरि टीका कृता । तस्याः प्रतिः १ । परं च दानधर्मस्थं(म्) एको विष्णुरिति पद्यं वर्तते । तदन्ननिवेदनसमये सर्वत्र सर्वेऽपि पठन्ति । तदर्थविचारे संगत्यभावो दृश्यतेऽतस्तस्मिन्टीकाकरणार्थं (दृश्यतेऽतस्तस्मिंष्टीकाकरणार्थं) ताडपद्युपनामकरामरायाख्यैः कार्यवाहकैरस्मत्प्रभुनिकटे प्रेषितं तदुपर्यपि टीका कृता तस्याः प्रतिः १ । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૪,૫). આ ગદ્યાંશ પ્રમાણે : ૧) શ્રીલક્ષ્મીસહસ્રની વ્યાખ્યા ૨) શ્રીમદ્ભાગવતગ્રંથમાં ઉદ્ધૃત શ્લોક 'द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिति' ઉપર વિરોધાભાસ ઉત્પન્ન થવાની શક્યતાને ધ્યાનમાં લઈ તેનો પરિહાર કરતી ટીકા ૩) દાનધર્મ વિષયને અનુલક્ષીને લખાયેલા ગ્રંથોમાં 'एको विष्णुरिति' શ્લોકમાં વિસંગતીનું નિરાકરણ કરવા માટે શ્રી રામરાય ઉર્ફ તાડપદ્દી નામના ગૃહસ્થ દ્વારા કરવામાં આવેલ વિનંતીને માન આપી તેની પર લખલી ટીકાનો સંદર્ભ મળે છે. આ ત્રણ કૃતિઓમાંથી ફક્ત લક્ષ્મીસહસ્ર વ્યાખ્યા ઉપલબ્ધ થઈ છે.

અત્ર નોંધનીય છે કે શ્રીનિવાસ પંડિત ઉર્ફ રાવજી પંડિતના નામનો અને તેમના દ્વારા રચાયેલ કેટલીક કૃતિઓનો ઉલ્લેખ NCC[4] પણ કરે છે. જેમાં ૧) બાલકવિ રચિત મહિષશતક ઉપર સુબોધિની ટીકા ૨) રાગતત્ત્વ વિબોધ ૩) વેંકટાધ્વરિ કૃત લક્ષ્મીસહસ્ર ઉપર બાલબોધિની ટીકાનો સમાવેશ થાય છે. સંશોધનના પુરાવાઓને વધુ મજબૂત કરવા માટે કરેલ પ્રયત્નોના ભાગરૂપે ઉપર દર્શાવેલ કૃતિ ક્રમાંક ૧ મળી શકી નથી. કૃતિ ક્રમાંક ૨ રાગતત્ત્વવિબોધ એ ભારતીય સંગીત ઉપર લખાયેલ પુસ્તક છે. આ પુસ્તકની પ્રસ્તાવનામાં સંપાદક શ્રી વિભુકુમાર દેસાઈ, લેખકનો કાળ ઈ.સ. ૧૬૫૦ થી ઈ.સ. ૧૬૮૦ દરમ્યાનનો ગણે છે,[5] જે વ્યાયોગપત્રિકાના લેખક સાથે સુસંગત નથી. તેમાં જ પ્રો. ભાતખંડે, શ્રીનિવાસનો સમય અઢારમી સદીનો પૂર્વાર્ધ સૂચિત કરે છે.[6] તેમનું આ મંતવ્ય વ્યાયોગપત્રિકાના લેખકના કાળ સાથે સુસંગતતા ધરાવે છે. તેથી એવું નિશ્ચિત કરી શકાય કે ઉપર જણાવેલ NCC માં રાગતત્ત્વવિબોધના લેખક કોઈ અન્ય શ્રીનિવાસ છે. કૃતિ ક્રમાંક ૩ – વેંકટાધ્વરિ કૃત લક્ષ્મીસહસ્ર ઉપર બાલબોધિની ટીકા, હસ્તપ્રતમાં દર્શાવ્યા પ્રમાણે તેની ઉપર શ્રીનિવાસની જ વ્યાખ્યા છે અને તેનું સમર્થન NCCનો અન્ય ખંડ[7] પણ કરે છે.

આ ઉપરાંત, શ્રીનિવાસ પંડિતે લખેલ મરાઠી ભાષામાં 'रामचंद्र पंडित उर्फ बाबा महाराज ह्यांचा इतिहास' નામનું પુસ્તક તેમના દાદા રામચંદ્રના પાંડિત્યસભર ચરિત્રનો પરિચય કરાવે છે.

---

4 *New Catalogus Calalogorum, An Alphabetical Register of Sanskrit and Allied Works and Authors, Vol. XXV,* Edited by Dr. Siniruddha Dash, University of Madras, 2011, p.87

5 Srinivasa, *Rāgatattvavibodha,* A Work on Indian Music, Edited by Vibhukumar S. Desai, Oriental Institute, Baroda, 1956, p. ii

6 એજન

7 *New Catalogus Calalogorum, An Alphabetical Register of Sanskrit and Allied Works and Authors, Vol. XXXVI,* Edited by Dr. Siniruddha Dash, University of Madras, 2014, p.42

આ પુસ્તક શક ૧૭૭૪ માં લખાયું છે અને શક ૧૭૮૫ માં તેની નકલ થઈ છે.[૮] આ માહિતી શ્રીનિવાસ પંડિતનો સમય ઈ.સ. ૧૮૦૦નો ઉત્તરાર્ધ સૂચિત કરે છે. તેમણે તેમના પરદાદા શ્રી સિદ્ધેશ્વર મહારાજનું ચરિત્ર 'શ્રી ગુરુ ગીતામૃત' ગદ્ય-ઇતિહાસ; ચરિત્રના સ્વરૂપમાં લખ્યું હોવાની જાણકારી પણ આ જ સંદર્ભમાં ઉપલબ્ધ છે.[૯]

લેખકની પ્રતિભા નાટકકાર ઉપરાંત વેદના અભ્યાસક, કાવ્યકાર અને અલંકારરત્નાકર તરીકે તેમના લક્ષ્મીસહસ્રની ટીકામાં ઉદ્ધૃત સ્વપરિચયાત્મક શ્લોકમાંથી જાણવા મળે છે.

यः श्रीरामपदाम्बुजद्वयऽऽस्वादैकरोलम्बको
वेदव्याकृतिकाव्यनाटककरा(?)लङ्कारत्नाकरः ।
यावद्बुद्धिबलोदयं विवृतवान् स श्रीनिवासः कविः
स्तोत्रं वेङ्कटयज्वनिर्मितमिदं लक्ष्मीसहस्राऽभिधम् ॥२॥[१०]

શ્રીનિવાસ પંડિતના સમયગાળાનો અંદાજિત પણ મહત્ત્વનો પુરાવો વેંકટાધ્વરિ કૃત લક્ષ્મીસહસ્ર પર બાલબોધિની ટીકાની પુષ્પિકામાંથી મળી આવે છે. જે નીચે મુજબ છે.

स्वस्तिश्रीनृपशालिवाहनशकेऽब्ध्यष्टाऽद्रिधात्रिमिते ।
वर्षे दुन्दुभिसंज्ञके हरितिथौ मार्गाऽऽध्यापक्षे गुरौ ।
टीकेयं करवीरनामनगरे लक्ष्मीसहस्रस्तुते-
र्नीत्वाऽन्तं रघुवीरसुन्दरपदद्वन्द्वारविन्देऽर्पिता ॥४॥[११]

આ પુષ્પિકાને આધારે વેંકટાધ્વરિ કૃત લક્ષ્મીસહસ્ર સ્તોત્ર ઉપર શ્રીનિવાસ પંડિતની બાલબોધિની ટીકા શક ૧૭૮૪/૧૭૮૭ (ઈ.સ. ૧૮૬૨/૧૮૬૫)ના સમયગાળામાં, કરવીરનગરે (સાંપ્રત-કોલ્હાપુર) લખાઈ છે. આ ટીકાનો ઉલ્લેખ લેખકશ્રી તેમના નાટકમાં પણ કરે છે (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૪,૫). આ સમયને આધારભૂત પુરાવો ગણીએ તો શ્રીનિવાસ પંડિતને ૧૮મી સદીના ઉત્તરાર્ધ અને ૧૯મી સદીના પ્રારંભકાળમાં મૂકી શકાય.

---

8. *All-India Oriental Conference, Bhandarkar, Oriental Research Institute,* "Introduction to the Commentary Prātiśākhya Jyotsnā", Sunanda R. Abhyankar, Proceedings of the All India Oriental Conference, Thirty-First Session, University of Rajasthan, Jaipur, October, 1982, Poona, 1984, pp.167,168

9. એજન

10. *Lakshmisahasra, Veṅkaṭādhvari with the commentary called Bālabodhini,* by Śrīnivāsa Paṇḍita or Rāvjī Mahājāja edited with Avataraṇikas by Rāma Śāstri Tailanga, Chawkhamba Sanskrit Book Depot, Benaras, 1906, pp.782

11. એજન

૨) વ્યાયોગપત્રિકાનો રચનાકાળ : આ નાટકની રચના લેખકે શક ૧૭૯૧ (ઈ.સ. ૧૮૬૯)માં કરી હોવાનું જણાય છે જે લક્ષ્મીસહસ્રની ટીકાની ૧૭૮૪/૧૭૮૭ (ઈ.સ. ૧૮૬૨/૧૮૬૫) પશ્ચાત્ છે. નાટકના લેખકે, નાટકમાં માનવીય પાત્રો સાથે ગોચર/અવકાશી પાત્રો શુક્લવત્સર, વૈશાખદ્વાદશી, ઉત્તરાભાદ્રપદા, કંચુકી-ધ્રુવયોગ, વિદૂષક - બાલવકરણ અને ભૃગુવાસરને રજૂ કર્યાં છે. આ પાત્રોનો સંબંધ શક ૧૭૯૧ના પંચાંગ (તિથિ, નક્ષત્ર, યોગ, કરણ અને વાર) સાથે મળી આવે છે.

૧) નાટકના મધ્યવર્તી ગદ્યાંશમાં લેખક ધ્રુવયોગ નામના કંચુકીનો, શક ૧૭૯૧ વર્ષમાં આવેલ શુક્લવત્સર નામના પાત્ર સાથે આગમનનો નિર્દેશ કરે છે. જે નીચે મુજબ છે.

ततः प्रविशति ध्रुवयोगाख्यकञ्चुकिना दर्शितमार्ग एकनवतियुतसप्तदशशत १७९१ परिवारपुरोगः शुक्लो वत्सरः । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૪).

૨) અધિકવૈશાખ દ્વાદશી, ભૃગુવાર (શુક્રવાર) સાથે પ્રવેશ કરે છે.

ततः प्रविशति सहचरेण भृगुवारेण दत्तहस्ता हंसवरगरुद्धौरतरशुक्ला चन्द्रिकापटावृताऽनशनव्रतोत्तरभोजनखिन्ना मन्दपादचारेणाधिकवैशाखद्वादशी (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૨).

શક ૧૭૯૧નું વર્ષ અધિક મહિના તરીકે અંકિત થયું છે જેની ઘોષણા નાટકના પ્રારંભે સૂત્રધારે કરી છે.

तेन च अस्मिन् वसन्तसमयेऽधिमासोत्साहे मिलितान् सभाजयितुमिच्छाम्यार्यमिश्रान् । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૧).

૩) વિદૂષક - બાલવકરણ નામનું કરણ છે.

ततः इतस्ततोऽवलोकयन् प्रविशति बालवकरणाख्यो विदूषकः । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૩)

૪) ઉત્તરાભાદ્રપદા નક્ષત્રનો પાત્રપરિચય નીચેના વાક્યથી અવગત થાય છે.

तच्छ्रुत्वा सामर्षा ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण तत्सहचारिण्युत्तराभाद्रपदाभिधेया तारा (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ ૩).

આ પાત્રોની પુષ્ટિ શક ૧૭૯૧ના વર્ષના પંચાંગના વિવિધ સ્રોતો દ્વારા કરી છે જેમાં ફક્ત ઉત્તરાભાદ્રપદા નક્ષત્રના બદલે ઉત્તરફાલ્ગુન નક્ષત્ર નોંધાયેલ છે. તે મુજબ, 'An Indian Ephmeris A.D. 1800 to A.D. 2000' નામના પુસ્તકમાં આપેલ ચાંદ્રવર્ષની ગણતરી પ્રમાણે શક ૧૭૯૧ (ઈ.સ. ૧૮૬૯) નું વર્ષ અધિક વૈશાખ શુક્લસંવત્સર તરીકે નોંધાયું છે, જેમાં તિથિ - ૧૨ (દ્વાદશી),

નક્ષત્ર - ૧૨ (ઉત્તરફાલ્ગુન) છે. અને સૌરવર્ષ પ્રમાણે તારીખ ૨૩ એપ્રિલ - શુક્રવાર દર્શાવે છે.[૧૨] તદુપરાંત, 'शंभरवर्षांचे पंचांग - शके १७०१ पासून शके १८०१ पर्यंत' મરાઠી પંચાંગમાં, આ બધી માહિતીની પૂર્ણપણે પુષ્ટિ થાય છે અને વધારામાં તે ધ્રુવયોગની પણ માહિતી આપે છે.[૧૩] અને બાલવકરણ નામના કરણની પુષ્ટિ આંતરજાલના સ્રોતથી કરવામાં આવી છે.[૧૪]

આ બધી જ અવકાશીય ઘટનાઓને લેખકે પોતાના નાટકમાં સુવ્યવસ્થિત રીતે ગૂંથી લીધી છે જે તેના રચનાકાળના પુરાવાનું સમર્થન કરે છે.

૩) **પૂર્વજો અને કુળ** : લેખકશ્રી શ્રીનિવાસ પંડિતના પૂર્વજો વિષે વ્યાયોગપત્રિકામાં શરૂઆતના ફક્ત બે શ્લોક થકી માહિતી અપાઈ છે. જેમાં તેમના કુળની તેમજ પિતાશ્રીના નામની માહિતી નથી. જ્યારે, લક્ષ્મીસહસ્રની બાલબોધિની ટીકામાં લેખક વિસ્તારથી પ્રારંભિક ૧૪ શ્લોકો દ્વારા અને ટીકાના અંતમાં આ બધી જ માહિતી આપે છે. જે વ્યાયોગપત્રિકા સાથે સુસંગતિ ધરાવે છે.

વ્યાયોગપત્રિકાનો પ્રારંભ લેખક નીચે દર્શાવેલ નમસ્કારવચન અને શ્લોકથી કરે છે.

श्रीमद्रामचन्द्रसिद्धेश्वरामृतराजगुरुभ्यो नम इदम् ।
श्रीकाशीस्थितविद्वद्भ्यो योऽग्रपूजां समीयिवान् ।
पितामहं सद्गुरुं च मम रामं नमामि तम् ।। व्यायोगपत्रिका १

આ થકી શ્રીમદ્રામચંદ્ર તેમના ઇષ્ટદેવ (લક્ષ્મીસહસ્ર શ્લોક ૫) અને પિતામહના (લક્ષ્મીસહસ્ર શ્લોક ૯) નામને સૂચિત કરે છે. જ્યારે સિદ્ધેશ્વરામૃતરાજ તેમના પ્રપિતામહ (લક્ષ્મીસહસ્ર શ્લોક ૬) છે.

वेदौ द्वौ षट् च शास्त्राणि सौजन्यश्रीनयाः कलाः ।
भक्तिर्ज्ञानं च यत्रासन्समे जयति सद्गुरुः ।। व्यायोगपत्रिका २

તેમના પ્રપિતામહ સદ્ગુરુના નામથી પ્રખ્યાત હોઈ તે દ્વિવેદ અને શાસ્ત્રપારંગત હતા. ભક્તિ અને જ્ઞાન બંને તેમના માટે સમાન હોવાનું જણાવાયું છે.

લક્ષ્મીસહસ્રટીકામાં જણાવ્યા પ્રમાણે તેમનો જન્મ અત્રિ કુળમાં થયો હોઈ, પિતાનું નામ

12. Dewan Bahadur L. D. Swamikannu Pillai, *An Indian Ephemeris A.D. 1800 to A.D. 2000'*, B.R. Publishing Corporation Delhi, First Reprint 2019, First Published 1915, p.140
13. रा.रा. शंकर नरहर जोशी, शंभरवर्षांचें पंचांग (शके १७०१ पासून शके १८०१ पर्यंत), printed and published at Chitrashala, Pune, 1910 (unfortunately page numbers are cut while rebinding the book)
14. https://www.drikpanchang/month-panchang.html?date=23/04/1869 dtd.31/07/2021

શ્રીકૃષ્ણ હતું.

श्रीकृष्णात्रिकुलोद्भवः शिवमहीपालस्य यः सद्गुरु-
र्देवोपाद्धयवान् यजुः श्रुतिधरः सिद्धेश्वरो योगिराट् ।
रामस्तनयः समस्तविबुद्धैः काश्यां कृताग्रयार्चनः
कृष्णस्तस्य सुतः कलासु कुशलस्तस्याऽप्यभुदात्मजः ।।

(લક્ષ્મીસહસ્ર સ્તબક ૨૫, શ્લોક ૧, પૃ.૭૮૨).

ઉપર રજૂ કરેલ માહિતી લેખકનો પૂર્ણ પરિચય આપે છે.

વ્યાયોગપત્રિકા નાટકની કથાવસ્તુ, પાત્રપરિચય, સારાંશ અને શીર્ષક :

૧) કથાવસ્તુ : વ્યાયોગપત્રિકા નાટક, અંક કે ગર્ભાંકથી વિભાજિત નથી પરંતુ તે એક સળંગ રચના છે. પત્રિકાવ્યાયોગ (નાટકકાર દ્વારા ઉપયોજિત શબ્દપ્રયોગ-ભાગ ૧) અથવા વ્યાયોગપત્રિકા એક નાટકના સ્વરૂપમાં વિજ્ઞપ્તિપત્ર છે. તે નાટકની પટકથાનું પ્રકટીકરણ કરવા માટેની વિજ્ઞપ્તિપત્રિકા છે. આ વિજ્ઞપ્તિપત્ર થકી લેખક દ્વારા રચાયેલી અન્ય ત્રણ કૃતિઓ ૧) શ્રીલક્ષ્મીસહસ્રની વ્યાખ્યા ૨) શ્રીમદ્ભાગવતગ્રંથમાં ઉદ્ધૃત શ્લોક 'द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिति' ઉપર વિરોધાભાસ ઉત્પન્ન થવાની શક્યતાને ધ્યાનમાં લઈ તેનો પરિહાર કરતી ટીકા ૩) દાનધર્મ વિષયને અનુલક્ષીને લખાયેલા ગ્રંથોમાં एको विष्णुरिति શ્લોકમાં વિસંગતીનું નિરાકરણ કરવા માટે શ્રી રામરાય ઉર્ફે તાડપદ્રી નામના ગૃહસ્થ દ્વારા કરવામાં આવેલ વિનંતીને માન આપી તેની પર લખેલી ટીકા પારિતોષિક સ્વરૂપે વારાણસીક્ષેત્ર નિવાસી વિદ્વાનો શ્રીમદ્ ભિકુશાસ્ત્રી પાઠક અને રાજારામશાસ્ત્રી સમક્ષ મોકલવાનો ઉપક્રમ પણ લેખક દ્વારા યોજવામાં આવ્યો છે. આ કાર્ય સાધ્ય કરવા માટે લેખકે વિવિધ પાત્રોને નિયુક્ત કર્યાં છે. વારાણસીક્ષેત્ર નિવાસી વિદ્વાનો દ્વારા આ ત્રણ કૃતિઓનો ઉપહાસ ન થાય, યોગ્ય આલોચના થાય અને તેમની કૃપાદષ્ટિ મળી રહે તેવો આશય આ નાટક દ્વારા રજૂ કરાયો છે.

૨) પાત્રપરિચય : આ કથાવસ્તુની રજૂઆત નાટકકાર પ્રહસનના સ્વરૂપમાં કરે છે. 'હાસ્ય' આ નાટકનો આત્મા છે. નાટકના વિષયને માનવીય અને વિવિધ ગોચર/અવકાશી પાત્રોને સંયોજી, રમૂજી સંવાદો દ્વારા વિકસિત કરવામાં આવ્યો છે જેની પકડ નાટકનાં માનવીય પાત્રો : સૂત્રધાર - શ્રીનિવાસ પંડિત, પત્રપ્રણિધિ (પત્રદૂતનો અનુજ) અને પત્રદૂત છે. જ્યારે ગોચર પાત્રો : વિદૂષક - બાલવકરણ, ભૃગુવાસર, વૈશાખદ્વાદશી, ઉત્તરાભાદ્રપદા, શુક્લવત્સર અને કંચુકી - ધ્રુવયોગ છે.

૩) સારાંશ : સુગમતા માટે, અહીં નાટકને પ્રસંગાનુસાર ૫ વિભાગમાં વિભાજિત કરવામાં આવ્યું છે.

ભાગ ૧ - નાટકનો પ્રારંભ નાંદીથી થાય છે અને તેની રજૂઆત પછી સૂત્રધાર મહત્ત્વની ઘોષણા સાથે પ્રવેશ કરે છે. તે મુજબ સૂત્રધારને વ્યાયોગપત્રિકા, વારાણસીક્ષેત્ર નિવાસી શ્રીમદ્ ભિકુશાસ્ત્રી પાઠક

અને રાજારામશાસ્ત્રી આ બંને સંસ્કૃત વિદ્વાનની સમક્ષ રજૂ કરવાની આજ્ઞા શ્રીનિવાસ પંડિત દ્વારા કરાઈ છે. આ જ કાર્ય માટે પત્રપ્રણિધિની પણ નિયુક્તિ સ્વામી ઉર્ફ શ્રીનિવાસ પંડિતે કરી છે. રંગમંચ ઉપર બંનેની મુલાકાત હાસ્યસભર સંવાદ થકી રજૂ થઈ છે. જે અહીં રજૂ કર્યો છે. પત્રપ્રણિધિ વારાણસીનો માર્ગ દુર્ગમ હોઈ ત્યાં કેવી રીતે પહોંચવું તેની ચિંતામાં તેના એક સંવાદમાં ભટ - (જંગલી જાત) ના બદલે ભટ્ટ (વિદ્વાન માણસ માટે વપરાતી સંજ્ઞા) શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરે છે અને હાસ્યરસની પ્રતીતિ થાય છે.

पत्रप्रणिधिः – श्रीकाशीक्षेत्रं त्वतिदूरतरमस्ति इति श्रूयते । अहं त्वेकाकी गन्तव्यमार्गानभिज्ञः मार्गस् त्वतिक्रूरैरञ्जनाचलनिभैर्भयानकैर्गलनालच्छेदकारिभिः लुण्ठनपरैः पश्यतो हरैः किरातभट्टैरित्यर्धोक्ते ।

सूत्रधारः – अरे पत्रप्रणिधे किं तन्मार्गे भूसुरा अपि लुण्ठनपराः ।

पत्रप्रणिधिः – नहि नहि ।

सूत्रधारः – तर्हि ?

पत्रप्रणिधिः – भावप्रभुकार्यगौरववशात् त्वरितं गन्तुमुत्सुकस्य मम मुखादधिक एकष्टकारो निः सृतः । अस्ति च भटभट्टयोर्नामतः कर्मतश्च महान्भेद इति जानामि । यशोक्तमार्यैरिमं मासमधिकृत्य (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ-૨)

અને કોઈક માર્ગદર્શકની અપેક્ષા સાથે નાટ્યમંચ ઉપર મૂર્છિત થાય છે. આ સાથે નાટકની પ્રસ્તાવના પૂરી થયાનો સંકેત છે.

ભાગ ૨ - ત્યાર પછી, અધિક માસમાં આવતી વૈશાખદ્વાદશી જે એકાદશીના ઉપવાસથી ખિન્ન થયેલ છે તે ભૃગુવાર સાથે પ્રવેશ કરે છે. મંચ ઉપર પત્રપ્રણિધિને મૂર્છિત અવસ્થામાં જોઈ તેની ઉપર પાણીનો છંટકાવ કરે છે અને પત્રપ્રણિધિ ભાનમાં આવે છે. તરત જ વિદૂષક - બાલવકરણ અને ઉત્તરાભાદ્રપદા તારાનો પ્રવેશ થાય છે. આ સાથે મંચ ઉપર પાંચ પાત્રો એકત્રિત થયેલાં જોવા મળે છે. આ સંજોગોમાં, અહીં પણ લેખક નાટકના સંવાદમાં चिता(શબનું દહન) અને चिन्ता(કાળજી) શબ્દપ્રયોગોની યોજના કરી ફરી એક વખત હાસ્યરસનો અનુભવ કરાવે છે.

पत्रप्र. – समाश्वस्य । मातर्नास्म्यातपादिना परिश्रान्तः । किन्तु चितया......

द्वादशी सम्भ्रमम् । कर्णौ पिधाय – शान्तं पापं २ (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ-૨)

पत्रप्रणिधिः –(सानुस्मरणम्) मातर्नास्मि त्रस्तः कृतान्तात् । किन्तु चिन्ताज्वरजर्जरितजिह्वस्य मम चिन्तयेति वक्तव्येऽनुस्वारोच्चारणं न जातम् । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ-૩)

ભાગ ૩- એટલામાં જ નેપથ્યે મહાન કલરવ સંભળાય છે અને તે સાથે ધ્રુવયોગ નામનો કંચુકી શુક્લવત્સરને માર્ગ બતાવી દબાદબાભર્યો પ્રવેશ કરાવે છે. આ શુક્લવત્સરનો ૧૭૯૧ના વર્ષમાં પ્રવેશ થયેલો છે અને તે પરિવારનો મુખ્ય છે. કંચુકી પણ તેના પ્રભુ(શ્રીનિવાસ પંડિત)ની આજ્ઞા પ્રમાણે વ્યાયોગપત્રિકાની વિજ્ઞાપના કરવા માટે જ આ સ્થળે આવ્યો છે. તે સાંભળી શુક્લવત્સર પણ આ કાર્યમાં બધા સાથે જોડવાની ઇચ્છા વ્યક્ત કરે છે.

નાટકના રંગમંચ ઉપર ભેગાં થયેલાં બધાં જ પાત્રો વારાણસીના માર્ગથી અનભિજ્ઞ હોવાથી ત્યાં કેવી રીતે પોંહચવું તેની ચિંતામાં વિચારમગ્ન છે. એટલામાં જ વૈશાખદ્વાદશી જાહેર કરે છે કે તે વારાણસીના માર્ગથી પરિચિત છે કારણકે તે હાલમાં જ બંને શાસ્ત્રીવર્યોની મુલાકાત લઈને પરત ફરી છે અને સાથીઓને જણાવે છે કે શ્રીનિવાસ પંડિતે આ જ કાર્ય પાર પાડવા માટે અન્ય એક પત્રદૂતની પણ નિમણૂક કરી છે. અને તે સાથે જ પત્રદૂતનો પ્રવેશ થાય છે. આ પત્રદૂતના પરિવેષનું ખૂબ જ આહ્લાદક અને તેના પાત્રને સુસંગત વર્ણન કર્યું છે. તે નીચે મુજબ છે -

कोऽयमायाति चन्दनचर्चितनिटिलोपित(त?)दर्धस्थापितव्यत्यस्तकौसुम्भोष्णीषः दीर्घवसन-बद्धकटिरपि तत्संलग्नकच्छपुटविच्छुरितकरालकरवालः दृढतरतनुरपि चरणालम्बिकञ्चुकावृतः पृष्ठधृतचर्मापितत्यादूधृतपादः रुचिरतरदृष्टिरपि हस्तधृतयष्टिः । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ-૪) .

ભાગ - ૪ હવે, રંગમંચ ઉપર બધાં જ પાત્રો ભેગાં થયાં છે. પત્રપ્રણિધિ પાસે વારાણસી સ્થિત બંને પંડિતોને પારિતોષિક રૂપે મોકલાયેલ ઉપર દર્શાવેલ ત્રણ ટીકાઓ છે. નાટકકારે, આ ટીકાઓમાં લક્ષ્મીસહસ્રની વ્યાખ્યા અન્ય બે કૃતિઓની સરખામણીમાં કેવી રીતે અતિ સાહસિક અને વિદ્વત્તાસભર કાર્ય છે તેની સમર્થાત્મકતા માટે પત્રપ્રણિધિ અને પત્રદૂત વચ્ચે રોચક ચર્ચા યોજી છે. તે મુજબ વેંકટાધ્વરિકૃત લક્ષ્મીસહસ્રમાં સ્તબક ૨૨ જે ચિત્રસ્તબક નામનું શીર્ષક ધરાવે છે તેની ઉપરની ટીકાને કાળા પત્થરને લોખંડથી તોડવા બરાબરની ઉપમા આપી છે. શ્રીનિવાસ પંડિતે તેને ભેદીને ટીકા કરવાનું કાર્ય કર્યું છે તેમ પત્રદૂત જણાવે છે જે સંવાદ નીચે પ્રમાણે વર્ણિત થયો છે.

पत्रदूतः - तद्ग्रन्थकारेण चित्रस्तबकसमाप्तौ आयासि त्वं न । कथमधुना चित्रकूटाश्मचारादायासित्वम् इत्युक्तम् । तस्य कृष्णोपलप्रायग्रन्थस्य लोहेनापि स्फोटनमशक्यम् । तस्य भेदनमयं लेखनिकयैव कर्तुमुद्युक्त इति । (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ-૫,૬) .

ભાગ - ૫ નાટકનાં બધાં જ પાત્રો વારાણસી જવા માટે તૈયાર થાય છે અને ભરતવાક્યમાં નાટકકાર અને શાસ્ત્રીવર્યોના દીર્ઘાયુષ્ય માટે શુભેચ્છા પ્રગટ કરી છે.

अस्मत्प्रभुः शास्त्रिवर्यौ शुक्लपक्षीयसोमवत् ।
कुर्वन्तः स्नेहसंवृद्धिं जीवन्तु शरदां शतम् ॥१५॥

અંતે, પૃષ્પિકામાં લેખક - નાટકકાર પોતાનું નામ અને કૃતિનો ઉલ્લેખ આપે છે તે પ્રમાણે-

इति श्रीश्रीनिवासेन पण्डितेन विनिर्मितः
व्यायोगः पत्रिकाख्योऽयं बोभवीतु सदां मुदे ।।१७।।
श्रीमद्रामचन्द्रसद्गुरुनाथार्पणं भूयात् ।

શીર્ષક : વ્યાયોગપત્રિકા નાટકના શીર્ષક સંબંધિત ચર્ચા પ્રારંભે ન કરતાં અંતમાં કરી છે. સંસ્કૃતજ્ઞોને માટે વ્યાયોગ શબ્દ એટલે નાટ્યશાસ્ત્ર અને સાહિત્યદર્પણમાં વર્ણિત કરેલાં ૧૦ રૂપકો પૈકી એક છે. વ્યાયોગ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ આપતાં અભિનવ ગુપ્ત કહે છે. 'व्यायामे युद्धप्राये नियुद्धयन्ते पुरुषा यत्रेति व्यायोग इत्यर्थः ।'[૧૫] અને તેનાં લક્ષણોની વિસ્તૃત ચર્ચા નાટ્યશાસ્ત્ર (૨૦.૮૭-૨૦.૯૦)[૧૬] અને સાહિત્યદર્પણ (૬.૨૩૧-૬.૨૩૩) માં આપેલ છે. બંને શાસ્ત્રોમાં ઉદ્ધૃત કરેલાં વ્યાયોગનાં સામાન્ય લક્ષણો મુજબ આ પ્રકારના નાટકમાં અલ્પ સ્ત્રીપાત્રો અને ઘણાં પુરુષપાત્રો, પ્રખ્યાત નાયકનું પાત્ર, યુદ્ધનાં દૃશ્યો, એકાંકી, ખ્યાતવૃત્ત વગેરે મળી આવ્યાં છે. બધાં લક્ષણોને ધ્યાનમાં લેતાં અહીં એક પણ લક્ષણનું સામ્ય દેખાતું નથી. સંસ્કૃત શબ્દકોશ વ્યાયોગનો અર્થ આ પ્રમાણે આપે છે- એક એકાંકી નાટકનો પ્રકાર; સાહિત્યદર્પણ દ્વારા ઉદ્ધૃત વ્યાખ્યા..[૧૭] પરંતુ, સાહિત્યદર્પણ અને નાટ્યશાસ્ત્રમાં આપેલ વ્યાખ્યાઓ સાથે વ્યાયોગપત્રિકાનો વર્ણિત વિષય સુસંગત નથી. તેથી તેના અર્થની સ્પષ્ટતા માટે સંસ્કૃત શબ્દ आयोगः એટલે કે અભિનય[૧૮] અને તેની સાથે वि પ્રત્યયને જોડતાં 'વિશેષ અભિનય'નો આધાર લઈ શકાય, જે સાહિત્યદર્પણના સંપાદક સત્યવ્રતસિંઘની હિંદી વ્યાખ્યામાં આપેલ વ્યાયોગ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ - विशेषेण आ समन्तात् युज्यन्ते कार्यार्थं संरभन्तेऽत्रेति व्यायोगः ।[૧૯] સાથે સાધર્મ્ય ધરાવે છે. પત્રિકા શબ્દને વિજ્ઞપ્તિપત્રના અર્થમાં લઈએ તો - 'નાટકની પટકથાનું પ્રકટીકરણ કરવા માટેની વિજ્ઞપ્તિપત્રિકા' એ રીતે શીર્ષકની સ્પષ્ટતા થાય છે. અને તે સાથે જ આ રચનાને હસ્તલિખિતના વિવિધ પ્રકારોમાં 'નાટક અને વિજ્ઞપ્તિપત્રનું એકીકરણ' તરીકે એક આગવા સ્થાનની ઉપલબ્ધતા ગણી શકાય.

વ્યાયોગપત્રિકા ભાષાકીય અને નાટકના સ્વરૂપસંદર્ભે વિશેષતાઓ : આ નાટકનો રચનાકાળ ૧૯મી સદીનો હોવાથી આધુનિક સંસ્કૃત સાહિત્યની રચનાઓના પરિપ્રેક્ષ્યમાં તેની વિશેષતાઓને લક્ષિત

---

15. *Nāṭyaśāstra, Vol.3,* Edited by Dr. N.P. Unni, NBBC Publishers & Distributors (P) Ltd., Delhi, Second Revised Edition, 2014, p.995

16. એજન, pp.994,995

17. Vaman Shivram Apte, *The Student's Sanskrit-English Dictionary,* Motilal Banarsidass Publishers, Delhi, Reprint 2000, p.540

18. એજન, pp.85

19. साहित्यदर्पणः, सविमर्श-'शशिकला'-हिन्दीव्याख्योपेतः, व्याख्याकार डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ.५१३

કરવામાં આવી છે. નાટકના વિષયને વાસ્તવિકતા અને કાલ્પનિકતાના સંમિશ્રણ સાથે રજૂ કરાયો છે. તેનું સ્વરૂપ ગદ્યપદ્ય મિશ્રિત છે. પદ્યમાં ૧૭ શ્લોકોની રચના વિવિધ છંદોમાં છે. આ ૧૭ શ્લોકોમાંથી નાટકકારના સ્વરચિત શ્લોકો ૧, ૨, ૩, ૪, ૫, ૭, ૧૦, ૧૧, ૧૩, ૧૫, ૧૬, ૧૭ અનુષ્ટુભ્ છંદમાં પ્રસ્તુત છે. આ બધા જ શ્લોકો અતિસરળ ભાષામાં લખાયેલ છે. જ્યારે શ્લોક ૬, ૮, ૯, ૧૨ અને ૧૪ સુભાષિતરત્નભંડારમાંથી લીધા છે અને તે વસંતતિલકા, ઇંદ્રવજ્રા-ઉપેંદ્રવજ્રામાં છે.

નાટકના અમુક સંવાદો અતિ લાંબા છે, દા.ત. पुण्यपुञ्जपरिपाकप्रसादप्रापित-परिपूर्णपुमर्थौ श्रीवाग्देवतासीमन्तधम्मिल्लाविव सुमनोभिभूषितौ तल्लोललोचने इव श्रुत्यन्तपरिशीलनशीलौ तत्कर्णाविव सुवर्णालङ्करणमण्डितौ तन्नासिके इव सुगुणगन्धग्राहकौ तदोष्ठाविवातिरक्तौ तद्भुजाविव सुवृत्तौ तदुरोजाविव परस्परसङ्गतौ तत्कराविव कङ्कणभूषितौ तन्नितम्बजघने इव गुण्यभिव्याप्तौ तच्चरणसारसे इव गतिसंसेवितद्विजराजौ तन्मुखचन्द्रेणेव स्वयशश्चन्द्रेण समवदातीकृतदिगङ्गनावदनारविन्दौ राजया विराजितौ श्रीमद्भिकुशास्त्रिपाठकराजारामशास्त्रिणौ प्रति अस्मत्साष्टाङ्गनतिततीनां निवेदकोऽयं पत्रिकाव्यायोगः श्रीमद्वाराणसीक्षेत्रे तत्सविधे प्रकटयितव्य इति तत्प्रेमाभिलाषिभिः श्रीमत्करवीरक्षेत्रनिवासिभिः श्रीरावजीमहाराजापरनामभिः श्रीनिवासपण्डितैरस्मत्प्रभुभिरादिष्टोऽस्मि । तेन च अस्मिन् वसन्तसमयेऽधिमासोत्साहे मिलितान् सभाजयितुमिच्छाम्यार्यमिश्रान् ।

નાટકની ભાષા સમાસપ્રચુર હોવાં છતાં સમજવામાં સરળ છે, દા.ત. ततः प्रविशति सहचरेण भृगुवारेण दत्तहस्ता हंसवरगरुद्गौरतरशुक्ला चन्द्रिकापटावृताऽनशनव्रतोत्तरभोजनखिन्ना मन्दपादचारेणाधिकवैशाखद्वादशी (વ્યાયોગપત્રિકા ભાગ-૨), જે નાટકકારની વિદ્વત્તા દ્યોતિત કરે છે.

નાટકમાં હાસ્યરસનું પ્રાધાન્ય છે (ઉદાહરણ સારાંશમાં ટાંક્યાં છે) અને અંત સુધી તે જળવાઈ રહ્યું છે તેથી તેને હળવા પ્રહસનના પ્રકારમાં ગણી શકાય.

નિષ્કર્ષ : વ્યાયોગપત્રિકાનાટકની ઉપલબ્ધિ આધુનિક સંસ્કૃતસાહિત્યના દષ્ટિકોણથી ઘણી મહત્ત્વની છે. આશરે ૧૫૦ વર્ષ પૂર્વે લખાયેલ નાટકની પટકથા નાવીન્યપૂર્ણ છે. તેના સરળ સંવાદો, અદ્ભુતપાત્રો અને હળવો હાસ્યરસ વાચકવર્ગને તથા તેનું રંગમંચ ઉપર અભિનય દ્વારા પ્રસ્તુતીકરણ પ્રેક્ષકગણને આહ્લાદકતા આપવા માટે સમર્થ છે. અને, હસ્તલિખિતોના સંશોધનક્ષેત્રનો જો વિચાર કરીએ તો, વિદ્વાનો દ્વારા સંશોધિત એક ચોક્કસ વિષયને કેંદ્રમાં રાખીને લખાયેલ પરંપરાગત લેખપટોમાં અલગ વિષયના વ્યાયોગપત્રિકા લેખપટનો સમાવેશ એક આગવો આવિષ્કાર ગણી શકાય.

श्रीमज्जनकजाजानिर्जयति ।

श्रीमद्रामचन्द्रसिद्धेश्वरामृतराजगुरुभ्यो नम इदम् ।

श्रीकाशीस्थितविद्वद्भ्यो योऽग्रपूजां समीयिवान् ।
पितामहं सद्गुरुं च मम रामं नमामि तम् ।।१।।

अपि च

वेदौ द्वौ षट् च शास्त्राणि सौजन्यश्रीनयाः कलाः ।
भक्तिर्ज्ञानं च यत्रासन्समे जयति सद्गुरुः ।।२।।

नान्द्यन्ते लेखकसूत्रधारः- परितोऽवलोक्य सानन्दम्

अहो रमणीयतास्य प्रभातसमयस्य । अलमतिपल्लवितेन । स्वस्तिश्रीमत्कालभैरवपदपङ्कजपरागपरिचरणम् । पुण्यपुञ्जपरिपाकप्रसादप्रापितपरिपूर्णपुमर्थौ श्रीवाग्देवतासीमन्तधम्मिल्लाविव सुमनोभिभूषितौ तल्लोललोचने इव श्रुत्यन्तपरिशीलनशीलौ तत्कर्णाविव सुवर्णालङ्करणमण्डितौ तन्नासिके इव सुगुणगन्धग्राहकौ तदोष्ठाविवातिरक्तौ तद्भुजाविव सुवृत्तौ तदुरोजाविव परस्परसङ्गतौ तत्करावि व कङ्कणभूषितौ तन्नितम्बजघने इव गुण्यभिव्याप्तौ तच्चरणसारसे इव गतिसंसेवितद्विजराजौ तन्मुखचन्द्रेणेव स्वयशश्चन्द्रेण समवदातीकृतदिगङ्गनावदनारविन्दौ राजया विराजितौ श्रीमद्धिकुशास्त्रिपाठकराजाराम शास्त्रिणौ प्रति अस्मत्साष्टाङ्गनतिततीनां निवेदकोऽयं पत्रिकाव्यायोगः श्रीमद्वाराणसीक्षेत्रे तत्सविधे प्रकटयितव्य इति तत्प्रेमाभिलाषिभिः श्रीमत्करवीरक्षेत्रनिवासिभिः श्रीरावजीमहाराजापरनामभिः श्रीनिवासपण्डितैरस्मत्प्रभुभिरादिष्टोऽस्मि । तेन च अस्मिन् वसन्तसमयेऽधिमासोत्साहे मिलितान् सभाजयितुमिच्छाम्यार्यमिश्रान् । तत्कथं कर्तव्यमिति विचारयन् स्थितः ।

नेपथ्ये- साधु रे भरताचार्य साधु आज्ञप्तमस्मत्स्वामिभिः ।

सूत्रधारः - (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अयेऽस्मत्स्वामिभिरस्मिन्नेव कार्ये नियुक्तः पत्रप्रणिधिरित एवाभिपतति तदलमनया चिन्तयेति स्थितः ।

ततः प्रविशति पत्रप्रणिधिः ।

पत्रप्रणिधिः - श्रीमत्कालभैरवाधिष्ठितश्रीकाशीक्षेत्रनिवासिशास्त्रियुग्ममस्मत्कुशलवृत्तविज्ञापनेन समाधातव्यमिति नियुक्तोऽस्मि । तत्कथं कर्तव्यमिति चिन्तां नाटयन् स्थितः ।

सूत्रधारः - पत्रप्रणिधे का चिन्ता ?

पत्रप्रणिधिः - श्रीकाशीक्षेत्रं त्वतिदूरतरमस्ति इति श्रूयते । अहं त्वेकाकी गन्तव्यमार्गानभिज्ञः मार्गस्त्वतिक्रूरै रञ्जनाचलनिभैर्भयानकैर्गलनालच्छेदकारिभिर्लुण्ठनपरैः पश्यतो हरैः किरातभट्टैरित्यर्धोक्ते ।

सूत्रधारः - अरे पत्रप्रणिधे किं तन्मार्गे भूसुरा अपि लुण्ठनपराः ।

पत्रप्रणिधिः - नहि नहि ।

सूत्रधारः - तर्हि ?

पत्रप्रणिधिः - भावप्रभुकार्यगौरववशात् त्वरितं गन्तुमुत्सुकस्य मम मुखादधिक एकष्टकारो निःसृतः । अस्ति च भटभट्टयोर्नामतः कर्मतश्च महान्भेद इति जानामि । यथोक्तमार्यैरिमं मासमधिकृत्य

भट्टोऽपूपगणं हन्ति भटो रिपुगणं यथा
एकेनैव टकारेण भटाद्भट्टो विशिष्यते ।।३।।

इति भट्टास्तु कुशपाणयस्तेऽस्मत्सहाया एव परन्तु निस्त्रिंशपाणिभिर्भटैरावृतः । प्रभोराज्ञा तु दुर्लङ्घ्या ।

सङ्कटप्रायोऽयं सेवकभावः । यथोक्तमाचार्यैः प्रश्नोत्तरमालिकायां को नरकः परवशतेति । तदत्र मम (मया) प्राप्तम् । भोः कष्टम् । नास्ति कोऽपि मार्गे सहाय इति खिन्नः । कोऽत्र भो मार्गदर्शक इत्युक्त्वा चिन्ताकानने पतन् मूर्छां नाटयति ।

नेपथ्ये कलकलः ।

सूत्रधारः (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) (आत्मगतम्)

अये! कावप्यस्य साहाय्यकरावागच्छत इत्यलमनया चिन्तयेति निष्क्रान्तः ।

प्रस्तावना

ततः प्रविशति सहचरेण भृगुवारेण दत्तहस्ता हंसवरगरुद्धौरतरशुक्ला चन्द्रिकापटावृताऽनशन-व्रतोत्तरभोजनखिन्ना मन्दपादचारेणाधिकवैशाखद्वादशी ।

वैशाखद्वादशी-अरे सहचर भृगुवार कोऽप्ययं पथिक आतपादिना खिन्नो दृश्यते । आवामपि मार्गरूढौ । अहं तु निरन्तरैकादश्युपोषणखिन्ना । तं(त)देतत्परिचरणेनास्माकमपि श्रेयो भविष्यति । उक्तञ्च नादत्तमुपतिष्ठतीति । तद्गत्वा कोऽसीति सम्पृच्छ्यास्य व्यथां परिहरिष्यावः ।

इत्युभावपि समीपं समुपसृत्य

द्वादशी - सखे पथिक समाश्वसिहि २

किमिति खिद्यतेऽप्यातपेन रुग्णो भवानुत बुभुक्षापिपासाभ्याम् ? इदं नलदकर्पूरादिसुवासितं जलम् । इदं चतुर्विधभोज्यं चेति । सजलपाणिना तस्य शरीरं नेत्रे मूर्धानं च परामृशति ।

पत्रप्र. - समाश्वस्य । मातर्नास्म्यातपादिना परिश्रान्तः । किन्तु चितया .....

द्वादशी ससम्भ्रमम् । कर्णौ पिधाय - शान्तं पापं २

(पुनः स्वगतं) - कस्माद् भयमिह ? मरणादित्याचार्योक्तेर्नूनं कृतान्तत्रस्तोऽयमिति भाति । भवतु नामाशिषैनं जीवयिष्ये ।

(प्रकाशं) अरे पथिक! मा स्म भैषीर्मरणान्मद्वचनाच्छतंजीवी भवेति स्थिता ।

ततः इतस्ततोऽवलोकयन् प्रविशति बालवकरणाख्यो विदूषकः ।

विदूषकः - विकृतं विहस्य । हीं हीं अस्या निष्किञ्चनाया निरशनोत्तराशनाया अबलाया आशिषां (षा?) शतं जीवी भविता पत्रप्रणिधिरयम् । आश्चर्यमेतत् । तर्हि मदाशीर्वचनेनामी समस्ता अपि सभास्ताराश्शक्रपदाधिष्ठातारो भवन्तु ।

तच्छ्रुत्वा सामर्षा ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण तत्सहचारिण्युत्तराभाद्रपदाभिधेया तारा ।

उत्तराभाद्रपदा - अरे! वावदूक विदूषक! किमिति जम्बुकः सिंहीमुपहसतीति न्यायमनुसरति भवान् ? अपि न जानास्येनामतिसुकृतवतीमिति । श्रीविष्णुस्तादृशीमप्येकादशीमपहाय सततमस्यां भोजनं स्वप्नं पार्श्वपरिवर्तनं प्रबोधं विवाहमपि करोति । परञ्च वामनावतारोऽप्यस्यामेव गृहीत इति न त्वच्छ्रुतिगोचरं जातम् । अपि च अस्यां पारणामृतेन ह्येकादशीव्रतसाफल्यं कदाचिदपि प्रभवति । तव मम च बहुजन्मकृतपुण्यपुञ्जपरिपाकवशादतिपुण्याया अस्याः समागमो जातः । ईदृग्विधसुकृतवतीमपि द्वादशीं निन्दतस्तवार्हणाय कुम्भीपाको दूतं न प्रेषयिष्यति ।

ततो भयमभिनीय कम्पं नाटयन्विदूषकः ।

विदूषकः- इदमहं जानाम्यस्या माहात्म्यं तथापि को वा स्वभावमन्यथा कर्तुमी(मि)ष्टे ? स्वभावो दुस्त्यजो नाथ! लोकानां यदसङ्ग्रह इति श्रीभागवते भगवन्तं प्रति कालियोक्तेः अपि च त्वन्मुखेनैतस्या माहात्म्यमिमान् सामाजिकान् प्रकटयितुमिदमुक्तं तत्क्षन्तुमर्हति भवती । एवंविध पुण्यशीलाया आशिषा चिरजीवी भवेदेव पत्रप्रणिधिः ।

पत्रप्रणिधिः -(सानुस्मरणम्) मातर्नास्मि त्रस्तः कृतान्तात् । किन्तु चिन्ताज्वरजर्जरितजिह्वस्य मम चिन्तयेति वक्तव्येऽनुस्वारोच्चारणं न जातम् ।

द्वादशी-अरे! गता तर्हि भेषजमन्तरा खर्जूः । परन्तु किं कारणं चिन्ताया अपि ?

पत्रप्रणिधिः- (मनोगतम्) श्रीमत्कालभैरवाधिष्ठितेत्यादिनिवेद्य स्थितः ।

द्वादशी – अरे शृणु!

सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता ।
उच्चारणे बिन्दुभेदः कर्मभेदो महांस्त्रयोः ।।४।।

पत्रप्रणिधिः-मातः ! सत्यमेव गदितं त्वया तन्मयेदानीमेवानुभूयते । तत्किं कर्तव्यमिति विषण्णोऽस्मीत्युपायं पृच्छामि ।

द्वादशी – सखे ! भैषीर्मालं विषादेन ! यदुक्तमभियुक्तैः जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येदिति । अपि च एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपीति श्रीमदध्यात्मरामायणस्थवेदव्यासवचनादुपायः स्यादेवेति स्थिता ।

ततः नेपथ्ये महान्कलकलः ।

आः ! सर्वपरिवृन्दं मां विहाय कुत्र गच्छन्ति (ति) मदीयाः । ततश्च सर्वेऽपि चिन्तां नाटयन्तः स्थिताः ।

विदूषकः – भो पत्रप्रणिधे ! यज्ञपशुमारं मारयतु भक्षयतु वा सर्वानसौ यक्षस्त्वं मा मा वृणु ।

पत्रप्रणिधिः – अरे विप्रबटो ! न भवेदसौ यक्षस्तर्हि सकलकालप्रवर्तकोऽयं शुक्लनामा (म्नः) वत्सरराजः स्वत्यागेन कोपमापन्नो भवेदिति । ततःप्रविशति ध्रुवयोगाख्यकञ्चुकिना दर्शितमार्ग एकनवतियुतसप्तदशशत १७९१ परिवारपुरोगः शुक्लो वत्सरः ।

कञ्चुकी – भो भो वत्सरराज ! इतः२

शुक्लः – उद्धतं(?) परिक्रम्य पूर्वोक्तं पठति ।

कञ्चुकी – भो वत्सरराज । अधिभुवं त्वां विहाय परिवारः कथं गच्छेदुल्लसेदपि । किन्तु समग्रसामग्रीसन्नाहं सम्पाद्य नायकं त्वां विज्ञाप्य सहैव गमिष्याम इति मार्गं प्रतीक्षन्तः स्थिताः । अथ च प्रभुविज्ञापनार्थमेव तदाज्ञयाऽहमागतोऽस्मि ।

शुक्लः – यद्येतादृशं तदाहमप्यस्मिन्कार्ये आत्मानमुपयोक्ष्यामीति स्थितः ।

द्वादशी – एतावत् पर्यन्तं पण्डितवरान् श्रीकृपया कुशलिनो दृष्ट्वाऽऽगतास्मि । परिचितमपि मम तत्क्षेत्रवरमविमुक्तपुरं मार्गाभिज्ञाप्यस्मि । सकलकलाकपपेशलौ तौ सूरिवरावपि मम परिचितौ । विशेषस्तु अबलया मया शास्त्रिवर्याग्रे पुरुषवत्स्थित्वाऽस्मत्प्रभुभावुकोदन्तनिवेदनानुजस्तत्सन्देशो विज्ञापनीय इत्यस्माकमसमञ्जसमेतत् त्वमागतश्चेदपि सकलविद्यापारावारपाठीनयोस्तयोरग्रे वाग्मी सोमस्य सूत्रदानवत्कथमपि भविष्यसि परन्तु गमनोपायः कथमिति चिन्तां नाटयन्ती स्थिता । क्षणं विचिन्त्य ।

स्मृतिमभिनीय ।

पुनः सहर्षं - अरे पत्रप्रणिधे ! शृणु ! कथयामि गमनोपायम् ।

पत्रप्रणिधिः - मातः ! किमिति ?

द्वादशी - अरे पण्डिताज्ञयाऽस्मिन्नेव कार्ये नियुक्तोऽपरः पत्रदूतः । श्रूयते स आगमिष्यति चेत् तव समीचीनमुपोषणक्लिष्टाया मम च । भवतोः स्कन्धारोहणेन शास्त्रिपरिवृद(न्द)दर्शनं स्यादित्यानन्दमग्ना तिष्ठति ।

निपुणं निरूप्य ।

कोऽयमायाति चन्दनचर्चितनिटिलोऽपि तदर्धस्थापितव्यत्यस्तकौसुम्भोष्णीषः दीर्घवसनबद्धकटिरपि तत्संलग्नकच्छपुटविच्छुरितकरालकरवालः दृढतरतनुरपि चरणालम्बिकञ्चुकावृतः पृष्ठधृतचर्मापितत् धृतपादः रुचिरतरदृष्टिरपि हस्तधृतयष्टिः । (पुनर्दृष्ट्वा)स एवायमायाति इदानीमेव चिन्तितः पण्डितप्रभुप्रेषित अपरः पत्रदूतः ।

पत्रदूतः - मातर्द्वादशि ! वन्दे ते चरणौ ।

द्वादशी - (निर्वर्ण्य सानन्दम्)

वत्स ! शतं जीव । अरे पत्रदूत ! क्व गन्तास्यतिपटुरसि वाग्विलासे । बहुदिवसैर्दृष्टोऽसि ।

पत्रदूतः - पण्डितप्रभूणामाज्ञया तत्कुशलकथनार्थं क्षेत्रमेव गच्छामि । भवती पुनः कं देशमलङ्करिष्यति ? अयं पुनस्त्वत्सविधे को धूलिधूसरतनुः ।

निपुणं निरूप्य । सहर्षम् ।

अनुजोऽयं ममैवाद्य प्रातः प्रेषितः पत्रप्रणिधिः । तत्समीचीनं जातमुभावप्येककार्ये नियुक्तौ तत्सुखेन सहैव गच्छाव इति ।

अरे ! अनुज ! पत्रप्रणिधे ! शास्त्रिवर्यसकाशे निवेदनार्थमस्मत्स्वामिभिः स्नेहस्मारकं किञ्चित्पारितोषिकं दत्तमस्ति ?

पत्रप्रणिधिः - अस्ति ।

पत्रदूतः - किं तत् ?

पत्रप्रणिधिः - श्रीमल्लक्ष्मीसाहस्र्युपरि तैर्व्याख्या कृता । सा पुण्यनगरे शिलायामङ्किता तस्याः प्रतिः १ ।

अथ च द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिति श्रीमद्भागवतस्थश्लोके प्रसङ्गवशाद्विरोधोद्भावनमुद्भाव्य तत्परिहारकर्त्री तदुपरि टीका कृता ।

तस्याः प्रतिः १ । परं च दानधर्मस्थं(म्) एको विष्णुरिति पद्यं वर्तते । तदन्ननिवेदनसमये सर्वत्र सर्वेऽपि पठन्ति । तदर्थविचारे संगत्यभावो दृश्यतेऽतस्तस्मिन्टीकाकरणार्थं (दृश्यतेऽतस्तस्मिंष्टीकाकरणार्थं) ताडपद्युपनामकरामरायाख्यैः कार्यवाहकैरस्मत्प्रभुनिकटे प्रेषितं तदुपर्यपि टीका कृता तस्याः प्रतिः १ । एतत्त्रितयं पारितोषिकं प्रेषितमस्ति ।

पत्रदूतः - अरे अनुज ! पद्यद्वयटीकाकरणमस्तु । परन्तु साहस्र्युपरि टीकाकरणमारम्भरूपम् । किमेतत्सूरेरप्यस्मत्प्रभोः साहसं कर्म ।

पत्रप्रणिधिः- कथमिव ?

पत्रदूतः - तद्ग्रन्थकारेण चित्रस्तबकसमाप्तौ आयासित्वं न । कथमधुना चित्रकूटाश्मचारादायासित्वम् इत्युक्तम् । तस्य कृष्णोपलप्रायग्रन्थस्य लोहेनापि स्फोटनमशक्यम् । तस्य भेदनमयं लेखनिकयैव कर्तुमुद्युक्त इति ।

पत्रप्रणिधिः - भो अग्रज ! प्रवृत एवेति साहसं तवाश्चर्यजनकं जातम् । तर्ह्येतस्मादप्यधिकं साहसतरं सम्पन्नम् ।

पत्रदूतः - कथमिव ।

पत्रप्रणिधिः - भोः समाप्तिं गमितापि सा टीका । तेन न हि आरम्भशूराः खलु दाक्षिणात्या इति वाक्यस्य भूषणं दत्तम् ।

पत्रदूतः - अरे पत्रप्रणिधे ! इदं कथमिव न साहसम् ।

पत्रप्रणिधिः - भोः (भो) विचार्य! कृतं साहसमपि सिद्धिदं भवति ।

तथा हि

साहसेन विना राजन्न सिध्यन्ति मनोरथाः ।
शिखण्डिनी साहसतः प्राप पुंस्त्वं हि यक्षतः ।।५।।

अत्र स्त्रीत्वात्प्राणत्यागसाहसे यक्षादपि तस्याः(?) पुंस्त्वसम्पत्तिर्जाता न वा । परं च सकलराजन्य-मुकुटमणिहीरनीरजितचरणकमलैः श्रीमद्रामचन्द्रप्रभुभिः श्रीमज्जनकजास्वयंवरसमये शैशवे एव शैवधनुर्भङ्गं कृत्वा सीतापि परिणीता । तच्छ्रुत्वा(तच्छ्रुत्वा) क्रोधमुषितविवेकः क्षत्रियान्तकरोऽहमिति गर्वितो जामदग्न्यः द्वन्द्वयुद्धं याचितवान् तदानीं रामप्रभुभिस्तस्योत्तरं दत्तम् । तत्पद्यं हनुमन्नाटके

बाह्वोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य
त्रय्यम्बकस्य(त्रैयम्बकस्य) महिमा न तवापि सैषः ।
यच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व ।
डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ।।६।।

अनेन कृतं साहसमपि सिद्धिं गच्छति । परञ्च पूज्यपादास्तत्क्षमापनमपि कुर्वन्तीति स्फुटतरं भवति । अस्मिन्त्रिजगत्पूज्यतमरामप्रभुकर्मणि कथने च विश्वासं दत्वा लेखनिकयैव स्थूलाश्मस्फोटने प्रवृत्तः स च हृतकमलस्थितिस्फूर्तिदायकश्रीमद्रामचन्द्रपण्डितदेशिकवरचरणानुकम्पयैव केवलं सम्पन्नः ।

पत्रदूतः - अस्त्वेतन्नाम । परन्तु परशुरामः अंशावतारः । रामस्तु भगवान्स्वयम् इति सति परशुरामे प्रभोर्गुरुत्वोक्तिः कथं सङ्गच्छते ।

पत्रप्रणिधिः- श्रुण्ववहितमनाः।

पत्रदूतः - शृणोमि ।

पत्रप्रणिधिः - आद्यावतारत्वादग्रजजात्युत्पन्नत्वाच्च तद्गुरुत्वोक्तिः सङ्गच्छते ।

पत्रदूतः - तर्हि युज्यत इदम् ।

पत्रप्रणिधिः - इदं यदा युज्यते तदेतरत्किमप्यसमञ्जसमिव स्यात् ।

पत्रदूतः - अथ किम् ?

पत्रप्रणिधिः - किं तत् ?

पत्रदूतः - अनादिविद्यापीठस्थशास्त्रिशार्दूलयोः पुरः ।
ईषत्स्वकृतिविज्ञप्तिर्नोपहासास्पदं भवेत् ।।७।।

पत्रप्रणिधिः - नहि । नहि ।

पत्रदूतः - कथमिव ।

पत्रप्रणिधिः - ईषन्मात्रमपि साधवः स्वीकुर्वन्ति भूषयन्ति च ।

तथा हि

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः सुशान्ताः ।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः

कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ॥८॥

अपि च

अपां निधिं वारिभिरर्चयन्ति दीपेन सूर्यं प्रतिदीपयन्ति ।
ताभ्यां तयोः किं परिपूर्णता स्याद् भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावाः ॥९॥

परञ्च

अल्पं वा बहु वा यत्तद्भक्त्या गृह्णन्ति सूरयः ।
बदराणि यथा रामोऽगृह्णाद्वा पृथुकान् हरिः ॥१०॥

अत्राद्यापि प्रमाणयुक्तिदृष्टान्तकोटिकथने रसना फुरफुरायते तथाप्यस्मत्स्वामिकार्यविलम्बः स्यादिति विरम्यते ।

पत्रदूतः - अहमेतद्वृत्तान्तविषये बहुश्रुतो न भवामीत्येतदुक्तम् एवं तावपि रसालवद्रत्नाकररवी इव श्रीरामकृष्णाविव च अन्यार्पितमप्यत्यल्पमपि बहुमानयिष्यतः । भवतु नामैतत् परन्त्वस्मत्प्रभुणा निर्दोषा अपि ग्रन्थाः कृताः ।

पत्रप्रणिधिः - अथ किम् ? अतिविचार्य कृतास्तत्र कः संशयः ?

पत्रदूतः तर्हि निर्दोषाः सन्तीति कथनीयम् ।

पत्रप्रणिधिः - अस्ति तथैव परन्तु तत्कथमिव कथनीयम् ।

पत्रदूतः - कः प्रत्यवायः ?

पत्रप्रणिधिः - निर्दुष्टा इति कथितं चेद्गर्वोक्तिर्भवति । सा तु नितरां निन्द्या । सदोषा इति कथितं चेन्निर्दोषकृतिषु दोषकल्पना । परञ्च निजा सत्यमुद्रिकाया हटात् हटे नयनवल्लोकोत्तरमस्यास्मत्प्रभु-पण्डितस्य पाण्डित्यं भवेदिति सेयमुभयतः पाशारज्जुः (पाशरज्जुः?) ।

पत्रदूतः - कथमत्र प्रतिपत्तव्यं विचारबाहुल्यं दृश्यते ।

पत्रप्रणिधिः - नह्यसत्यमेतत् ।

पत्रदूतः - तथापि प्रथमप्रेषणहेतूद्भवनसमयेऽतिपटुनाऽस्मत्प्रभुणा किमत्र विचारितम् ।

पत्रप्रणिधिः शृणु । कथयामि ।

पत्रदूतः अवहितोऽस्मि ।

पत्रप्रणिधिः – स्वयं पराभूय भजन्तु सूरयः स्वाज्ञानदुष्टा अपि च नोदुक्तयः
जुषन्त एवापि किलाल्पबु/बूधयस्तुषाकुला यद्यपि सन्ति शालयः ॥११॥

परञ्च

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दुष्टं न निर्गुणम् ।
आवृणुध्वमितो दोषान्विवृणुध्वं गुणान्बुधाः ॥१२॥

अपि च

आस्वादितं भवद्भिर्यद्गुणितदुष्टमन्यथा ।
पीतं पयो राजहंसैर्वारि तैर्दूरमुझ्झि(ज्झि)तम् ॥१३॥

इति पद्यत्रयेणास्मत्प्रभुणा शास्त्रिद्वयमुखं तत्क्षेत्रस्थमाबालवृद्धभूवृन्दारकवृन्दं सप्रमाणं केवलं प्रार्थितमस्ति ।

पत्रदूतः – युक्तोऽयं विनयः करवीरराष्ट्राधिपतिशिवनृपतिसद्गुरुश्रीसिद्धेश्वरमहाराजकुलप्रसूतस्य तस्य । तौ शास्त्रिहंसावेव नीरक्षीरमिव गुणदोषविचारं कुर्वन्तावेतत्पत्रोत्तरप्रदानेन पण्डितमस्मत्प्रभुमपि भूषयिष्यतः ।

उक्तञ्च

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥१४॥

अन्यत्रापि

त्यजन्ति शूर्पवद्दोषान् गुणान् गृह्णन्ति साधव इति युज्यत एतत् ।

अरेऽलमनया प्रसक्तानुप्रसक्त्या प्रकृतमनुसरावः । भवतु नामास्मत्स्वामिनः कार्यं तयोः कृपादृष्ट्या । उतिष्ठ तर्हि वाराणसीं त्वरिततरं गच्छाव इत्युभावप्युत्तिष्ठः ।

द्वादशी – भोः सहोदरौ ! ममापि मनसि वाराणसीक्षेत्रवासिशास्त्रिवर्यदर्शनाभिलाषः । अस्मत्प्रभुकुल-दैवतश्रीमद्भैरवदर्शनाभिलाषश्च वरीवर्ति । किन्तु नित्यमनशनोत्तरकृतभोजनेन जडशरीराहं पदात्पदमपि चालयितुं न शक्नोमि । तत्सपरिवारा भवतोः स्कन्धारोहणेन गन्तुमिच्छामि । अथ च वयं सर्वेऽपि भवतोः कार्ये उपयोक्ष्यामः । यदि च भवतोरनुमतं स्यादिति । किं युवयोर्भूयः प्रियमुपहरामि ।

उभौ – मातरस्मादपरमस्माकं किं श्रेयः साधनमस्ति यदि च शास्त्रिवर्यसकाशेऽस्मत्स्वामिसन्देशकथन(नम्?) उपयोक्ष्यति भवती ।

सूत्रधारः - तथापीदमस्तु भरतवाक्यम् ।

अस्मत्प्रभुः शास्त्रिवर्यौ शुक्लपक्षीयसोमवत् ।

कुर्वन्तः स्नेहसंवृद्धिं जीवन्तु शरदां शतम् ।।१५।।

उभौ - आर्य ! एवमेवैतत् वन्दावहे चरणौ ।

सूत्रधारः - सन्तु शिवाः पन्थानः । अपि च सम्पादयन्तु अस्मत्स्वामिनः सकलसमीहितं श्रीमद्देशिकचरणाः ।

उभौ - द्वादशि ! एहि तर्हि सपरिवारास्मत्स्कन्धावारोहेत्युभावप्यधःकृतस्कन्धौ सन्तिष्ठतः ।

द्वादशी - (तथा स्कन्धारोहणं नाटयति) ततश्च सर्वे

काशीक्षेत्रं गमिष्यामो द्रक्ष्यामः शास्त्रिणौ भवम् ।
आत्मानं पावयिष्यामः श्रीनिवासाश्रयात्पुनः ।।१६।।

इति वदन्तो हसन्तश्च निष्क्रान्ताः ।

सर्वे - इत्यलं सू(सु)ज्ञेष्वधिकलेखने[ने]ति विज्ञप्तिः । शिवम् ।

इति श्रीश्रीनिवासेन पण्डितेन विनिर्मितः
व्यायोगः पत्रिकाख्योऽयं बोभवीतु सदां मुदे ।।१७।।

श्रीमद्रामचन्द्रसदुरुनाथार्पणं भूयात् ।

વેદાંતદર્શન અંતર્ગત યોગનું સ્વરૂપ

ગીતા ભુત*

ભારતીય ઈશ્વરવાદી (આસ્તિક) દર્શનોમાં વેદાંતદર્શનનું સ્થાન સર્વોપરી છે. આ દર્શનની મુખ્ય વિશેષતા એ છે કે આ દર્શન એ માત્ર ભારતીય દર્શનના જ નહીં, પણ હિન્દુ ધર્મનાં પ્રતિનિધિ મંતવ્યો વ્યક્ત કરતું દર્શન છે. માત્ર પ્રાચીન સમયમાં જ નહીં, પણ મધ્યકાલીન અને આધુનિક સમયમાં પણ, ઘણા વિચારકોએ વેદાંતદર્શનના આધારે હિન્દુધર્મને નવી દિશા આપી છે. મધ્યયુગમાં આદિશંકરાચાર્ય, રામાનુજાચાર્ય, મધ્વાચાર્ય, નિંબાર્કાચાર્ય અને વલ્લભાચાર્ય તથા આધુનિક સમયમાં રામકૃષ્ણ પરમહંસ, સ્વામી રામતીર્થ, સ્વામી વિવેકાનંદ, શ્રી અરવિંદ, રવીન્દ્રનાથ ટાગોર, ડૉ. રાધાકૃષ્ણન અને પ્રો. કે. સી. ભટ્ટાચાર્ય પ્રખ્યાત વેદાંતી તરીકે ખ્યાતનામ થયા છે.[૧]

વેદાંતનો શાબ્દિક અર્થ છે વેદનો અંતિમ ભાગ એટલે કે ઉપનિષદ એટલે કે તે ઉપનિષદનું દર્શન છે.[૨] ભગવાનનું સર્વોચ્ચ ગુપ્ત જ્ઞાન પ્રથમ ઉપનિષદમાં જ વેદાંત સ્વરૂપે પ્રાપ્ત થયું છે.[૩]-

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः ।[४]

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।[५]

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।[६]

આ તમામ શ્રુતિ વચનોનો સારાંશ એ છે કે દુનિયામાં જે દેખાય છે અને જ્યાં સુધી આપણી બુદ્ધિ ધારી શકે છે, તે બધાનો મૂળ સ્રોત માત્ર પરમ બ્રહ્મ છે.[૭] વેદાંતદર્શનનો આધાર

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૬૦, વર્ષ ૨૦૨૩, પૃ. ૧૭૫-૧૮૧. ISSN 2250-0391

* ''શુભમ્'' બ્લોક નં ડી-૧૨, ઈગલ રેસિડેન્સિ, ૧૫૦ ફૂટ રીંગ રોડ, ગોવર્ધનચોક, રાજકોટ-૩૬૦૦૦૪, M: 9879311301, Email : bhut.geeta@gmail.com

૧. ભારતીય દર્શન, શોભા નિગમ, ચૌખમ્બા પ્રકાશન, વારાણસી-આવૃત્તિ ૧, પૃ. ૨૧૭

૨. એજન

૩. વેદાંતદર્શન, પં. શ્રીરામ શર્મા, યુગનિર્માણ યોજના વિસ્તાર ટ્રસ્ટ, મથુરા, આવૃત્તિ ૨, ૧૯૮૯, પૃ. ૬

૪. મુંડકોપનિષદ - ૩.૨.૬ : ગીતાપ્રેસ- ગોરખપુર, આવૃત્તિ- ૪, ૧૯૭૯

૫. શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદ - ૬. ૨૨ : એજન, ૧૯૮૮

૬. મહાનારાયણ ઉપનિષદ - ૧૦.૮ : એજન, આવૃત્તિ ૨, ૨૦૦૨

૭. વેદાંતદર્શન, પં. શ્રીરામ શર્મા, પૃ.૬

બાદરાયણનું બ્રહ્મસૂત્ર છે. બ્રહ્મસૂત્ર ગ્રંથનો પ્રતિપાદ્ય વિષય બ્રહ્મ છે. મહર્ષિ બાદરાયણે બ્રહ્મસૂત્રને ચાર પ્રકરણોમાં વહેંચ્યું છે અને દરેક અધ્યાયમાં ચાર પાદ છે.

પહેલો અધ્યાય સમન્વધ્યાય છે, જેમાં વેદાંત સંબંધિત તમામ વાક્યોનો મુખ્ય ઉદ્દેશ પ્રગટ થયો છે અને તે તમામ વિચારોને એકીકૃત કરીને બ્રહ્મની પ્રસ્તુતિ જ એકમાત્ર ધ્યેય છે તે દર્શાવ્યું છે.

બીજો અધ્યાય અવિરોધ્યાય છે, જેનો વિષય અહિંસા છે, જે અંતર્ગત શ્રુતિઓનાં વિરોધાભાસી મંતવ્યોના મૂળ હેતુને જાહેર કરીને અદ્વૈતનો સિદ્ધાંત તેમના દ્વારા સાબિત કરવામાં આવ્યો છે. વૈદિક અને બિન-વૈદિક માન્યતાઓ અને સિદ્ધાંતોની ખામીઓ અને તેમની અચોક્કસતા દર્શાવવામાં આવી છે. આ પ્રકરણમાં તમામ પ્રકારના વિરોધાભાસ ઉકેલાયા છે.[૮]

ત્રીજો અધ્યાય સાધનાધ્યાય છે. જેમાં ભગવાનની ઉપાસના, જ્ઞાન અને વિદ્યાનો વાસ્તવિક સ્રોત છે, પ્રથમ સ્વર્ગની પ્રાપ્તિના ઉપાયોના દોષો જણાવીને વાસ્તવિક સ્રોત પરમાત્માની ઉપાસનાની રજૂઆત કરવામાં આવી છે. તેમાં જણાવ્યા પ્રમાણે જ્ઞાન અને ભક્તિ દ્વારા જ આત્મા અને પરમાત્માનું મિલન શક્ય છે.[૯]

ચોથું પ્રકરણ ફલાધ્યાય છે, જેમાં સાધનનાં પરિણામો જણાવવામાં આવ્યાં છે. જે અંતર્ગત વાયુ, વિદ્યુત અને વરુણાલોકથી ઉચ્ચ વિશ્વ બ્રહ્મલોક સુધી પહોંચવાનું વર્ણન છે. આત્માની મુક્તિ, જીવનમુક્તનું મૃત્યુ અને પછીના જીવનમાં તેની હિલચાલનું વર્ણન છે. અંતે તે પણ વર્ણવેલ છે કે બ્રહ્મની પ્રાપ્તિને કારણે આત્માની શું સ્થિતિ છે, જેથી તે પુનઃ સંસારમાં પરત ફરી શકે. આ મુક્તિ અને નિર્વાણની સ્થિતિ છે.[૧૦]

આ રીતે વેદાંતદર્શનમાં આ ૧૦ વિષયો - મુખ્યત્વે ભગવાન, પ્રકૃતિ, જીવંત જીવો, મૃત્યુ પછીની સ્થિતિ, પુનર્જન્મ, જ્ઞાન, કર્મ, ઉપાસના, બંધન અને મોક્ષ વિશે ચર્ચા કરે છે.

વેદાંતદર્શન મુજબ અજ્ઞાનથી મુક્તિ એ જ મોક્ષ અથવા મુક્તિ છે. સચોટ જ્ઞાન વિના મુક્તિ શક્ય નથી. આ માટે આચાર્ય શંકર કહે છે-

योगस्य प्रथमो द्वारो वाङ्निरोधोऽपरिग्रहः ।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ॥[११]

---

૮. ભારતીય દર્શન, શોભા નિગમ, પૃ. ૨૧૮

૯. વેદાંતદર્શન, પં. શ્રીરામ શર્મા, પૃ. ૬

૧૦. એજન, પૃ.૬

૧૧. વિવેક ચુડામણિ, ૩૬૮ : ગીતાપ્રેસ, ગોરખપુર, આવૃત્તિ-૨, ૧૯૯૩

એટલે કે, યોગનું પહેલું સોપાન વાણીનો નિરોધ હોવો જોઈએ, ધનનો સંગ્રહ ન કરવો, સાંસારિક વસ્તુઓની આશા છોડવી, ઇચ્છાઓનો ત્યાગ કરવો અને સતત એકાંતમાં રહેવું જોઈએ.

એકાંત સેવન સંવેદનાત્મક દમનનું કારણ છે. ઇન્દ્રિયોનું દમન મનની સમાપ્તિનું કારણ છે, અને મનની સમાપ્તિ વાસનાના વિનાશ તરફ દોરી જાય છે. વાસના નાશ થવાથી, યોગીને બ્રહ્માનંદ રસનો અતૂટ અનુભવ થાય છે. તેથી યોગના સાધકે હંમેશા મનને નિયંત્રિત કરવાનો પ્રયાસ કરવો જોઈએ. યોગસૂત્રોમાં પતંજલિ આ જ કહે છે – યોગશ્ચિત્તવૃત્તિ નિરોધઃ[૧૨] એટલે મનની વૃત્તિઓનો અંત યોગ છે. જ્યારે યોગના સાધકનું મન તમામ ઉપાધિઓથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે, ત્યારે સંપૂર્ણ ગુણાતીતનો આનંદ તેને સ્પષ્ટ દેખાય છે, જેના કારણે તેના મનમાં સચ્ચિદાનંદ રસાનુભવરૂપી વર્ષા શરૂ થાય છે. યોગસૂત્ર અનુસાર -प्रसन्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः[૧૩] એટલે કે સાધકો વિવેકબુદ્ધિની ખ્યાતિ પ્રાપ્ત કરીને, આત્મજ્ઞાનનો આનંદ માણીને, મુક્તિ પામે છે અને વર્તમાન શરીર જ્યારે પૂર્ણ થાય ત્યારે મોક્ષ પ્રાપ્ત કરે છે. 'वाक्यान्वयात्'નો અર્થ એ છે કે વ્યક્તિએ વિશ્લેષણાત્મક નિષ્કર્ષ હેઠળ આત્મજ્ઞાન મેળવવા માટે શ્રવણ, ચિંતન અને નિદિધ્યાસનનો અભ્યાસ ચાલુ રાખવો જોઈએ. આચાર્ય શંકર નિદિધ્યાસન અંતર્ગત યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિનું વર્ણન કરે છે.

યમ :

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः ।
यमोऽयमिति सम्प्रोक्तोऽभ्यसनीया मुहुर्मुहुः ॥[૧૪]

એટલે કે, બધા બ્રહ્મ છે તે હકીકત દ્વારા, ઇન્દ્રિયસમૂહના નિયંત્રણને યમ કહેવામાં આવે છે, જે વારંવાર અભ્યાસ કરવા યોગ્ય છે. જ્યારે મુનિ પતંજલિએ અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહને યમ કહ્યા છે.

નિયમ :

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः ।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥
सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृति ।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥[૧૫]

૧૨. યોગસૂત્ર, ૧/૨ : પ્રતિભા પ્રકાશન, દિલ્હી, આવૃત્તિ-૩, ૧૯૭૫

૧૩. એજન, ૪/૨૯

૧૪. આદિ શંકરાચાર્યકૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ – ૧૦૪, નંદલાલ દશોરા, રણધીર પ્રકાશન, દિલ્હી, આવૃત્તિ-૨, ૧૯૯૯

૧૫. એજન, ૧૦૫

સજાતીય પ્રત્યયોનો પ્રવાહ અને વિજાતીય પ્રત્યયોનો ત્યાગ એ પરમાનંદ આપનાર નિયમ છે. બુદ્ધિમાન આ નિયમનું પાલન કરે છે તેને નિયમ કહેવાય છે. મુનિ પતંજલિએ શૌચ, સંતોષ, તપ, સ્વાધ્યાય અને ઈશ્વર પ્રણિધાન આ પાંચ અંગોને નિયમો કહ્યા છે.

આસન :

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नेकस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम् ॥
सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम् ॥[१६]

એટલે કે જે રીતે આનંદથી નિરાકાર બ્રહ્મનું ચિંતન કરી શકાય, તેને આસન તરીકે ગણવું જોઈએ, આનાથી અલગ સુખનાશન છે. બ્રહ્મસૂત્ર અનુસાર, 'आसीनः संभवात्'[૧૭] એટલે સાધનાનું પ્રથમ પગલું આસન હોવું જોઈએ જેથી શરીર સ્થિર થઈ શકે. આચાર્ય શંકર કહે છે કે પૂજા માત્ર બેસીને કરવી જોઈએ. ચાલતી વખતે અથવા દોડતી વખતે અથવા શરીર સાથે અન્ય કામ કરતી વખતે પણ પૂજા ન કરવી જોઈએ, કારણ કે આ સમયે મનમાં એક અસ્વસ્થ લાગણી છે જે પૂજા માટે અનુકૂળ નથી. નિદ્રાના રૂપમાં વિક્ષેપ આવે ત્યારે પૂજા સફળ થતી નથી તેથી સૂતી વખતે પણ પૂજા ન કરવી જોઈએ. તેથી શરીરને સ્થિર કર્યા પછી જ પૂજા કરવી જોઈએ. મુનિ પતંજલિ અનુસાર -સ્થિરસુખાસનમ્નો અર્થ એ છે કે મુદ્રા એ જ છે જેમાં સ્થિર થયા પછી વ્યક્તિ આરામથી બેસી શકે છે. આચાર્ય શંકર ધ્યાન માટે શ્રેષ્ઠ આસન સિદ્ધાસન કહે છે.

પ્રાણાયામ :

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥[૧૮]

એટલે કે મનનાં તમામ વલણોમાં બધા બ્રહ્મ છે. આ લાગણી દ્વારા તમામ વલણ નિયંત્રિત થાય છે, તેને પ્રાણાયામ કહેવામાં આવે છે. મુનિ પતંજલિના મતે - तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः[૧૯] એટલે કે શ્વાસ અને ઉચ્છ્વાસની હિલચાલનો વિરામ એટલે પ્રાણાયામ. આચાર્ય

---

૧૬. આદિશંકરાચાર્યકૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ, ૧૧૨

૧૭. બ્રહ્મસૂત્ર, ૪/૧/૭

૧૮. આદિ શંકરાચાર્ય કૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ - ૧૧૮

૧૯. યોગસૂત્ર, ૨/૪૯

શંકરે પ્રાણાયામના પ્રકારોનું પણ વર્ણન કર્યું છે. પ્રપંચના અસ્વીકારને રેચક પ્રાણાયામ કહેવામાં આવે છે અને મુનિ પતંજલિએ તેને બાહ્યવૃત્તિ પ્રાણાયામ કહ્યું છે.

હું બ્રહ્મ છું, જે વૃત્તિ અસ્તિત્વમાં છે તે પૂરક પ્રાણાયામ છે. મુનિ પતંજલિએ તેને આભ્યન્તરવૃત્તિ કહી છે. બ્રહ્માકાર વૃત્તિની સ્થિરતા કુંભક પ્રાણાયામ છે. જેને મુનિ પતંજલિએ સ્તંભવૃત્તિ કહી છે. આચાર્ય શંકર પ્રાણાયામના પરિણામ વિશે જણાવે છે કે તે મનને શાંત કરે છે, તે એક સાધન છે અને શ્વાસને નિયંત્રિત કરીને, તે મનને પણ એકાગ્ર કરે છે. પ્રાણાયામ કરતી વખતે સાધકે પોતાના મનમાં ભગવાન પ્રત્યે નમ્રતા અને ભક્તિ રાખવી જોઈએ.

પ્રત્યાહાર :

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चिति मज्जनम् ।
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभि : ॥[२०]

એટલે કે, પદાર્થ આત્મા છે તે જોઈને મનને ત્યાં મનમાં ડુબાડી દેવું જોઈએ. આને પ્રત્યાહાર કહેવાય છે. મુમુક્ષુઓએ તેનો અભ્યાસ કરવો જોઈએ. યોગસૂત્રો અનુસાર - 'स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः'[२१] એટલે કે કોઈની વસ્તુઓના સંબંધથી વંચિત હોવાથી, મનની પ્રકૃતિમાં ઇન્દ્રિયોનું એકીકરણ પ્રત્યાહાર છે એમ મુનિ પતંજલિ કહે છે. આચાર્ય શંકર કહે છે કે ઇન્દ્રિયોની અશાંતિને શાંત કરવા માટે, વારંવાર પ્રયત્નો કરીને ઇન્દ્રિયોને કાબૂમાં રાખવી એ પ્રત્યાહાર છે.

ધારણા :

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात् ।
मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता : ॥[२२]

એટલે કે, મન જ્યાં પણ જાય ત્યાં બ્રહ્મનું દર્શન કરીને મનને એક જ સ્થળે સ્થિર કરવું તે ધારણા છે. મુનિ પતંજલિના મતે - देशबन्धश्चित्तस्य धारणा[२३] એટલે ચોક્કસ દેશમાં મનને સ્થિર કરવું એ એક ધારણા છે.

---

૨૦. આદિ શંકરાચાર્યકૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ - ૧૨૧

૨૧. યોગસૂત્ર, ૨/૫૪

૨૨. આદિ શંકરાચાર્યકૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ - ૧૨૨

૨૩. યોગસૂત્ર, ૩/૧

ધ્યાન :

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्या निरालम्बतया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ॥[२४]

એટલે કે, હું બ્રહ્મ છું, આ ગુણથી મુક્ત થવાની સ્થિતિ ધ્યાન શબ્દ દ્વારા ઓળખાય છે અને પરમાનંદ આપે છે. 'ध्यानाच्च' એટલે કે પૂજાનું સ્વરૂપ ધ્યાન છે. પૂજાનું નામ મનની વહેતી નદી છે, જેને ધ્યાન કહેવામાં આવે છે. તેલના પ્રવાહની જેમ બ્રહ્મનું સતત ચિંતન કરવાની ક્રિયાને ધ્યાન કહેવાય છે. પૂજા એ તમારા પ્રમુખ દેવનું ધ્યાન કરવાનું છે. મનની એકાગ્રતા ધ્યાન છે, જ્યારે પૂજા બેસીને કરવામાં આવે ત્યારે મન સ્થિર અને એકાગ્ર હશે. તેથી ધ્યાન કરનારા સાધકોએ બગલાની જેમ બેસવું જોઈએ. 'अचलत्वं चापेक्ष्य'નો અર્થ એ છે કે શરીરની સ્થિરતા જરૂરી છે અને આચાર્ય શંકર ધ્યાન કરવાની વાત કરે છે અને આગળ કહે છે કે ''स्मरन्ति च''નો અર્થ થાય છે જ્યારે મન અને ઇન્દ્રિયો નિયંત્રણમાં હોય. તેથી પરમપ્રાપ્ય ભગવાનના સ્વરૂપનું ચિંતન ધ્યાનમાં બેસીને કરવું જોઈએ.

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् એટલે કે, ધ્યાન દ્વારા કોઈ ચોક્કસ સ્થળ અથવા દિશાના નિયમનના અભાવને કારણે, જ્યાં મનની એકાગ્રતા હોય ત્યાં બેસીને ધ્યાન કરવું જોઈએ. મનની એકાગ્રતા એ ઉકેલની સ્થિતિ છે.

આચાર્ય શંકર ધ્યાનના સગુણ સ્વરૂપનું પણ વર્ણન કરે છે, જે આ પ્રમાણે છે - શ્રી યમુનાજીના કિનારે વસેલા વૃંદાવનના એક મહાન ઉત્સવમાં, જે કલ્પવૃક્ષની નીચે પૃથ્વી પર પગ રાખીને બેઠો છે, જેમનો શ્યામ રંગ છે, જે પોતાના તેજથી નિખિલ બ્રહ્માંડને પ્રકાશિત કરી રહ્યો છે અને એક સુંદર પીતાંબર પહેરે છે, તેના સમગ્ર શરીરમાં ચંદનના લેપ સાથે મિશ્રિત કપૂર લગાવે છે, ગોવાળો સાથે જંગલમાં ગાયોને ચરાવે છે અને તેમની સાથે ખોરાક પણ ખાય છે તે શ્રી હરિનું સ્મરણ (ધ્યાન) કરો.

આચાર્ય શંકર માતા ગાયત્રીના ધ્યાન વિશે પણ કહે છે કે નાસિકાના આગળના ભાગમાં આંખો સ્થિર રાખીને, બેસીને બ્રહ્મસ્વરૂપ મા ગાયત્રીનું ધ્યાન કરવું જોઈએ.

આચાર્ય શંકર નિર્ગુણ ધ્યાન વિશે પણ કહે છે કે મનને તેના લક્ષ્ય બ્રહ્મમાં સ્થિર રાખીને, બાહ્ય ઇન્દ્રિયોને (તેમના પદાર્થોથી દૂર રાખીને) તેમના પોતપોતાના ક્ષેત્રમાં ઠીક કરીને, શરીરને સ્થિર રાખો. આ રીતે, બ્રહ્મ અને આત્માની એકતા રાખવાથી, અખંડ મન અને મનથી બ્રહ્માનંદ રસ પીવો, અન્ય દેખાવથી રહિત આત્મામાં તમારા શુદ્ધ મનને સ્થિર કરીને, ધીમે ધીમે સ્થિરતા પ્રાપ્ત કરો, અંતે તમારી જાતને જાણો. આચાર્ય શંકરના મતે નિર્ગુણ ધ્યાનની ઉપાસનાથી મોક્ષ મળે

---

૨૪. આદિ શંકરાચાર્યકૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ - ૧૨૩

છે. પરમ ભગવાન ચોક્કસપણે અદશ્ય છે. જે સગુણ અને નિર્ગુણ બંને લક્ષણો ધરાવે છે. તેથી સાધકે જીવનભર તેના સ્વરૂપની ઉપાસના (ધ્યાન) કરવી જોઈએ.

સમાધિ :

निर्विकारतयावृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ज्ञानसंज्ञकः ॥[२५]

એટલે કે, જ્યારે વૃત્તિ બ્રહ્મના સ્વરૂપથી મુક્ત બને છે, જેથી વૃત્તિનું સંપૂર્ણ વિસ્મરણ થાય, ત્યારે આ સમાધિને જ્ઞાન કહેવામાં આવે છે. સમાધ્યભાવાચ્ચનો અર્થ એ છે કે જો કર્તવ્યને આત્માનો કુદરતી ધર્મ માનવામાં આવે તો સમાધિની સ્થિતિ અધૂરી રહેશે, કારણ કે જેમ ચેતના એ આત્માનો કુદરતી ધર્મ છે, તેવી જ રીતે, આત્મા ક્યારેય સુષુપ્ત અવસ્થા પ્રાપ્ત કરી શકશે નહીં. તેથી જીવનું કર્તાપણું પ્રકૃતિમાં નથી, તેના બદલે તે શાશ્વત આત્માના સંબંધ સાથે સંબંધિત છે. 'अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'એટલે કે પરબ્રહ્મ મંત્ર-જપ, સ્મરણ અને ધ્યાન વગેરે દ્વારા પ્રગટ થાય છે અને આત્માની શુદ્ધ અને શાંત સ્થિતિ દ્વારા વિશુદ્ધ અંતઃકરણવાળો સાધક જ બ્રહ્મનું ધ્યાન કરતાં-કરતાં તેનો સાક્ષાત્કાર કરી લે છે. તેથી બ્રહ્મની સૂક્ષ્મતાનું દર્શન યોગ-સમાધિ દ્વારા જ શક્ય છે.

આચાર્ય શંકર નિર્વિકલ્પ સમાધિ સમજાવે છે. અદ્વૈત બ્રહ્મના સાક્ષાત્કારનું સાધન-અજ્ઞાન સ્વરૂપે હૃદયની ગ્રંથિનો નાશ ત્યારે જ થાય છે જ્યારે નિર્વિકલ્પ સમાધિ દ્વારા અદ્વૈત આત્માનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. મનની એકાગ્રતા સાથે, સતત સત્સ્વરૂપ બ્રહ્મમાં રહેવાથી, વ્યક્તિ બ્રહ્મ બને છે. આ પરમતત્ત્વ ખૂબ જ સૂક્ષ્મ છે અને દિવસ અને રાતના સતત અભ્યાસથી મન પરિપક્વ થાય છે અને બ્રહ્મમાં લીન થઈ જાય છે, જેના કારણે નિર્વિકલ્પ સમાધિ પોતે જ સાબિત થાય છે અને બ્રહ્મત્વનું સ્પષ્ટ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે.

ઉપસંહાર :

યોગસૂત્રો અનુસાર तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः[२६] એટલે કે, જ્યારે માત્ર ધ્યાન (ધ્યેય) લક્ષ્યમાં સાકાર થાય છે તે સમયે મનનું વ્યક્તિગત સ્વરૂપ શૂન્ય થઈ જાય છે, તો તે જ ધ્યાનને સમાધિ સ્વરૂપ કહેવામાં આવે છે તેથી મુનિ પતંજલિ કહે છે કે સમાધિ સમયે ભાવવૃત્તિથી શૂન્યતા પ્રાપ્ત થાય છે અને પૂર્ણવૃત્તિથી પૂર્ણતા પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી જીવનનો ઉદ્દેશ આ ગુણાતીત અને સાચા અર્થમાં બ્રહ્મને પ્રાપ્ત કરીને બ્રહ્મને સાકાર કરવાનો છે. વેદાંતદર્શનમાં જ્ઞાનયોગ, કર્મયોગ અને ભક્તિયોગનો સંતુલિત સમન્વય જોવા મળે છે.

----

૨૫. આદિશંકરાચાર્યકૃત અપરોક્ષાનુભૂતિ - ૧૨૪

૨૬. યોગસૂત્ર, ૩/૩

અમારાં આગામી પ્રકાશનો...

(૧) સોરઠ અને બરડા પ્રદેશનો ઇતિહાસ

(૨) ચરકનો સ્વાધ્યાય, ભાગ-૨ (પુનઃપ્રકાશન)

(૩) ચાંપાનેર : એક અધ્યયન (પુનઃપ્રકાશન)

(૪) આધુનિક ગુજરાતના સંતો (પુનઃપ્રકાશન)

प्रज्ञाचाक्षुषमहाकाव्यस्य विहङ्गवीक्षणम्

प्रियव्रतमिश्रः*

''प्रज्ञाचाक्षुषम्'' इति काव्यमयग्रन्थोऽयं स्वनामधन्येन विद्यावाचस्पतिना आचार्यपेन्नामधुसूदनमहाशयेन विरचितः । भारतस्य दक्षिणदेशे तेलेङ्गानाप्रदेशे लब्धजन्मा मधुसूदनमहोदयः २००० तमे संवत्सरे रामटेकस्थ-कविकुलगुरुकालिदाससंस्कृतमहाविद्यालये अध्यापकत्वेन नियुक्तिमवाप्य महाराष्ट्रप्रान्तमध्यतिष्ठत् । भारतभूमिरियं पुराकालाद् योगिनां महर्षिणां क्रान्तदर्शिनाञ्च जन्मस्थलीरूपेण प्रथिता । काले कालेऽत्र महापुरुषा जनिं लब्ध्वा निखिलामपि धरां पुनन्ति । ऊनविंशशतके (19th century) विंशशतके (20th century) च तथैव महान्तो युगपुरुषाः स्वदिव्यचेतनेन भूभागममुमलमकार्षुः । यथा-रमणमहर्षिः, अरविन्दघोषः, रामकृष्णपरमहंसश्चेत्यादयः । तादृशेषु महापुरुषेषु महाराष्ट्रस्य विदर्भप्रान्ते अमरावतीक्षेत्रे ''लोनीटाकळी'' इत्याख्ये ग्रामे 6th July 1881 तमे संवत्सरे ''श्रीगुलाबरावमहाराजः'' इत्याख्यः महायोगी जनिं लेभे । जनुषान्धोऽयं एकाधारेण योगी, शास्त्रज्ञः, भक्तः, अद्वैतवादी च बभूव । अत्यल्पीयसि वयसि ३४ वर्षात्मके जीवनकाले संस्कृतवाङ्मयस्य प्रत्येकमप्यंशं करतलामलकीकृत्य न्याय-दर्शन-साहित्य-सङ्गीत-व्याकरण-आयुर्वेदादिसम्बद्धान् १३४ ग्रन्थान् विरचयामास । आदिशङ्कराचार्ये नितान्तं मतिमान् अयं महायोगी तत्कृतीश्च सर्वदा पाथेयत्वेन अग्रहीत् । ज्ञानेश्वरमहात्मनि अगाधभक्तिमाँश्च पिता इत्येव कथयति स्म । अन्येषामपि तत्त्वविदां महतां विदुषां ग्रन्था अनेन अधीता एवञ्च कीर्त्तनम्, अभङ्गम्, प्रवचनञ्च व्यरचि । साहित्यसम्राट् नरसिंहचिन्तामणिकेलकरमहोदयः कदाचित् अवोचत् यत् श्रीगुलाबरावमहाराजानां कमपि ग्रन्थम् अधीमहे चेत् विश्वकोशमिव (Encylopedia) भाति । स्वाल्पीयसा कालेन विभिन्नभाषाभिः १३४ ग्रन्था अनेन संस्कृत-मराठी-हिन्दी-भोजपुरीभाषाभिः विरचिताः । महाराजानां सर्वेऽपि ग्रन्थाः यद्यपि २० यष्टिभिः अथवा २५०० अभङ्गैः (मराठीपद्यैः) सङ्कलिताः तथापि संस्कृतकृतीनां विषये इत्थं विभक्तुं शक्नुमः -

१.	सूत्रशैल्या	- ७	२.	श्लोकशैल्या	- १३
३.	भाष्यशैल्या	- ०३	४.	गद्यशैल्या	- ०५
५.	संस्कृतमराठीछन्दविवृत्तिः	- ०१	६.	संस्कृतपत्रम्	- ११

बाल्यकाले पेन्नामहोदयस्य माता ऋषीणां महर्षिणां विषये श्रावयति स्म । ज्ञानदेव-तुकाराम-सक्कुबाई-नामदेव-चाङ्गदेव-गोरखनाथादीनां विषये श्रावं श्रावं मनसि कश्चन संस्कारविशेषः समजनि लेखकस्य ।

'स्वाध्याय' - पु. ६०, वर्ष २०२३, पृ. १८३-१८७. ISSN 2250-0391

* संस्कृतव्याकरणविभागः, श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, पुरी (ओडिशा), M. 09939622062, Email: shabda.priyavrat@gmail.com

दैवयोगेन यदा २००० तमे संवत्सरे नियुक्तिमवाप्य महाराष्ट्रप्रान्तं समागात् तदा कुतूहलेन एतद्देशीयविभूतीनां विषये पठितवान् । एवं क्रमेण गुलाबरावमहाराजानां विषये तेषां कृतीश्च अधीत्यात्यन्तप्रभावितोऽयं पेन्नामहोदयः स्वकीयान् छात्रान् शोधकार्यं कर्त्तुं प्रैरयत् । तत्क्रमेण स्वयमप्यधीत्य वाङ्मयजातं ''प्रज्ञाचाक्षुषम्'' नामकं महाकाव्यमिदं प्राणैषीत् । महाकाव्येऽस्मिन् ८५० श्लोकाः सन्ति । एकादशसु अध्यायेषु विभक्तमिदं महाकाव्यं साम्प्रतं संस्कृतजगति स्वीयां छटां विकिरति । अत्र अध्यायानामभिधानम् ईक्षणं नाम्नाभिहितम् । ईक्षणं नाम दृष्टिः । जन्मनः आरभ्य नेत्रशक्तिविहीना अप्यमी महात्मानः अखिलमपि जीवनरहस्यजातं स्वकीयकृतिषु उल्लिलिखुस्तेषाञ्च प्रज्ञाचक्षुषां जीवनचरितं महाकाव्येऽस्मिन् विस्तरेण प्रस्तावितमिति नुनम् ईक्षणमिति नामकरणमतितरां युज्यते । एतेषां महात्मनां विषये समुपवर्णयन् कविः पेन्नामहोदयः आह-

योऽन्तर्ज्ञानमवाप्य गाढतपसा पूर्वार्जितैः सुकृतै-
स्तत्तच्छास्त्ररहस्यमाप मतिमान् लीलाविहारं भजन् ।
येनेमानि हि सार्थकानि भुवने चक्षूंषि चक्षुष्मतां
प्रज्ञाचक्षुरिति प्रजासु विदितो जीयात् स योगी चिरम् ॥ (१/४)

तत्र दशसु ईक्षणेषु प्रज्ञाचक्षुषां जीवनचरितं समुपवर्णितम् एकादशमीक्षणञ्च ''गुलाबगीता'' नाम्ना प्रसिद्ध्यति । तत्र गुलाबमहाराजानां चिन्तनम्, उपदेशः समाजं प्रति वार्त्ता चोल्लिखिता । सा च गुलाबगीता पुनः सप्तसु अध्यायेषु विभक्ता ।

प्रथमेक्षणम् - तत्र प्रथमेक्षणे तावत् ५७ श्लोकाः विरचिताः । आदौ वाग्देव्याः वन्दनं विधाय गुलाबरावमहाराजानां जन्मादिवृत्तं विस्तरेण सुललितपद्यैः निबद्धम् । वाग्देव्याः वन्दनं तावत् नितान्तं चेतः आह्लादयति-

स्मितेन यस्या जगदेतदञ्जसा वशीकृतं न्यक्कृतचन्द्ररोचिषा ।
विभातु तन्मे हृदये स्थिरप्रभं तमः प्रकाण्डस्फुटनाशविक्रमम् ॥ (१/१)

या देवी बोध पेण मद्बुधिमधितस्थुषी ।
सदा मां प्रेरयेद् वाचा तया तामेव संस्तुवे ॥ (१/२)

द्वितीयेक्षणम्-ईक्षणेऽस्मिन् ३८ श्लोकाः प्रज्ञाचक्षुषां बाल्यलीलामाश्रित्य विरचिताः । जन्मान्धैरेतैः कथं विविधशास्त्रीयग्रन्थानाम् अध्ययने प्रवृत्ताः ? कथञ्च सकृत् श्रुतो विषयो न विस्मृतिं गतः ? कथं नाना शास्त्रज्ञानपिपासवः अमी महात्मानः ज्ञानवृद्धानां समीपं गत्वा शास्त्राणि अध्यगीषन्निति सविस्तरं समुचितच्छन्दोवृन्दैः प्रतिपादितम् ।

तृतीयेक्षणम्-अस्मिन् ईक्षणे च ४१ श्लोकाः मनोरमपदावलीभिः विरचिताः । ''मनकर्णिका'' इत्यभिधया कन्यया सह दाम्पत्यजीवनस्यारम्भः ततः सन्तानविहीनाः कृष्णे सर्वं तत्त्वं समर्प्य भक्त्याप्लाविताः सञ्जाता इति भक्तिरसपूरितानि पद्यानि अत्र मधुसूदनवर्यैः प्रास्ताविषत ।

चतुर्थेक्षणम्- ईक्षणेऽस्मिन् ६० श्लोकाः विन्यस्ताः । यथा ज्ञानेश्वरमहात्मानः कृष्णभक्त्या परिपूर्णमानसाः ''ज्ञानेश्वरी'' इति रचनां विधाय लोकेभ्यो गीतामृतम् अपीप्यन् तथा गुलाबरावमहाराजा अपि तद्भक्त्यावगाहनमानसाः लोकान् बोधामृतं पाययामासुरित्यत्र उभयोः भक्तेः पराकाष्ठा समर्पणं चात्र प्रदर्शितं मञ्जुलपद्यसंहारैः ।

पञ्चमेक्षणम् - अत्र ५३ श्लोकाः लिखिताः । अस्मिन्नपि ईक्षणे गुलाबरावमहाराजानां ज्ञानेश्वरमहात्मनाश्च श्रीकृष्णभक्तिः वर्णिता । ततः महाराजानां कात्यायनीव्रतम्, श्रीकृष्णस्य विविधस्वरूपवर्णनम् अत्रेक्षणे पद्यबन्धैः चारु प्रस्तुतम् । कवेः मधुसूदनवर्यस्य वर्णनचातुर्यमत्र भृशं साक्षात्कर्त्तुं शक्यते । श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य काव्यच्छटात्र अनुसृता ।

षष्ठेक्षणम् - अस्मिँश्चेक्षणे ४३ श्लोकाः ग्रथिताः । अत्र गुलाबरावमहाराजाः स्वपत्नीं शिष्यत्वेन गृहीत्वा कृष्णप्रेम्णि निमज्जयन्त आत्मानं पञ्चलतिकेति गोपिकां मेनिरे । ततः महाराजानां पुत्रप्राप्तिः क्रमशः मोक्षमार्गगामिनस्ते स्वशिष्यान् सन्मार्गं प्रदर्शयामासुः ।

सप्तमेक्षणम् - अत्र ६३ श्लोकाः श्लोकिताः । हरिकीर्त्तने आत्मानं प्लावयन्तः पत्नीं च हरिकीर्तनाय प्रेरितवन्तः । ततः पत्न्याः देहावसानघटनात्र करुणया शैल्या प्रतिपादिता ।

अष्टमेक्षणम् - अस्मिन् ईक्षणे ६२ श्लोकाः उपायनीकृताः । अत्र गुलाबरावमहाराजानां वेदान्तचिन्तनेन लोकानां मनसः अज्ञान-अन्धकारनिवारणमत्र प्रकटीकृतम् ।

नवमेक्षणम् - ईक्षणेऽत्र ५१ श्लोकाः विन्यस्ताः । ज्ञानेश्वर्य्याः ज्ञानामृतं महाराष्ट्रस्य ग्रामे ग्रामे कथं प्रसारितमिति विस्तरेण वर्णितम् । पंढरी, विठ्ठल, गणेशमूर्त्तिरहस्यं, चन्द्रभागा, इन्द्रायणी नदी इत्येते विषया अत्र प्रभागे श्लोकबद्धाः प्रस्तुताः ।

दशमेक्षणम् - उपान्तिमेऽस्मिन् ईक्षणे ३८ श्लोकाः सुन्दरपदावलीभिः प्रस्ताविताः । श्रीकृष्णः जगतः पतिः इति महिमगानपुरस्सरम् उपस्थापितम् । विविध-ऋषीणां-महर्षिणां गौतम-कपिलादीनां शास्त्राणां न्याय-सांख्य-योग-मीमांसादीनां महत्त्वं लोकेषु कथङ्कारं प्रसारितं गुलाबरावमहाराजैरिति प्रस्तुतम् ।

गुलाबगीता-एकादशेक्षणं तावत् गुलाबगीता नाम्ना प्रसिद्ध्यति । अत्र सप्तसु अध्यायेषु ३१७ श्लोकाः विरचिताः । गुलाबरावमहाराजानां तत्त्वज्ञानं तस्य लोकेषु प्रचारणमत्र मुख्यो विषयः । प्रथमेऽध्याये पञ्चायतनम्, सद्वाक्यद्वारा उपदेशः, कामादिबन्धनात् दूरे स्थितिः, भ्रामरीवृत्तेः उपासना, संतसम्प्रदायस्य महत्त्वम्, प्राणीमात्रस्य कल्याणं, वैदिककर्मणां महत्त्वम्, धर्मस्य महत्त्वम्, आर्यधर्ममहिमा तस्य च दर्शनेन समन्वय इत्येते विषयाः प्रकाशिताः । द्वितीयेऽध्याये च संसारबन्धनस्य कारणम्,आत्मज्ञानं, मोक्षः, प्रमाता तथा जीवः, विद्या, अविद्या, सर्वेषां चरमं लक्ष्यम्, दुःखस्य कारणम्, दुःखमुक्तेः साधनम्, गौतमबुद्धः, वर्धमानमहावीरः, सांख्ययोगन्यायवैशेषिकमीमांसादीनां तत्त्वज्ञानेन दुःखनिवृत्तिः, ईश्वरस्य प्रेम्णा भक्त्या

च आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिः इत्येते विषयाः पुरस्कृताः । तृतीयेऽध्याये तावत् समाधिः, ध्यानम्, भक्तिः, इत्यादीनां महत्त्वम्, आत्मसाक्षात्कारः, गीतासारः, वेदवाक्यानां महत्त्वम्, उपनिषदां ब्रह्मसूत्राणां च महत्त्वम्, प्रस्थानत्रय्याः अनुसरणम्, सात्त्विकप्रज्ञा इत्यादयो विषयाः विन्यस्ताः । चतुर्थेऽध्याये मोक्षप्राप्तये मार्गः, कर्मणां फलम्, विकर्मसु अलिप्तिः, अनासक्तेः उपासनम्, प्रारब्धकसञ्चितकर्मणोः महत्त्वम्, चित्तशुद्धिः, आत्मज्ञानद्वारा मोक्षप्राप्तिः, अहङ्कारस्य नाशः, विद्यादानजलदानान्नदानादीनां महत्त्वम् इति विषयाः वर्णिताः । पञ्चमेऽध्याये योगस्य स्वरूपम्, तस्य रहस्यम्, सर्तृसम्पाध्य-वस्तुसम्पाध्ययोगः, हठयोगः, पतञ्जलियोगः, योगविषये श्रद्धा, शमादिषड्गुणानां विवरणम्, अष्टाङ्गयोगस्य महत्त्वम्, जन्म-मृत्युचक्रान्निवृत्त्युपायः इत्येते विषयाः विषयीकृताः । षष्ठेऽध्याये ज्ञानस्य विविधपरिभाषा, मोक्षसाम्राज्यसुखस्य ज्ञानं, स्वात्मानुभूतिः, कृष्णतत्त्वस्य विचारः, शाश्वतं ज्ञानं, ब्रह्मानन्दः, अनध्यस्तविवर्त्तः, चिरस्थायियशःप्राप्तिः, ईश्वरस्य गुणसमूहस्य ज्ञानम्, अकल्याणकारिज्ञानस्य त्यागः इतीमे विषयाः प्रफुल्लिताः । सप्तमेऽध्याये पुरुषार्थः, भक्तिमार्गः, भागवतसम्प्रदायः, ब्रह्म, अन्तिमसत्यम्, शिवविष्णुकृष्णभक्तीनां प्रयोजनम्, परा भक्तिः अपराभक्तिश्च, अज्ञानावरणस्य नाशः, गोपिकानां रासक्रीडा, परमेश्वरसन्तुष्टिः इत्यमी विषयाः भृशं चर्चिताः ।

स्वाभिमतम्-

साम्प्रतिकेषु विरचितेषु महाकाव्येषु विशिष्टं किञ्चित् महाकाव्यं वर्त्तते ''प्रज्ञाचाक्षुषम्'' इति । महाकाव्यमिदं विदर्भप्रान्तस्य सारस्वतजन्मभूः इति नामकरणं समर्थयति सार्थकतया अनुवर्त्तयति च । महाराष्ट्रं ''सन्तभूमिः'' इति सुविख्याता वर्त्तते । गुलाबरावमहाराजचरितमाश्रित्य ग्रथितमिदं महाकाव्यम् अर्वाचीन-संस्कृतसाहित्यवैभवस्य ललितम् उदाहरणं वर्त्तते । महाकाव्येऽस्मिन् विविधच्छन्दसां प्रयोगो दृश्यते यथा - अनुष्टुप्, उपजातिः, वंशस्थः, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडितम् इति । बहुलालङ्काराणामपि मञ्जुलप्रतिभा प्रतिभात्यत्र । यमकः, अनुप्रासः, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्तिः, समासोक्तिः, उपमा चेत्यादीनि । अत्र भाषागतवैशिष्ट्यानि छन्दोऽलङ्कारान्वितवैशिष्ट्यान्येव न प्रफुल्लितानि प्रत्युत महाकाव्यस्वरूप-इतिवृत्त-लक्षणपरम्परेत्यादिभिः बहुभिः नवीनविशेषविषयैः साकं नूत्नं किञ्चित् सारस्वतं तत्त्वं प्रत्यपादि कविवरेण्यैरिति जीयाल्लेखनी कविवराणां जीयात् संस्कृतशास्त्रशेवधिः जीयासुश्च तदधिगोप्तारः ।

कविपरिचयः-

कविवराः आचार्याः पेन्नामधुसूदनवर्याः तेलेङ्गानाप्रान्तस्य ''जडचेरिआ'' इत्याख्ये ग्रामे १९६६ तमे संवत्सरे जनिमलभन्त । प्राथमिकशिक्षां ग्रामे एव समाप्य गुरुणां सान्निध्यमवाप्य बाल्ये वयस्येव नाना शास्त्राणि अधिजगिरे । ततः हैदराबादस्थित-उस्मानिआविश्वविद्यालये उच्चपदवीमासाद्य २००० तमे संवत्सरे कविकुलगुरुकालिदाससंस्कृतविश्वविद्यालये दर्शनविभागे वृत्तिजीवनम् आरभन्त । एते यद्यापि वृत्त्या दार्शनिकाः तथापि साहित्ये व्याकरणे च अप्रतिहतगतयः नाना सभासु स्वपाण्डित्यं प्रादर्शयन् । प्रख्याताः कवयः नाट्यकारा अमी आचार्याः सोमनाथ-सर्वश्रेष्ठ-संस्कृत-अध्येतृपुरस्कारः, पण्डितलतकरशास्त्रि- स्मृतिपुरस्कारः, पण्डितसातवलेकर-स्मृति-पुरस्कारः, पण्डितघटाटे-स्मृति-पुरस्कारः, पण्डितश्रीवंगिपुरं रामानुजाचार्यसम्माननं

चेत्यादीन् नाना पुरस्कारान् प्राप्तवन्तः । २०२० तमे संवत्सरे तिरुपतिस्थराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठेन सम्मानितविद्यावाचस्पत्युपाधिना इमे सम्मानिताः । २०१४ तमे संवत्सरे रचितं ''प्रज्ञाचाक्षुषम्'' इति ग्रन्थरत्नं निमित्तीकृत्य देहलीस्थकेन्द्रीयसाहित्यअकादमी २०१९ तमे संवत्सरे साहित्य-अकादमीपुरस्कारेण समभाजयत् । प्रायशः संस्कृतवाङ्मयस्य प्रत्येकमपि अंशमेते आलोडितवन्तः, अतो विविधविषयेषु ग्रन्था अमीभिः आचार्यैः विरचिताः । यथा न्यायवैशेषिकशास्त्रमाश्रित्य A Treatise on Vaisesika substances इति ग्रन्थः तथैव योगदर्शनमाधृत्य Yogasiddhanta Chandrika of Narayana Tirtha: A study, योगोपनिषदश्च इत्यादयः ग्रन्थाः व्याकरणशास्त्रमादाय वैयाकरणभूषणसारस्य टीकाविशेषः, सर्वाणि दर्शनानि सङ्कलय्य Indian Philosophy (Samkhya, Yoga, Vaisesike, Nyaya, Vedanta) इति च ग्रन्थान् प्राणैषुः । प्रज्ञाचाक्षुषमिति द्वितीयं महाकाव्यं पेन्नामहोदयानाम् । ततः पूर्वं आन्ध्रीययोगिनां काव्यकण्ठगणपतिमुनिमहात्मनां जीवनचरितमाश्रित्य १००० श्लोकात्मकः काव्यग्रन्थः कविहृदयैः व्यरचि यश्च काव्यग्रन्थः Chinmaya International Institute, Kerala इत्याख्यया संस्थया २०१२ तमे संवत्सरे प्राकाश्यं नीतः । एवं विविधविषयेषु समाकलय्य ३० पुस्तकानि आचार्यमधुसूदनवर्यैः ग्रथितानि ।

परामृष्टग्रन्थसूची -

१. प्रज्ञाचाक्षुषम् : गुलाबरावमहाराजचरितम् - प्रो. पेन्नामधुसूदनः, न्यू-भारतीय-बुक-कार्पोरेशन, नई-दिल्ली, प्रथम-संस्करणम्, 2014

२. साहित्य-अकादमी वेब साईट्

३. विभिन्नवार्त्तापत्रिकाः

सौंदर्यलहरी

(शंकराचार्यविरचिता)

(Text in Sanskrit with Translations in English, Hindi, Marathi and Gujarati with Multi-Colour Pictures)

Edited by

R. I. NANAVATI

Translation

English : HARISH ZAVERI

Hindi : RADHAVALLABH TRIPATHI

Marathi : SAROJA BHATE

Gujarati : R. I. NANAVATI

General Editor

M. L. WADEKAR

First Edition 2013

Price : Rs. 1000/-

Copies available at :

The University Publications Unit
General Education Centre
A. I. C. S. Building
Opp. C. C. Mehta Auditorium
Pratapgunj, Vadodara - 390002
Ph. No. 0265 2781700

The University Facilitation Centre
Below University Head Office
Fatehgunj
Vadodara-390002
Ph. No. 0265 2795555

ગ્રન્થાવલોકન

અમૃત યોગનું, પ્રાપ્તિ મોક્ષની, લે. ડૉ. રશ્મિ ભેદા, પ્રકાશક : શ્રી મુંબઈ જૈન યુવક સંઘ, મુંબઈ, તૃતીય આવૃત્તિ : ઓક્ટોબર ૨૦૧૭, પૃષ્ઠ : ૩૨૦, મૂલ્ય : રૂ. ૨૫૦/-

મૂળે પીએચ. ડી. સંશોધન નિમિત્તે લખાયેલો શોધનિબંધ પુસ્તક સ્વરૂપે પ્રાપ્ત થાય છે. લેખિકા ગ્રંથની પ્રસ્તાવનામાં જ જણાવે છે કે ''અનાદિકાળથી આ સંસારચક્રમાં ફરતા જીવોને ભવભ્રમણમાંથી બચાવનાર અને મોક્ષપ્રાપ્તિ કરાવનાર આ યોગમાર્ગ છે. જૈન દર્શન મુજબ પ્રત્યેક આત્મામાં પરમાત્મા બનવાની ક્ષમતા છે. તે પોતાના પુરુષાર્થથી અર્થાત્ સમ્યક્ દર્શન, જ્ઞાન, ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયની સાધના કરીને અર્થાત્ યોગમાર્ગને અનુસરીને પરમાત્માપણું પ્રાપ્ત કરી શકે છે.'' (પ્રસ્તાવના, પૃ. ૫)

લેખિકાએ પ્રાચીનથી માંડીને અર્વાચીન સમયને આવરી લઈને જૈન ધર્મના આચાર્યોના દષ્ટિકોણ તેમજ આત્માના આધ્યાત્મિક વિકાસ માટેની વિભાવનાને આધારે વિષયવસ્તુનું નિરૂપણ કરવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે.

ગ્રંથના આરંભે પન્યાસ શ્રી અરુણવિજયજી મહારાજે આશીર્વચન આપતાં લખ્યું છે કે ''ભર્તૃહરિને છેવટે થાકીને કહેવું જ પડ્યું કે ખરેખર ભોગો નથી ભોગવાયા, પણ હું જ ભોગવાઈ ગયો છું. ભોગશક્તિ છોડીને સર્વથા જુદી જ દિશામાં જઈને યોગી જે જે બન્યા છે, તે રોગી પણ નથી બન્યા. નિરોગી-અરોગી થઈને સ્વસ્થ જીવન જીવ્યા છે.'' (પૃ. ૭)

રશ્મિ ભેદાએ યોગના અનેક અંગોને આવરી લઈને પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં જીવનમાં યોગનું કેવું અને કેટલું મહત્ત્વ છે તે વિવિધ સંદર્ભોને આધારે ચીંધી બતાવ્યું છે.

પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં આરંભે કુમારપાળ દેસાઈએ ''અમૂલ્ય સંપદાની ઓળખ'' શીર્ષક અંતર્ગત બહુ ઓછા શબ્દોમાં યોગનો પરિચય કરાવ્યો છે. તેઓ કહે છે કે-''જૈન ધર્મ જેટલો અહિંસાપ્રધાન છે એટલો યોગપ્રધાન છે અને એની સમગ્ર યોગપ્રણાલી એના જીવનદર્શન, ધર્મક્રિયાઓ અને તત્ત્વવિચારથી વિભૂષિત છે.'' (પૃ. ૧૩)

પુસ્તક નવ પ્રકરણોમાં વિભાજિત છે. પ્રથમ પ્રકરણ ''મોક્ષપ્રાપ્તિનો માર્ગ : યોગ''માં યોગ વિશેની ભૂમિકારૂપ ચર્ચા થઈ છે. એમાં યોગની પરંપરાઓ, જૈન ધર્મ, નવતત્ત્વ, સમ્યક્ત્વ જેવા મુદ્દાઓની વિગતવાર છણાવટ કરી છે. આમાં યોગ અને મોક્ષ, યોગની વ્યાખ્યા વિસ્તારથી

'સ્વાધ્યાય' - પુ. ૬૦, વર્ષ ૨૦૨૩, પૃ. ૧૮૯-૧૯૦. ISSN 2250-0391

સમજાવી છે. બીજા પ્રકરણમાં જૈન યોગનું ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ વિહંગાવલોકન કરી ભારતની મુખ્ય ધર્મપરંપરાઓનો ઉલ્લેખ કરી યોગની ચર્ચા કરી છે. ''આચાર્ય કુંદકુંદદેવની કૃતિઓમાં જૈન યોગ'' નામક ત્રીજા પ્રકરણમાં આચાર્યનો પરિચયાત્મક ઉલ્લેખ કરી એમની કૃતિઓ સમયસાર અને નિયમસારને આધારે યોગની ચર્ચા કરી છે. બંને કૃતિઓમાં વર્ણવેલ મોક્ષમાર્ગ વિસ્તારથી આલેખ્યો છે. ચોથા પ્રકરણમાં હરિભદ્રસૂરિના પ્રદાનની માહિતી આપી છે. ૧૪૪૪ જેટલા ગ્રંથોના પ્રણેતા હરિભદ્રસૂરિનો પરિચય અભ્યાસીને ઉપયોગી બની રહે એવો છે. એમના મહત્ત્વના કહી શકાય તેવા ગ્રંથો 'યોગબિંદુ', 'યોગશતક', 'યોગવિંશિકા', 'યોગદૃષ્ટિસમુચ્ચય'નો વિસ્તૃત પરિચય કરાવ્યો છે. પ્રકરણ ૫માં સ્વતંત્ર રીતે ફરીથી હરિભદ્રસૂરિના ગ્રંથ 'યોગદૃષ્ટિસમુચ્ચય'ના આધારે જૈન યોગની ચર્ચા કરી છે. એમાં યોગી, યોગ અને સામર્થ્ય યોગ તથા આઠ દૃષ્ટિ વિશે વિગતે વર્ણન કરેલ છે.

પ્રકરણ ૬માં શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યના 'યોગશાસ્ત્ર'ને ધ્યાનમાં રાખીને ગૃહસ્થ માટેની સાધના કેવી હોય એ નિરૂપ્યું છે, એમાં બાર જેટલા પ્રકાશ દર્શાવીને વિવિધ મુદ્દાઓની ચર્ચા કરી છે. આ જ પ્રકરણમાં આચાર્ય શુભચંદ્રરચિત 'જ્ઞાનાર્ણવ' નામના યોગ અને ધ્યાન વિષયને નિરૂપતા ગ્રંથની ચર્ચા કરી છે. પ્રકરણ ૭માં વિવિધ જૈન આચાર્યોએ બતાવેલ યોગમાર્ગની વિગતો મળે છે. એમાં આનંદઘન, ઉપાધ્યાય યશોવિજય, આચાર્ય બુદ્ધિસાગરસૂરિજી, શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર, આચાર્યશ્રી મહાપ્રજ્ઞ જેવા વિદ્વાનોના ગ્રંથોને આધારે જૈન યોગનું મહત્ત્વ પ્રતિપાદિત કર્યું છે. પ્રકરણ ૮માં જૈન યોગ અને પાતંજલ યોગનો તુલનાત્મક અભ્યાસ રજૂ કર્યો છે. એમાં યોગ એટલે શું ? એ દર્શાવીને તત્ત્વાર્થસૂત્ર, યોગવિંશિકા, યોગસૂત્ર અને પાતંજલ યોગસૂત્રના સંદર્ભોથી વિસ્તૃત ચર્ચા થઈ છે. ગ્રંથના અંતે ઉપસંહાર અને સંદર્ભસૂચિ આપેલ છે.

યોગાભ્યાસીઓ માટે આ ગ્રંથ માર્ગદર્શનરૂપ બની રહે તેવો છે. જૈન યોગ વિશેનું તલસ્પર્શી અધ્યયન કરીને ડૉ. રશ્મિ ભેદાએ યોગની વિવિધ ભારતીય પ્રણાલીઓના સંદર્ભમાં યોગનું વૈશિષ્ટ્ય દર્શાવી એનું ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ અધ્યયન કર્યું છે. લેખિકા ડૉ. રશ્મિ ભેદા અને પ્રકાશક મુંબઈ જૈન યુવક સંઘને અભિનંદન.

પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર,
મ. સ. વિશ્વવિદ્યાલય,
વડોદરા

- જે. કે. ઉમરેઠિયા

प्राच्य-विद्यामन्दिर की वार्षिक गतिविधियाँ-२०२२-२०२३

प्राच्यविद्यामन्दिर एक स्नातकोत्तर शिक्षण एवं अनुसन्धान संस्थान है । जिसमें अधिकांश शिक्षक/अनुसन्धान अधिकारी मान्यता प्राप्त पीएचडी मार्गदर्शक हैं । वर्ष २०२२-२०२३ के दौरान प्राच्यविद्यामन्दिर संस्थान विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के साथ सक्रिय बना रहा है । पूरे वर्ष हमारी गतिविधियाँ निम्नप्रकार रहीं -

१. पाण्डुलिपि - विभाग (मेन्यूस्क्रिप्ट सेक्शन)

प्राच्यविद्यामन्दिर मूलतः पाण्डुलिपि-पुस्तकालय है । जिसमें महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ संरक्षित हैं, इसी कारण से समस्त विश्व के विद्वान् यहाँ पर हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतिछाया लेने के लिये स्वयं आते हैं अथवा ई-मेल द्वारा प्राप्त करते हैं । इस वर्ष लेखों के प्रकाशन, पत्रिका की सदस्यता, पाण्डुलिपि की प्रतिछाया को डाक या ऑनलाइन भेजने के सम्बन्ध में अनेक अनुरोध प्राप्त हुए जिसका निराकरण तत्सम्बन्धित अनुसन्धान अधिकारियों द्वारा किया गया । इस वर्ष हमने १०३ पाण्डुलिपियों की प्रतिछाया देश विदेश के विविध ५६ विद्वानों को ऑनलाइन और ऑफलाइन द्वारा उपलब्ध करायीं । जिनमें आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर, पारुल युनिवर्सिटी, वडोदरा, संस्कृतविभाग, वडोदरा, राजस्थान, पुणे, वाराणसी आदि हैं इन्होने अपने पीएचडी एवं शोध हेतु हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त किए । संस्थान को कारेलीबाग, वडोदरा से अनेक पाण्डुलिपियाँ दान में प्राप्त हुई हैं जिनका परिष्करण का कार्य चल रहा है ।

२. समीक्षित-आवृत्ति विभाग (क्रिटिकल-एडिशन विंग)

समीक्षित-आवृत्ति विभाग की स्थापना वाल्मीकि-रामायण की समीक्षित आवृत्ति परियोजना हेतु की गयी थी । पूर्व में इस विभाग ने विष्णुपुराण एवं मार्कण्डेय पुराण की समीक्षित-आवृत्तियाँ बना कर संस्था को और भी उज्जवल किया है । इस समय यह विभाग गयामाहात्म्य (वायुपुराण का एक अंश) की समीक्षित-आवृत्ति तैयार करने में व्यस्त है जिसका क्रिटिकल टेक्स्ट, क्रिटिकल एपरेटस, कॉनकोर्डेंस आदि का कार्य परिपूर्णता की ओर है । सम्प्रति इसका हिन्दी अनुवाद का कार्य चल रहा है ।

३. मुद्रित-विभाग (लाइब्रेरी)

प्राच्यविद्यामन्दिर का मुद्रित ग्रन्थागार अनेक मूल्यवान एवं दुर्लभ पुस्तकों की प्रथमतम आवृत्ति के अधिकारी के रूप में विख्यात है । अनेक भाषाओं में प्राच्य-साहित्य की पुस्तकों, भारतीय-विद्या

(इन्डोलॉजी) की पत्रिकाओं के आकर्षण से अनेक विद्वान् यहाँ दौडे चले आते हैं । हमारी संस्था द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं **-जर्नल ऑफ द ऑरिएन्टल इंस्टीट्यूट** (JOI) तथा स्वाध्याय के एवज में देश विदेशों से हमें १०४ पत्रिकायें निःशुल्क प्राप्त होती हैं । बहुधा विद्वद्गण किसी पुस्तक-विशेष की डिजीटाइज कॉपी अथवा **गायकवाड ऑरिएण्टल सीरीज** की पुस्तक की डिजीटाइज कॉपी या फिर हमारी पत्रिकाओं में छपे पुराने लेखों की प्रतिकृति की माँग करते हैं तो उन्हें हम वह भी उपलब्ध कराते हैं । प्रतिदिन १०-१५ पाठक/शोधछात्र हमारी लाइब्रेरी का लाभ लेते हैं ।

४. प्रकाशन (पब्लिकेशन)

वर्ष २०२२-२०२३ में हमने अंग्रेजी में **जर्नल ऑफ द ऑरिएण्टल इंस्टीट्यूट** (JOI) का **७१वाँ** अङ्क एवं त्रिभाषी पत्रिका ''स्वाध्याय'' का ५९वाँ अङ्क प्रकाशित किया । दोनों पत्रिकाओं के अगले अङ्कों का सम्पादन एवं तीन बार प्रूफ-रीडिंग का कार्य भी सम्पादित हो गया है । सयाजी साहित्यमाला की शृङ्खला के अन्तर्गत दो गुजराती पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है -

१. चरकनो स्वाध्याय भाग-१ एवं २. सोरठ अने बरडा प्रदेशनो इतिहास ।

५. पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र (एम.सी.सी.)

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, संस्कृति मन्त्रालय, नई दिल्ली ने प्राच्य-विद्यामन्दिर, वडोदरा को पाण्डुलिपि-रक्षण एवं सरंक्षण परियोजना के लिये गुजरात क्षेत्र का **पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र** (एम.सी.सी.) चुना है । जिसमें तीन संरक्षकों की नियुक्तियों के साथ १२,००,००० का बजट प्रस्तावित है । इस वर्ष कागज और ताडपत्र की पाण्डुलिपियों के ६०,००० फोलियों को धूल एवं अन्य क्षतियों से मुक्त कर उनका उपचार किया गया । ६००० फोलियों का उपचारात्मक कार्य किया गया, जिसमें फोलियों को धूलादि से मुक्त कर अम्लरहित (De-acidification) कर जापानी टिश्यू पेपर का आवरण देकर नया जीवन दिया जाता है । अधिक नाजुक, टूटी हुई, अम्लीय पाण्डुलिपियों को अधिक क्षति से बचाया जाता है । इस वर्ष कुछ लोगों के घर में रखी हुई बहुत पुरानी एवं नाजुक पाण्डुलिपियों को उनके घर जाकर संरक्षित करने में भी सहायता की ।

६. पाण्डुलिपि संसाधन केन्द्र (एम.आर.सी)

राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, संस्कृति मन्त्रालय, नई दिल्ली ने प्राच्य-विद्यामन्दिर, वडोदरा को **पाण्डुलिपि संसाधन केन्द्र (एम.आर.सी.)** चुना है । जिसमें १० पाण्डुलिपिमित्रों की नियुक्तियों के साथ १८,००,००० का बजट प्रस्तावित है । इस केन्द्र के अन्तर्गत हमने राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, के भारतीय कृति सम्पदा पोर्टल पर ५१८ पाण्डुलिपियों को डिजिटल रूप में सूचीबद्ध किया है ।

७. सेमीनार, व्याख्यान शृङ्खला, कार्यशाला एवं प्रदर्शनियाँ ।

वर्ष २०२२-२०२३ में हमने कार्यशाला, सेमीनार, स्व. यू. पी. शाह व्याख्यान शृङ्खला एवं एक्स्ट्रा मूरल लेक्चर सीरीज आदि का आयोजन किया । जिसकी सूची इस प्रकार है ।

गतिविधि	दिनाँक	प्रमुख झलकियाँ	लाभ	आयोजक	वित्त पोषित
पाण्डुलिपियों का प्रदर्शन (अक्षरसम्पदा)	३०/४/२०२२ से १/५/२०२२	प्रसिद्ध संस्कृत कृतियों की पाण्डुलिपियाँ, विभिन्न सामग्रियाँ विभिन्न लिपियों का प्रदर्शन किया गया था ।	शहर के लोगों को प्राच्यविद्यामन्दिर में संरक्षित सांस्कृतिक विरासत के विषय में जानकारी प्राप्त हुई ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा
ऑनलाइन एक्स्ट्रा मूरल लेक्चर सीरीज (शङ्कराचार्य जयन्ती के समुपलक्ष्य में)	५/५/२०२२	प्रो. हरेकृष्ण शतपथी, पूर्व कुलपति, कलिङ्ग इंस्टीट्यूट ऑफ सोसियल साइंस विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, ओडीशा व्याख्यान शीर्षकः श्रीशङ्कराचार्यस्य सनातनधर्मोत्थानं प्रति योगदानम् ।	लोगों को शङ्कराचार्य और उनका सनातन-धर्म की स्थापना में योगदान के विषय में अवगत कराना ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा
५ दिवसीय कार्यशाला, ताडपत्रों का पारम्परिक तकनीक द्वारा संरक्षण ।	४/७/२०२२	डॉ. पी. पेरुमल, कन्झर्वेटर, तांजावुर	विद्यार्थियों एवं संस्कृत विद्वानों को ताडपत्र की पाण्डुलिपियों के संरक्षण के विषय में प्रायोगिक ज्ञान प्रदान करना ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा

ग्रन्थ पे चर्चा, इस नूतन कार्यक्रम का प्रारम्भ प्राच्य-विद्यामन्दिर द्वारा किया गया	२०/९/२०२२	प्रो. संजय करंडीकर, विभागाध्यक्ष, मराठी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा	प्राच्यविद्यामन्दिर के कर्मचारियों को वेस्टर्न फूड पुस्तक के विषय में जानकारी प्राप्त हुई ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा
पाण्डुलिपियों का प्रदर्शन ''पोथीनां पान''	२२-२७/११/२०२२	बन्यन हेरीटेज फेस्टीवल-२०२२	वडोदरा के लोग भारतीय विरासत के विषय से अवगत हुए ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा
पाण्डुलिपि-विज्ञान विषय पर राष्ट्रीय कार्यशाला	६-७/१/२०२३	प्राप्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा एवं संहिता, सिद्धान्त विभाग, आयुर्वेद संकाय, पारुल विश्वविद्यालय, वडोदरा	विद्यार्थियों एवं आयुर्वेद चिकित्सकों को आयुर्वेद से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों का ज्ञान प्राप्त हुआ एवं पाण्डुलिपियों के सम्पादन कार्य का भी प्रायोगिक प्रशिक्षण प्राप्त हुआ ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा
१९वाँ स्व.-यू. पी. शाह व्याख्यान शृङ्खला	२१/२/२०२३	व्याख्यान-१ देवगढ की जैन-कला और इसका सामाजिक-धार्मिक महत्त्व । व्याख्यान-२ मथुरा के कुषाण	मथुरा की जैन कला और जैन छवियों के विषय में वडोदरा के लोगों को ज्ञान मिला ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा

		जैन छवियों का अद्वितीय योगदान । प्रो. मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी, इतिहास विभाग, कला संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी			
रामोत्सव (भारत में रामायण परम्परा का उत्सव मनाना)	२३-२४/३/२०२३	इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, क्षेत्रीय केन्द्र, वडोदरा, अयोध्या शोध संस्थान एवं प्राच्यविद्यामन्दिर के संयुक्त उपक्रम में समायोजित ।	छात्रों एवं विद्वानों को रामजी के जीवन पर रचित रामायण और उनके ऊपर लिखी गईं विभिन्न रचनाओं के विषय में जानकारी मिली ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा
विश्व विरासत दिवस का उत्सव	१८/४/२०२३	प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा एवं वडोदरा स्मार्ट सिटी डेवलेपमेन्ट लिमिटेड के संयुक्त उपक्रम में समायोजित । वक्ता-श्री राजेन्द्र शाह एवं अरूपा लहेरी	विद्यार्थियों एवं-विद्वानों ने वडोदरा शहर के सम्बन्ध में बहुत ही सूक्ष्म जानकारी प्राप्त की ।	प्राच्य-विद्यामन्दिर	प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा

प्राच्यविद्यामन्दिर के अभ्यागत (विजिटर्स)

भारतीय एवं वैदेशिक विद्वान् पाण्डुलिपियों की खोज में प्राच्यविद्यामन्दिर आते हैं । कुछ लोग जिज्ञासावश संस्था के अवलोकन के लिये आते हैं, जिसमें समीप एवं दूर के महाविद्यालयों और स्कूलों के छात्रों का समूह शैक्षिक भ्रमण हेतु प्राच्यविद्यामन्दिर में आता है । उन सभी छात्रों एवं अभ्यागतों को व्याख्यान द्वारा संस्था के विषय में अवगत कराना यह हमारे कर्मचारियों के कर्तव्य में सम्मिलित है । इस वर्ष ५ संस्थानों के १५६ से अधिक छात्रों ने संस्था की मुलाकात ली जिसमें संग्रहालय-विज्ञान विभाग के २० छात्र, संस्कृत विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के १४ छात्र, रसायन विज्ञान विभाग के ३ छात्र, विज्ञान और प्रौद्योगिकी-विभाग के १२ प्रोफेसर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के ललित-कला संकाय के स्नातकोत्तर के २० छात्र, पारुल विश्वविद्यालय, वडोदरा के ४५ छात्र, पुस्तकालय एवं सूचना-विज्ञान के ११ छात्र, एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय, मुम्बई के ५७ लोगों ने हमारे संस्थान की मुलाकात ली । कुछ धार्मिक-सम्प्रदायों के आचार्यगणों ने अपने अनुयायियों के साथ संस्था का अवलोकन किया । कुछ व्यवसायिक लोग भी हमारे संस्थान में आने की इच्छा व्यक्त करते हैं ।

अन्य पाण्डुलिपि-पुस्तकालयों की मुलाकात एवं पाण्डुलिपियों का एकत्रीकरण

हमारे पाण्डुलिपि-संग्रहालय को समृद्ध करने के लिये हम स्टाफ के सदस्यों को अन्य पुस्तकालयों का दौरा करने और अच्छे ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों की डिजीटल, प्रतिछाया प्रतियाँ लाने के लिये नियुक्त करते हैं । कभी-कभी लोग संस्थान को पाण्डुलिपियों को एकत्रित करने के लिये अपने पैतृक घरों/ग्रामों के अवलोकन करने के लिये भी कहते हैं वे उन ग्रन्थों को दान करना चाहते हैं, परिणामस्वरूप इस वर्ष हमें वडोदरा के तीन परिवारों से लगभग १५०० मूल पाण्डुलिपियाँ दान में प्राप्त हुईं ।

शोधकार्य एवं सेमीनार में प्रतिभागिता

अनुसन्धान-अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वह अप्रकाशित पाण्डुलिपियों पर शोध करें, उनका आलोचनात्मक सम्पादन करें और उनका प्रकाशन संस्थान की पत्रिकाओं में या बाह्य पत्रिकाओं में करायें । प्रकाशन के साथ-साथ उन्हें सम्मेलनों और सेमीनारों में भाग लेना होगा और उनके प्रमाणपत्र संस्था में प्रस्तुत करने होंगे । प्राच्यविद्यामन्दिर की कार्यकारी निदेशिका डॉ. श्वेता प्रजापति ने स्वयं ४ सेमीनीरों में भाग लिया और ७ सेमीनारों/व्याख्यानों में वक्ता के रूप में वक्तव्य दिया । गुजराती अनुसन्धान-अधिकारी डॉ. जयन्त उमरेठिया ने २ सेमीनारों में भाग लिया तथा ४ अस्थायी स्टाफ-सदस्यों ने संस्थान की कार्यशालाओं और व्याख्यानों मे भाग लिया ।

पीएचडी का शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया

वर्ष २०२२-२०२३ में डॉ. श्वेता प्रजापति के मार्गदर्शन में दो शोधार्थियों ने अपना शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया ।

Statement about the ownership and other particulars about newspapers

SVĀDHYĀYA (स्वाध्याय)

(To be published in each issue)

FORM IV

(See Rule 8)

1.	*Place of the Publication :*	**Oriental Institute** The Maharaja Sayajirao University of Baroda Vadodara-390 001
2.	*Periodicity of its Publication :*	**Annual**
3.	*Printer's Name :* *Nationality :* *Address :*	**Jatin H. Somani** Indian Manager, The Maharaja Sayajirao University of Baroda Press (Sadhana Press) Vadodara - 390 001
4.	*Publisher's Name :* *Nationality :* *Address :*	**Dr. Sweta Prajapati** Indian C-62, Akshardham Society Aksharchawk, Vadodara - 390 020
5.	*Editor's Name :* *Nationality :* *Address :*	**Dr. Sweta Prajapati** Indian C-62, Akshardham Society Aksharchawk, Vadodara - 390 020
6.	*Names & Addresses of Individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one percent of the total capital*	**The Maharaja Sayajirao University of Baroda** Maharaja Fatehsinghrao Gaekwad Road Fatehgunj Vadodara - 390 002

I, Sweta Prajapati, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dr. Sweta Prajapati
Signature of Publisher

लेखकों से :

१. पृष्ठ के एक तरफ ही यूनिकोड फॉन्ट (१४ प्वाइन्ट में) टाइप कर आलेख की सॉफ्ट कॉपी निम्न ईमेल पर भेजें - director-oriental@msubaroda.ac.in
अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जायेंगे ।

२. लेख में यदि उद्धरण, अन्य विद्वानों के मंतव्य आदि उद्धृत किये जाये तो उनका पूरा- पूरा विवरण देना अनिवार्य है । पादटीप (फुटनोट) में संदर्भ का विवरण देते समय इस क्रम में लिखें - लेखक अथवा संपादक/संशोधक का नाम (उपनाम/सरनेम पहले), पुस्तक का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन-वर्ष, आवृत्ति (वोल्यूम/अंक संख्या), पृष्ठ संख्या ।

३. स्वाध्याय में प्रकाशित सभी लेखों का प्रकाशन अधिकार (कॉपीराइट) प्रकाशक - प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के अधीन हैं । लेखक अथवा अन्य कोई व्यक्ति लेख का कोई भी अंश प्रकाशक की लिखित आज्ञा के बिना पुनः प्रकाशित नहीं कर सकता ।

४. ग्रन्थों अथवा लेखक के लिये प्रयुक्त संक्षेप-शब्दों (एब्रीवियेशन) का प्रयोग करने से पहले उनका पूरा-पूरा रूप पहले उल्लेख किया जाना चाहिए, साथ ही आगे प्रयोग किया जाने वाला संक्षिप्त रूप भी संकेतित किया जाये ताकि पाठक को किसी प्रकार की दुविधा न हो ।

५. पादटीप (फुटनोट) का क्रम पूरे लेख में लगातार रखा जाना चाहिए (संख्या एक से आरम्भ करके) तथा लेख में उन्हे यथा - स्थान निर्देशित करना चाहिए ।

स्वाध्याय

स्वाध्याय एवं संशोधन की वार्षिक पत्रिका

संपादक : श्वेता प्रजापति

एक वर्ष में पत्रिका का एक अंक प्रकाशित किया जाता है जिसकी सदस्यता शुल्क निम्न रूप से है :

भारत में - ₹ ३००.०० (डाक व्यय सहित)

विदेश में - यूनाइटेड् स्टेट्स ऑफ अमेरिका के लिये - $ ५०.०० (डाक व्यय सहित)

सदस्यता-शुल्क निम्नलिखित पते पर चेक द्वारा भेजा जाना चाहिए -

नियामकश्री

प्राच्यविद्यामंदिर

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, राजमहल गेट के पास

राजमहल रोड, वडोदरा - ३९०००१

फोन नं. ०२६५-२४२५१२१

Regd. No. 9219/63

लेखक - विवरण

- **सत्यव्रत वर्मा, चारुलता वर्मा**
  ७/३४ पुरानी आबादी, नामदेव फ़्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर - ६६०५५१
  M: 08778798755, Email : srinarasimhan05@gmail.com
- **धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी**
  संस्कृतविभाग, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड - 834002
  M: 7992362827, 9431590113, Email : dvd74@rediffmail.com; dvd1309@gmail.com
- **अरिहन्त कुमार जैन**
  जैनोलोजी एण्ड प्राकृत विभाग, सेन्टर फॉर स्टडीज इन जैनिज्म, के. जे. सोमैया धर्म अध्ययन संस्थान,
  सोमैया विद्याविहार विश्वविद्यालय, मुंबई, M: 9967954146, Email : drarihantpj@gmail.com
- **राम दयाल बैरवा**
  अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान ३०३००२, M: 6350639343, Email : rd.bairwa.kn@gmail.com
- **जे. के. उमरेठिया**
  प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, राजमहल दरवाजा के पास, राजमहल रोड, वडोदरा - ३९०००१,
  M: 9427849843, Email : jkumrethiya70@gmail.com
- **सपना जैन**
  A-137, तक्ष डिवाइन, निजानंद आश्रम के पीछे, एडजोइनिंग एल. एण्ड टी. नॉलेज सिटी, वडोदरा, गुजरात-३९००१९,
  M: 8764097770, Email: vision123.sapna@gmail.com
- **मृत्युञ्जय तिवारी**
  संस्कृतविभाग, श्रीकल्लाजी वैदिक विश्वविद्यालय, चित्तौड़गढ़, M: 8866774099, Email: mrityunjaydtiwari@gmail.com
- **शिबुनाथ भून्या**
  प्राच्यविद्यामन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, राजमहल दरवाजा के पास, राजमहल रोड, वडोदरा - ३९०००१,
  M: 7864049817, Email : sibunathbhunia@gmail.com
- **મનસુખ કે. મોલિયા**
  સંસ્કૃત વિભાગ, ભાષાભવન, સૌરાષ્ટ્ર યુનિવર્સિટી, રાજકોટ - ૩૬૦૦૦૫,
  M: 9687692933, Email : mansukh_moliya@yahoo.com
- **રસીલા કડીઆ**
  ૮, જયમા સોસાયટી, સેટેલાઈટ માનસી ક્રોસ રોડ, પાણીની ટાંકીની બાજુમાં, સેટેલાઈટ કોમ્પલેક્સની બાજુમાં, અમદાવાદ-૩૮૦૦૧૫,
  M: 07926765442
- **રાજેશ પંડ્યા**
  ગુજરાતી વિભાગ, ફેકલ્ટી ઓફ આર્ટ્સ, મ. સ. વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા, M: 9664733710
- **વંદના લેલે**
  ૨૦૧, કેશવ, ગુરુપ્રસાદ સોસાયટી, અકોટા, વડોદરા-૩૯૦ ૦૦૭, Email : vandana.lele@gmail.com
- **ગીતા ભુત**
  "શુભમ્" બ્લોક નં ડી-૧૨, ઈગલ રેસિડેન્સિ, ૧૫૦ ફૂટ રીંગ રોડ, ગોવર્ધનચોક, રાજકોટ-૩૬૦૦૦૪,
  M: 9879311301, Email : bhut.geeta@gmail.com
- **प्रियव्रतमिश्रः**
  संस्कृतव्याकरणविभागः, श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, पुरी (ओडिशा),
  M. 09939622062 Email : shabda.priyavrat@gmail.com

સંપાદક અને પ્રકાશક : ધી મહારાજા સયાજીરાવ યુનિવર્સિટી ઓફ બરોડા વતી ડૉ. શ્વેતા પ્રજાપતિ, કાર્યકારી નિયામક, પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, મહારાજા સયાજીરાવ વિશ્વવિદ્યાલય, વડોદરા-૩૯૦ ૦૦૧

મુદ્રક : જતીન એચ. સોમાણી, મેનેજર, ધી મહારાજા સયાજીરાવ યુનિવર્સિટી ઓફ બરોડા પ્રેસ (સાધના પ્રેસ), રાજમહેલ દરવાજા પાસે, રાજમહેલ રોડ, વડોદરા-૩૯૦ ૦૦૧, ઓગસ્ટ ૨૦૨૩

MSUP-5289-200-8-23